I.S.S.N. 0975-6531
यूजीसी में सूचीबद्ध

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी
मार्च-अप्रैल 2023 * भाग 39 - अंक 2 (रामकथा अंक)

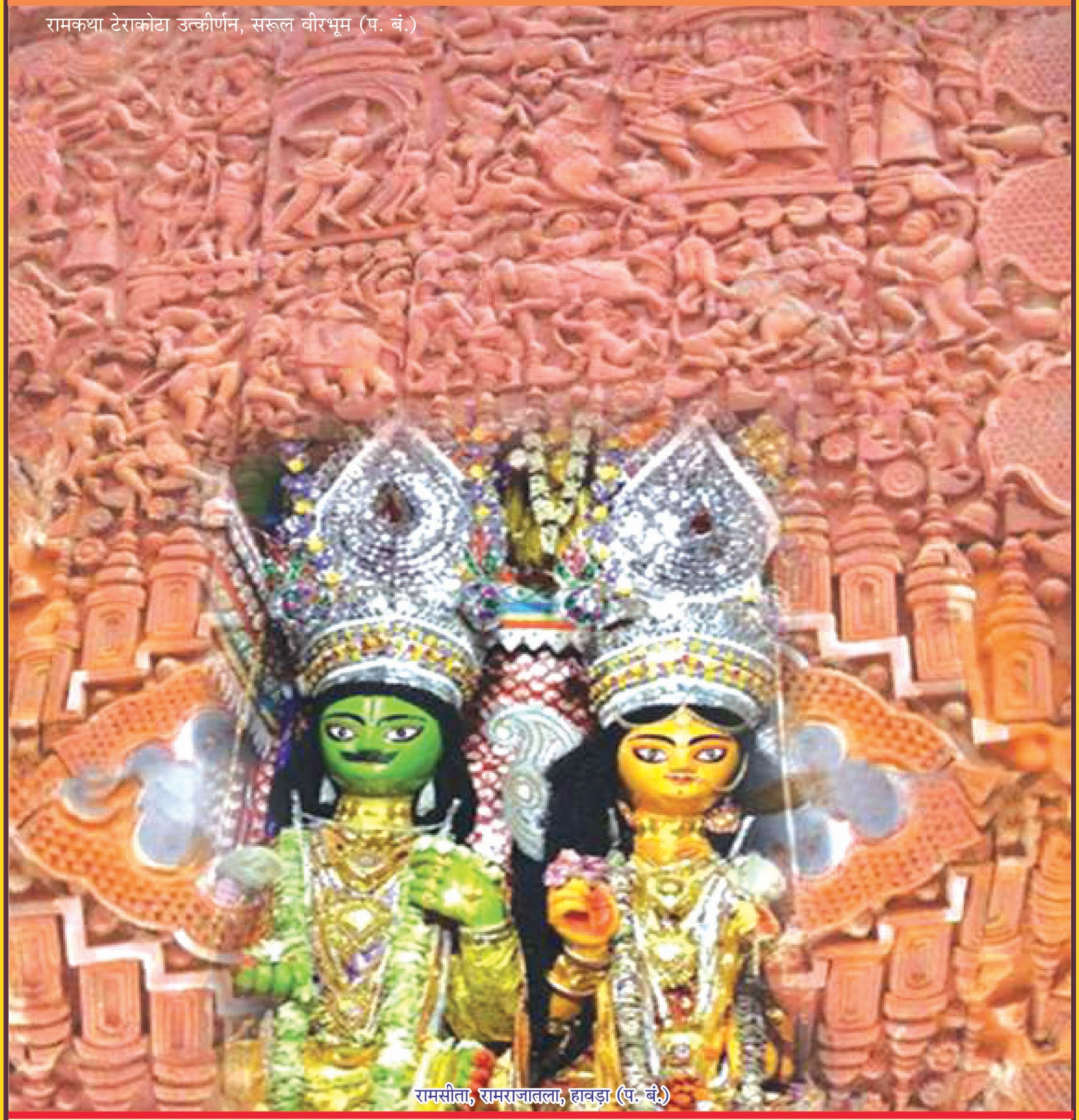

रामकथा टेराकोटा उत्कीर्णन, सरूल वीरभूम (प. बं.)

रामसीता, रामराजातला, हावड़ा (प. बं.)

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता
₹70/-

• वैचारिकी •
मार्च-अप्रैल 2023 भाग 39 अंक 2

प्राचीन भारतीय उत्कीर्णन-अंकन में श्रीराम

चतुर्बाहु श्रीराम मूर्ति, रानी जी की वाव, पाटण, गुजरात (11वीं सदी)

हनुमान सहित श्रीराम की पालित मुद्रा में मूर्ति (दक्षिण भारत)

श्रीराम की ताम्र मूर्ति (12वीं सदी), दक्षिण भारत

श्रीराम द्वारा अहिल्या उद्धार
नचना मंदिर, पन्ना जिला (5वीं सदी)

श्रीराम लक्ष्मण जटायु मिलन मृदफलक, गुप्तकाल
राज्य पुरातत्व संग्रहालय, हरियाणा (कुरुक्षेत्र)

श्रीराम की उपस्थिति में लक्ष्मण द्वारा सूर्पनखा का विरूपीकरण, 5वीं सदी (नचना मंदिर, म.प्र.)

श्रीराम द्वारा सप्तशाल वृक्ष भेदन मूर्ति इण्डोनेशिया
शिव मंदिर, शिला अंकन

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष व प्रधान-सम्पादक
डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा
सम्पादक
डॉ. बाबूलाल शर्मा
प्रबंध-सम्पादक
शंकरलाल सोमानी

I.S.S.N. 0975-6531 वर्ष 39 : अंक 2

वैचारिकी

(धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला)

यू. जी. सी. द्वारा मान्यता प्राप्त

मार्च-अप्रैल 2023 ● फाल्गुन शुक्ल 10, बैशाख शुक्ल 10, वि. सं. 2079-80 ● रु. 70

अनुक्रम

- अध्यक्षीय– **अविभक्तं विभक्तेषु** 03
- सम्पादकीय– **नववर्ष, महाकवि का अपमान, रामनवमी, बांग्ला रामायण श्रीराम पांचाली** 05
- **असमिया रामायण : माधव कन्दली** – डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय 17
- **तमिल की कम्ब-रामायण अर्थात रामकादै** – आर. एन. श्रीनिवासन 25
- **बलरामदासकृत उड़िया रामायण** – डॉ. सूफिया यास्मिन 29
- **प्राचीन भारतीय उत्कीर्णन अंकन में श्रीराम** – ललित शर्मा 33
- **रामकथा के दो पात्रों की निन्दनीयता** – देवदत्त शर्मा 54
- **राम-सीता के विवाह की आयु** – डॉ. आनन्द शर्मा 60
- **रामकथा में उत्तर-दक्षिण के सेतु ऋषि अगस्त्य** – डॉ. एम. शेषन 62
- **राम के जीवन में वनवासी** – प्रमोद भार्गव 64
- **गृध्रराज जटायु** – रामशरण युयुत्सु 68
- **रामकथा में वर्णित वानर-रींछ पशु नहीं, मनुष्य थे** – डॉ. आर. के. पोहिया 71
- **भ्रमों से भरा है रावण का व्यक्तित्व** – प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा 76
- **वाल्मीकि की राम से समकालीनता** – डॉ. अमरसिंह वधान 80
- **रामकथा के प्रति सम्राट अकबर की श्रद्धा** – उदय शंकर दुबे 83
- **पाठक मंच** – 85
  भाव रूप राम, डॉ. रघुनाथ माशेलकर, अधिक मास, राजा राममोहनराय का सश्रद्ध स्मरण, पंच तत्वों का असंतुलन और स्वास्थ्य
- **प्रतिस्वर** – 94

- प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
- प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता होगा।

योगः कर्मसु कौशलम

कार्यालय
भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल :
bvm.vaicharіki@gmail.com
वेबसाइट :
www.bharatiyavidyamandir.com

सदस्यता शुल्क

एक प्रति	70/- रुपये
वार्षिक	400/- रुपये
द्वैवार्षिक	800/- रुपये

सदस्यता शुल्क भेजने हेतु :–

Payee's Name :
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c.No. : 32030320176
Bank : State Bank of India
Branch : New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

अध्यक्षीय

अविभक्तं विभक्तेषु

बहुत दिनों से अनुभव हो रहा है कि वर्तमान परिवेश तेजी से परिवर्तनशीलता का दौर है। परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है, जितनी तेजी से सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं तो यह तो युगधर्म है पर चिंता है कि उसकी दिशा ऊर्ध्वगामी होनी चाहिए। जिस तरह के समाज में हम रह रहे हैं उससे बेतहर समाज बनाना चाहिए। हमारी सांस्कृतिक विरासत को न केवल संजोये रखें वरन् उसमें कुछ हम अपने काल में भी उसकी सुंदरता बढ़ाने के लिए अपना अवदान भी दें। इसके लिए दिशा सही रहे, इसके लिए शाश्वत मानवीय मूल्यों का आधार चाहिए। भारतीय संस्कृति शाश्वत मानवीय मूल्यों पर ही आधारित है। इस विषय में एक समुचित प्रयास आवश्यक है। इसमें भारतीय संस्कृति की दशा और दिशा पर देश के मूर्धन्य चिंतकों के साथ बैठकर विचार-विमर्श होना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। सरकारी तंत्र को भी हम उसके अनुसार सहयोग करने की सलाह दे सकें।

भारतीय संस्कृति की सनातनता के संबंध में विभिन्न विद्वानों के बहुत-से मत हैं। कुछ इतिहासकार इसे 200-300 वर्ष ईसा पूर्व या समझिए 2500-2700 वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मानते। कुछ इतिहासकार एवं विचारक सप्रमाण इसे हजारों वर्ष पुरानी मानकर उसके लिए वैज्ञानिक एवं तार्किक आधार भी प्रस्तुत करते हैं। हाल ही में कुछ विद्वानों के विचारों से अवगत होने का अवसर मिला। उन्होंने रामायण, महाभारत के काल की गणना ज्योतिषीय गणना के आधार पर एवं समुद्र-विज्ञान (Oceanography), भूगर्भशास्त्र (Geology), पुरातत्व (Archaeology), वनस्पति-शास्त्र, बायोलॉजी आदि के आधार पर इसकी प्राचीनता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

तब वेदों की प्राचीनता तो बहुत अधिक पीछे हो जाती है, कुछ विद्वानों ने तो इन्हें कम से कम बीस हजार वर्ष प्राचीन बताया है तथा रामायण काल को भी पन्द्रह-सत्रह हजार वर्ष और महाभारत काल को पांच-सात हजार वर्ष, जो भी हो, यह सब विद्वानों की विवेचना का विषय है। पर यह स्पष्ट रूप से स्वतः सिद्ध है कि भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है, इसकी प्राचीनता अज्ञात है और ऐतिहासिक-पुरातात्विक प्रमाणों से सिद्ध है कि भारतीय संस्कृति या इस सनातन संस्कृति का विस्तार पूरे विश्व में रहा। हमारे चक्रवर्ती सम्राटों की विजय वाहनियों ने उत्तर-पश्चिम में अल्प्स पर्वत शृंखला, दक्षिण में व दक्षिण-पूर्व तक अभियान किए। पूर्व में थाइलैण्ड, मलेशिया, जापान से आगे पेरू तक अर्थात दक्षिण अमेरिका तक भारतीय संस्कृति का विस्तार हुआ जिसका वर्णन हमारे रामायण, महाभारत व अन्य ग्रंथों में मिलता है। रामायण में सुग्रीव द्वारा बानर सेना को सीता की खोज में चारों दिशाओं में जाने के लिए कहकर जो भौगोलिक

वर्णन किया गया है वह तो अद्‌भुत है। इसी तरह पाण्डवों का राजसूय यज्ञ हेतु दिग्विजय के अभियान में विभिन्न राज्यों का वर्णन द्रष्टव्य है। हमारे स्थापत्य की ऊंचाइयों के प्रमाण हमारे प्राचीन मंदिरों में प्रयुक्त तकनीक से मिलता है। दर्शनशास्त्र में हम बहुत गहराई तक पहुंचे थे। हमारे दर्शन का लोहा सारा विश्व मानता है। हमारा आयुर्वेद और योग-शास्त्र विश्वव्यापी हो गये हैं, लेकिन खेद का विषय है कि जितना इसे विदेशों में स्वीकार किया जाता है उतना हमारे जन-साधारण में अभी तक इसके प्रचार-प्रसार का अभाव देख रहा हूं।

हम समझते हैं कि पश्चिम के देशों ने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में बहुत दिया, लेकिन हमने भी तो बहुत कुछ दिया है और कुछ जगह तो हमने इनसे भी अधिक दिया। हाल ही में वर्ष 2022 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ साइंसेज़ द्वारा जॉन एफ क्लॉजर, एलेन एस्पेक्ट और एंटोन ज़िलिंगर का क्वांटम यांत्रिकी में इनके कार्य के लिये प्रदान किया गया। क्वांटम यांत्रिकी, भौतिकी का एक उपक्षेत्र है जिसके अंतर्गत कणों-परमाणु, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन के व्यवहार और आणविक एवं उप-आणविक क्षेत्र में लगभग हर आयाम का वर्णन किया जाता है। क्वांटम सिस्टम के व्यवहार में एक महत्वपूर्ण अंतर (क्लासिकल रिजिड निकायों की तुलना में) ऐटैंगलमेंट की अवधारणा है। क्वांटम एंटैंगलमेंट एक ऐसी घटना है जिसके अंतर्गत उप-परमाणु कणों की एक जोड़ी को साझा अवस्था में रखा जाता है (जहां इनके पूरक गुण होते हैं), ऐसे में कोई भी एक कण के गुणों को जानकर स्वतः ही दूसरे कण के गुणों को जाना जा सकता है, भले ही दोनों कणों को कितनी ही दूर ले जाया जाए। क्वांटम एंटैंगलमेंट को पहली बार वर्ष 1935 में इरविन श्रोडिंगर द्वारा स्पष्ट किया गया था, जिसे आगे चलकर उनकी कैट पैराडॉक्स थ्योरी के नाम से जाना गया। सार रूपेण इनकी स्थापना को पढ़ने पर ऐसा ज्ञात होता है कि चीजें जिस तरह की दिख रही हैं, वास्तव में वैसी नहीं हैं। वस्तुतः इन्हें जैसा हम देखना चाहते हैं वैसा ही इनका रूप प्रकट हो जाता है। आज बहुत से वैज्ञानिक इस सिद्धांत को बार-बार प्रतिपादित कर रहे हैं कि विश्व बहु-आयामी दिखता है क्योंकि हम उसे वैसा देखते हैं या देखना चाहते हैं जबकि विश्व में सब तत्व अलग-अलग नहीं, बल्कि सब एक हैं और एक ही तत्व विभाजित रूप से सर्व-व्याप्त है। विशेष बात यह है कि भारतीय ऋषि और दर्शनशास्त्री यह सब कुछ अति प्राचीन काल से कह रहे हैं– अविभक्तं विभक्तेषु। यह भारतीय संस्कृति की भी विशेषता है कि उसमें विविधता दृष्टिगोचर होती है, परंतु मूल में वह एक है और इसकी सनातनता का यही रहस्य है।

– डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

नारद समस्त वेदों-शास्त्रों, इतिहास-पुराण और विद्याओं, कलाओं का ज्ञान कर चलते-फिरते विश्व-कोष बन गये थे। इतने वृहद् ज्ञान के उपरांत भी उनको कमी महसूस होती रहती कि कोई सर्वोत्तम ज्ञान है जो मुझे प्राप्त नहीं है। उन्होंने महर्षि सनत कुमार को अपनी बेचैनी बतायी तथा सर्वोच्च ज्ञान देने का निवेदन किया। महर्षि सनत कुमार ने कहा कि आपका अध्ययन अत्यंत विशाल है, किन्तु वह केवल नाम मात्र है। तथापि नाम का अपना महत्व है और उसकी उपासना से मनवांछित फल प्राप्त किया जा सकता है। तब नारद ने कहा कि क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है। सनत कुमार ने कहा– इससे श्रेष्ठ वाणी है। इस पर नारद ने कहा- वाणी से आगे भी कुछ है क्या? ऋषि ने कहा कि मन वाणी से महत्तर है और मन से श्रेष्ठ संकल्प है, इससे उच्चतर चित्त या बुद्धि है और अंततः सुख है, परन्तु सुख से परे भूमा है, जो असीम है वही भूमा है। अल्पता में कुछ भी सुख नहीं है, यही आत्मा है। जो इस आत्मा को जान लेता है वह परम आनन्द को जान लेता है।

सम्पादकीय

नव वर्ष की शुभकामनाएं

नव वर्ष विक्रम संवत 2080 की चैत्र-प्रतिपदा से प्रारंभ होने वाले वार्षिक-वासंतिक नवरात्र तथा देश के विभिन्न प्रांतों में स्थानीय पंचांगों के अनुसार प्रारंभ होने वाले नववर्षोत्सवों-गुड़ी पड़वा (महाराष्ट्र-कोकण), युगादि (कर्नाटक-आंध्र प्रदेश), मेष संक्रांति (कुछ क्षेत्रों में), होल्ला मोल्ला व बैसाखी (पंजाब-हरियाणा), पोहेला बोइशाख (बंगाल), बिहू (असम व उत्तर-पूर्वी राज्य), विशु (केरल), पुथंडु (तमिलनाडु), महा-विशुभ (उड़ीसा) की हार्दिक शुभकामनाएं!

पिछले कुछ समय से हमारे यहां भी ईस्वी-सन् की 1 जनवरी की तरह विक्रम संवत की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नव वर्ष मनाने का आग्रह किया जा रहा है, लेकिन उत्तर भारत में तो नव वर्ष मनाने की परंपरा ही नहीं रही है, देवी उपासना के नवरात्र का अनुष्ठान होता है। फिर यह अनुकरण क्यों आवश्यक है? ईस्वी कैलेण्डर को अंग्रेजों के विश्व-व्यापी रहे शासन तथा उसमें तिथियों तारीखों की निश्चितता की आसानी के कारण अन्य देशों की तरह हमारे यहां भी राजकाज तथा अन्य व्यवस्थाओं के लिए इसे अपना लिया गया है। देशी पंचांगों को अपना लिया जाय तो तिथियों मितियों एवं मुहूर्तो की भिन्न-भिन्न मान्यताओं के कारण कितना गुल-गपाड़ा हो जायेगा! अभी मुहूर्तबाजों ने तीन अलग-अगल तारीखों को होली मनवा दी। हां, सचमुच विचारणीय है कि शक-संवत को राष्ट्रीय संवत माना गया है, ऐसा क्यों किया गया? कहा जाता है कि शक संवत का ऐतिहासिक आधार है, विक्रम संवत का नहीं अर्थात माना गया कि विक्रमादित्य या विक्रम नाम का कोई सम्राट हुआ ही नहीं जिसने अपने नाम पर विक्रम संवत प्रवर्तित किया हो? फिर यह विक्रम संवत कहां से कैसे प्रचलित हुआ जिसका उत्तर भारत के शिला-लेखों में 8वीं शताब्दी से प्रयोग हो रहा है, इसके अनुसार पंचांग बन रहे हैं, रियासत कालीन राजकाज व आम जनता द्वारा व्यवहार में रहा है?

महाकवि का अपमान

गत दिनों महाकवि तुलसीदासजी और उनके विश्ववंद्य महाकाव्य रामचरित मानस का कुछ लोगों द्वारा किये गये अपमान पर कुछ चर्चा। अपमान का और अपमान के बावजूद तुलसी के महाकवित्व एवं रामचरितमानस के महाकाव्यत्व की महत्ता में वृद्धि का सिलसिला पुराना है। वि.सं. 1633 (1576 ईस्वी) में तुलसी द्वारा रामचरितमानस की रचना संपूर्ण करते ही काशी के ब्राह्मणों-पंडों ने दोनों का तिरस्कार प्रारंभ कर दिया, कि रामकथा को भाषा में लिख दिया गया है तो अब हमसे संस्कृत रामायण का पाठ कराकर दक्षिणा कौन देगा? तुमुल विवाद के बाद अंततः मधुसूदनजी सरस्वती द्वारा इस ग्रंथ की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई तब विवाद शांत हुआ और फिर इसकी लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई।

वर्षों पहले दिल्ली से प्रकाशित सरिता पत्रिका में हिन्दू समाज के बिगाड़क तुलसीदास जैसे शीर्षक से छपे लेख में भी इनको खूब अपमानित किया गया था। लेकिन इनके प्रति लोक में आदर यथावत रहा। गत दिनों कुछ लोगों ने अपनी नेतागिरी चमकाने के लिये तुलसीदासजी के चित्र और रामचरितमानस की प्रति जलाने का निंदनीय कृत्य किया।

लंबे समय से सुन्दरकाण्ड की यह पंक्ति– **ढोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी**, विवाद में है कि इसमें तुलसीदासजी ने शूद्रों एवं नारी को ताड़न (पीटने) के लिए कहा है। नारी को लेकर तो तुलसीदासजी से पहले कबीरदासजी भी कह चुके हैं– **जा तन की झांई पड़े अंधा होत भुजंग, उन नर की कौन गति जो नित नारी के संग तथा नारी नरक का कुण्ड है।** तुलसीदासजी की पंक्ति के ढोल गंवार शूद्र पशु नारी शब्दों को बदल कर या उनके समास बनाकर तथा उनके अर्थों के कई विकल्प प्रस्तुत कर कई विद्वानों ने इस पंक्ति के मंतव्य को बदलने की भी चेष्टा की है, जैसे - ताड़न शब्द का अर्थ पीटने के बजाये मार्गदर्शन, अनुशासन, उपदेश इत्यादि तथा शूद्र एवं नारी शब्दों की जगह दूसरे शब्द बता कर अथवा इनसे पहले के शब्दों को इनके विशेषण बताकर। चित्रकूट के प्रसिद्ध विद्वान रामभद्राचार्यजी ने तो इस पंक्ति को अशुद्ध लिखा बताकर, बदलकर कर दिया है– **ढोल गंवार क्षुब्ध पशु रारी।** आचार्यजी तो गीता प्रेस द्वारा सौ वर्षों से प्रकाशित हो रहे हनुमान चालीसा में भी कई जगह संशोधन बता रहे हैं जैसे– **संकर सुवन केसरी नंदन** की जगह **संकर स्वयं केसरी नंदन, सब पर राम तपस्वी राजा** की जगह **सब पर राम राय सिर ताजा। सदा रहो रघुपति के दासा** की जगह सादर हो रघुपति के दासा और **जो सत बार पाठ कर कोई** की जगह **यह सत बार पाठ कर कोई।** रामभद्राचार्यजी इन संशोधनों का कोई आधार नहीं बताते हैं?

गोस्वामी तुलसीदास जैसे बहुशास्त्रविद् एवं महाकवि के मूल लेखन में इस प्रकार के संशोधन कर अपनी कथित विद्वत्ता दिखाना अनुचित एवं हास्यास्पद ही है। उक्त पंक्ति, समुद्र के द्वारा मार्ग नहीं देने पर राम द्वारा **भय बिनु होइ न प्रीति** कहकर सरसंधान करने पर भयभीत समुद्र के द्वारा कही गयी है। स्पष्ट ही ढोल को छोड़कर बाकी के लिये ताड़ना का तात्पर्य दण्ड का भय है। जहां तक नारी और शूद्र का प्रश्न है, रामचरितमानस में अन्यत्र भी कहा गया है कि नारी को स्वतंत्रता देने पर, क्यारी में ज्यादा पानी भरने पर उसकी मेड़ें टूटने (बाढ़ही क्यारी) की तरह वह मर्यादा लांघ देगी। इसी तरह कहा गया है– **पूजहि विप्र सकल गुन हीना, शूद्र न पूजहु वेद प्रवीना।** निषादराज और जटायु स्वयं को अधम कहते ही हैं। विश्व के सभी देशों के इतिहास व साहित्य से विदित है कि पुराने समय में स्त्री और दासों अथवा शूद्रों के प्रति ताड़न का दृष्टिकोण विश्व के सभी देशों-समाजों में था। अभी भी कई जगहों पर स्त्री को पर्दे में पैक रहने को मजबूर रखने, उसे सरेआम कोड़ों से पीटने व पत्थर मारने के दृश्य टी.वी. पर देखे जा सकते हैं (हालांकि हमारे प्रगतिशीलों को ये दृश्य स्त्री-विमर्श से संबंधित नहीं लगते)। आधुनिक काल प्रजातंत्र का युग है जिससे दृष्टिकोण में बदलाव आया है जिसके परिणाम स्वरूप स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श जैसे विमर्श समाज के परंपरागत ढ़ांचे में बदलाव ला रहे हैं। इसी से भारतीय समाज में ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती मिल रही है और नारी स्वतंत्रता तथा शूद्रों-दलितों का उत्थान समाज में बदलाव की एक सशक्त प्रक्रिया के रूप में है। कुछ विद्वानों का इन पंक्तियों को रामचरितमानस से हटा देने का सुझाव भी है, परंतु इन्हें हटाने के बजाय इन पंक्तियों को तुलसी के युग के एक यथार्थ और इतिहास हो चुके विचार के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

वस्तुतः किसी भी कवि या रचनाकार की रचना में उसके समय एवं परिवेश की धारणाओं और मान्यताओं का समावेश सहज ही हो जाता है। अब यह आवश्यक नहीं है कि वे वर्तमान समय की धारणाओं और मान्यताओं के अनुकूल हों। अतः केवल उक्त संदर्भो को लेकर रामचरितमानस जैसे महान काव्य एवं उसमें वर्णित अन्य आदर्शों, जीवन मूल्यों एवं उसकी भक्तिपरकता को तथा उसके रचनाकार गोस्वामी तुलसीदासजी को वर्तमान

दृष्टिकोणों से अपमानित करना निश्चित ही निंदनीय है। अपनी रचनात्मक विशेषताओं के कारण यह ग्रंथ एक महान रचना और तुलसीदास एक महान रचनाकार के रूप में समादृत रहेंगे।

रामनवमी के शुभ-अवसर पर राम-राम

वैचारिकी का प्रस्तुत अंक **रामकथा-अंक** के रूप में प्रकाशित हो रहा है। पुराणोल्लिखित अवतारों में से केवल राम भारतीय संस्कृति के आदर्श चरित्र हैं, मूल्य-चरित्र हैं। राम का चरित्र व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और समस्त मानवता की दृष्टि से हृदयंगम कर अनुकरणीय है। हालांकि हमारी विडम्बना यह है कि हम अपने महापुरुषों और सद्ग्रंथों की पूजा तो कर सकते हैं, उनका अनुकरण नहीं? राम-चरित अथवा रामकथा केवल भारतीय संस्कृति में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य 12 देशों में भी पूज्य एवं आदरणीय है। भारतीय समाज में राम सर्वत्र व्याप्त हैं। राम का नाम एक बार (राम) कहने पर संबोधन, दो बार (राम-राम) कहने पर अभिवादन, तीन बार (राम-राम-राम) कहने पर संवेदना और इससे अधिक कहने पर परमात्मा का संकीर्तन बन जाता है। राम का नाम परब्रह्म का पर्यायवाची हो गया। वह चाहे साकार हो अथवा निराकार। तुलसी जैसे भक्तों के लिए राम साकार ब्रह्म हैं और कबीर जैसे संतों के लिए निराकार ब्रह्म। साकार, निराकार दोनों सगुण हैं। निराकार ब्रह्म निर्गुण नहीं है सगुण है, नहीं तो वह सृष्टि-रचना कैसे करेगा, भक्तों पर कृपालु कैसे होगा?

राम विमाता कैकेई की इच्छा और पिता की आज्ञा से राजसुख का त्याग कर पत्नी सीता (राम आजीवन एक-पत्नीव्रती रहे) और अनुज लक्ष्मण सहित वनवास के कष्ट उठाते हैं। वे अपने वनवास को सामाजिक समरसता का संदेश बना देते हैं। वे निषादराज और केवट को गले लगाते हैं, शबरी के चखे हुए बेर खाते हैं, घायल गिद्धराज जटायु को गोद में लेकर उसका अंतिम संस्कार करते हैं। वनवासी जातियों वानरों और ऋक्षों से घुल-मिलकर उनका प्रेम और विश्वास अर्जित करते हैं और उनके सहयोग से महाबली रावण के आतंक और अत्याचार का अंत कर अपने वनवास को एक सार्थक आयाम देते हैं। 14 वर्ष का वनवास पूरा कर आयोध्या लौटते हैं और उनकी अनुपस्थिति में अध्योध्या का राज-काज देख रहे अनुज भरत तथा तीनों माताओं, गुरु वसिष्ठ व समस्त प्रजा के आग्रह पर राजसिंहासन पर बैठते हैं और फिर उनका रामराज्य सुशासन का प्रतीक बन जाता है। आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण में यही रामकथा वर्णित है जिसे निम्नांकित एक श्लोकी रामायण में संक्षेप में बताया गया है जो कि पश्चातवर्ति रामकथाओं का आधार है।

आदौ राम तपोवनादि गमनं, हत्वा मृगं कांचनम्। वैदेहीहरणं जटायुमरणं, सुग्रीवसंभाषणम्।
बालीनिग्रणं समुद्रतरणं, लंकापुरीदाहनम्। पश्चात् रावण कुम्भकर्ण हननम्, एतद्धि रामायणम्।।

रामकथा भारतीय साहित्य में सर्वाधिक आदरणीय एवं लोकप्रिय आख्यान है। भारत बहुभाषिक और बहुत सी सांस्कृतिक इकाइयों वाला देश है। भारत की विभिन्न भाषाओं-बोलियों तथा सांस्कृतिक इकाइयों में से कोई भी ऐसी नहीं है जिसकी अपनी रामायण न हो। भारत के प्रत्येक प्रांत में ही नहीं अपितु भारत से बाहर जहां कहीं भी भारतीय लोग जाकर बसे वहां भी उनकी अपनी रामकथा प्रचलित हो गई। वस्तुतः रामकथा भारतीय सामाजिक मूल्यों के स्मृतिपरक आख्यान के रूप में स्वीकृत होकर अत्यंत लोकप्रिय हो गयी। भारतीय समाज की प्रतिनिधि रचना के रूप में रामकथा की व्यापकता का इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि शोधकर्ताओं ने रामकथाओं अथवा रामायणों की संख्या 300 से लेकर 1000 तक निर्धारित की है (गूगल विकीपीडिया से साभार)। रामकथा की इस व्यापकता को देखकर डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों को तो इसकी ऐतिहासिकता पर ही अविश्वास हो गया और उन्होंने इसे एक रूपक मात्र घोषित कर दिया। रामकथा का मूल आधार महर्षि वाल्मीकि द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'रामायण' महाकाव्य है जिसे पश्चातवर्ती अनगिनत कवियों द्वारा रचित रामायणों के बीच पहचान के लिए 'वाल्मीकि रामायण' (रचनाकाल 11वीं शताब्दी ई.पू. से दूसरी शताब्दी ई. पू.) भी कहा जाता है। इसके विभिन्न भाषाओं में अब तक लगभग 3000 रूपांतरण हो चुके हैं (गूगल विकीपीडिया

से साभार)। यही नहीं वाल्मीकि रामायण और उससे भी पूर्व किसी 'आदि रामायण' (डॉ. कामिल बुल्के, रामकथा छठा संस्करण 1999 से साभार) की मान्यता से प्रारम्भ होकर लगभग तीन सहस्राब्दियों से अद्यतन रामकथा अथवा उसके किसी अंश को लेकर कविगण काव्य रचना में प्रवृत्त हैं। रामकथा की इस व्यापक लोकप्रियता को देखकर ही आधुनिक काल में हिन्दी में 'साकेत' नाम से रामकथा की रचना करने वाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को लिखना पड़ा–

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है।।

वस्तुतः रामकथा की महाकाव्यात्मकता अथवा प्रबंधात्मकता युगों-युगों से कवियों को काव्य रचना के लिए आकर्षित करती रही है जिससे भारत के विभिन्न प्रांतों और उनकी विभिन्न भाषाओं के कवियों ने राम काव्य का सृजन किया और उसमें अपनी स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं का समाहार कर रामकथा को विस्तार दिया। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यकृति उसकी अपनी कोई रामायण ही है। विश्व साहित्य में इतने विशाल एवं विस्तृत रूप से भारत और अन्य देशों में विभिन्न भाषाओं के कवियों द्वारा रामकथा के अलावा किसी और चरित्र अथवा आख्यान पर रचित काव्य उपलब्ध नहीं हैं। यहां हम अकेले भारत की बात करें तो संस्कृत में रामकथा के आदि-आधार ग्रंथ वाल्मीकि रामायण के अलावा वशिष्ठ रामायण, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, अगस्त्य रामायण, अद्‌भुत रामायण के क्रम में कालिदास के रघुवंश सहित रामकथा पर आधारित बहुत से काव्य-नाटकों की रचना हुई। यहां वाल्मीकि रामायण के समानान्तर दूसरे आर्ष महाकाव्य, महाभारत तथा पश्चातवर्ती विभिन्न कतिपय पुराणों में वर्णित रामकथा के संदर्भ भी उल्लेखनीय हैं। संस्कृत के प्रायः सभी कवियों ने रामकथा को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाया। बौद्ध परम्परा में रामकथा से संबंधित दशरथ जातक, अनामक जातक तथा दशरथ कथानक नाम से तीन जातक कथाएं पालि भाषा में उपलब्ध हैं। जैन परम्परा में विमलसूरि कृत पउमचरियं (प्राकृत), स्वयंभूकृत पउमचरिउ (अपभ्रंश), रविषेण कृत पद्मरामायण (संस्कृत) उपलब्ध हैं। वर्तमान में भारत की राजभाषा हिन्दी की एक उपभाषा अवधी में तुलसीदास कृत रामायण (रामचरितमानस) तो समस्त उत्तर भारत का कंठहार बनी और उसने विश्व स्तरीय महाकाव्य का दर्जा प्राप्त किया। हिन्दी की अन्य उपभाषाओं में से राजस्थानी में मेहा रामायण, मैथिली में चंदा झा कृत रामायण हैं। इसके अलावा हिन्दी में राधेश्याम रामायण काफी लोकप्रिय हुई। हिन्दी में कुल रामायणों की संख्या 11 है। गुजराती में रामकथा से संबंधित 'राम बालकिया' शीर्षक वाली 47 रचनाएं उपलब्ध हैं। उड़िया में बलरामदास कृत जगमोहन रामायण अथवा दण्डि रामायण के अलावा 13 रामायण हैं। तेलुगु में भास्कर रामायण, रंगनाथ रामायण, रघुनाथ रामायणम्, भास्कर रामायण, भोल्ल रामायण सहित 12 रामायण हैं। कन्नड़ में कुमुदेन्दु रामायण, तोरवे रामायण, रामचन्द्र चरित पुराण, बत्तलेश्वर रामायण हैं। तमिल में रचित रामावतारम् अथवा कंबरामायण सहित 12 रामायण हैं। इसी तरह मलयालम में रामचरितम्, मराठी में भावार्थ रामायण सहित 8 रामायण हैं, असमिया में कथा रामायण, कश्मीरी में रामावतार चरित, पंजाबी में गुरु गोबिन्दसिंह द्वारा रचित रामावतार अथवा गोबिन्द रामायण, बांग्ला में कृत्तिवास रामायण सहित 25 रामायण हैं। उक्त के अलावा अरबी, फारसी तथा उर्दू में भी रामकथा लिखी गई हैं। भारत के विभिन्न प्रांतों में रचित रामायणों के अलावा भारत से बाहर नेपाल में रचित भानुभक्तकृत रामायण, सुन्दरानन्द रामायण, आदर्श राघव; कम्बोडिया की रामकर; तिब्बत की तिब्बती रामायण; पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण; इंडोनेशिया की ककबिनरामायण; जावा में रचित सेरतराम, सैरीराम, रामकेलिंग, पातानीरामकथा; इंडोचायना की रामकेर्ति तथा खमैररामायण; थाईलैंड की रामकियेन तथा बर्मा (म्यांम्मार) की यूतोकी रामयागन, रामवथ्थु, महाराम इत्यादि रामकथाएं उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त इटली, रूस, ब्रिटेन, बेल्जियम इत्यादि विभिन्न देशों के विद्वान-शोधार्थियों द्वारा रामकथा से संबंधित विभिन्न कृतियों को लेकर किये गये शोधकार्यों से रामकथा की व्यापकता दिग्दर्शित होती है।

बांग्ला रामायण श्रीरामपांचाली

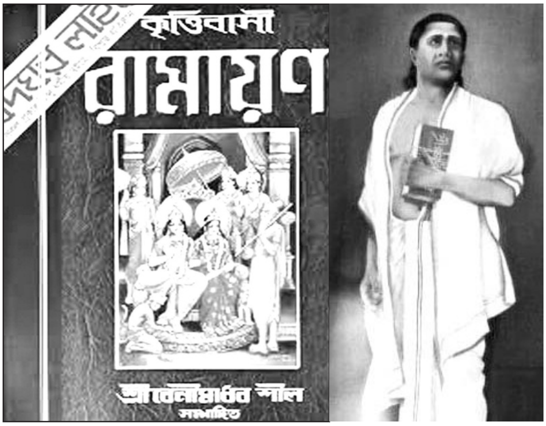

उत्तर भारत में प्रथम संस्कृतेतर रामायण **कृतिवास ओझा** कृत 'श्रीरामपांचाली' अथवा बांग्ला रामायण पर चर्चा करने से पूर्व बंगाल में रामकथा विषयक सृजन परम्परा का संक्षिप्त परिचय उचित रहेगा। इस परिचय को हम नौवीं शताब्दी ईस्वी से प्रारम्भ करना चाहेंगे जिसे बांग्ला भाषा का उद्‌भव काल भी माना जाता है। वर्तमान में विश्व की सबसे बड़ी भाषाओं में, बोलने वालों की संख्या लगभग 23 करोड़ होने से छठा स्थान रखने वाली बांग्ला अथवा बंगाली अपने उद्‌भव काल से मध्यकाल तक वर्तमान बंगाल, उड़ीसा, आसाम, त्रिपुरा, मिथिला एवं बांग्लादेश को अपने प्रभाव क्षेत्र में समाहित किये हुए थी। (गूगल विकीपीडिया से साभार)। बंगाल में गौडीय पालवंश के युवराज हारवर्ष की प्रेरणा से कवि अभिनन्दन ने नवीं शताब्दी ई. पूर्वार्द्ध में रामचरित की रचना की थी। इसके 36 सर्गों में वाल्मीकि रामायण (4/27 तथा 6/77) में वर्णित राम-लक्ष्मण के प्रस्रवण पर्वत के वर्षा-निवास से कुंभ-निकुंभ-वध तक की कथा मिलती है। इसमें भीम नामक कवि ने चार सर्गों का परिशिष्ट लिखकर युद्धकांड की कथावस्तु पूरी की है। (डॉ. कामिल बुल्के, रामकथा, छठा संस्करण 1999, पृ. 151)। इसके पश्चात 15वीं शताब्दी में रचित कृत्तिवास रामायण है। 17वीं शती की रामलीलापदावलियां तथा अद्‌भुतरामायण के अनुसार आश्चर्यरामायण अथवा अद्‌भुताश्चर्य रामायण प्रसिद्ध हैं। इनमें सीता स्वयं ही देवी का रूपधारण कर लंकापति रावण के बड़े भाई सहस्रस्कन्ध रावण का संहार करती हैं। पूर्व मध्यकाल अर्थात 11वीं-12वीं शताब्दी में बंगाल में शाक्तमत अथवा देवी उपासना अत्यंत लोकप्रिय हो गई थी, संभवतः इसी कारण बंगाल में सीता को असुर संहारक देवी के रूप में प्रतिष्ठित करने वाली अद्‌भुत रामायण अधिक लोकप्रिय हुई। इसी समय की चन्द्रावती की रामायणगाथा भी प्रसिद्ध ग्रंथ है। अर्वाचीन बंगाली राम-साहित्य में रामानन्द कृत रामलीला अद्‌भुतरामायण पर आधारित है। रामभक्तिरसामृत भी अद्‌भुत रामायण के अनुसार है। 18वीं शती के शंकर चक्रवर्ती की अध्यात्मरामायणपांचाली विष्णुपुरीरामायण के नाम से प्रख्यात है। अंगदेर रायवार (दौत्य कार्य), रामकवि भूषण का अंगद रायवार, रामचन्द्र का विभीषणेर रायवार, काशीराम का कालनेमिर रायवार, द्विज तुलसी का अंगदरायवार, हाराधन दास का अंगदरायवार तथा रामनारायण का विभीषणेर खोट्टा रायवार प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से रघुनन्दन गोस्वामी का रामरसायन (1831 ई.) सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रधान आधार वाल्मीकिरामायण है, परन्तु इस पर कृष्णलीला का प्रभाव है। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में वाल्मीकिरामायण का बांग्ला में अनुवाद तथा रामकथा पर मौलिक रचनाएं हुई हैं इनमें माइकेल मधुसूदनकृत मेघनादवध प्रशंसनीय है। इस तरह बंगाल में रामकथा विषयक लगभग 25 कृतियां उपलब्ध हैं। (स्वामी करपात्रीजी महाराज, रामायण मीमांसा, प्रथम संस्करण वि.सं. 2034, पृ. 383-384)।

ऊपर वर्णित बंगाल में रामकथा विषयक सृजन-परम्परा में सर्वाधिक उल्लेखनीय और लोकप्रिय कृत्तिवास रामायण है जिसे संपूर्ण बंगाल की प्रतिनिधि रामकथा के रूप में बांग्ला अथवा बंगाली रामायण भी कहा जाता है। इस रामायण का बंगाली घरों में बड़ी श्रद्धा से गायन पूर्वक पाठ किया जाता है। कृत्तिवास रामायण का दूसरा नाम 'श्रीरामपांचाली' है। वस्तुतः इस ग्रंथ का मूल नाम श्रीरामपांचाली ही है जो कि लोक-सुविधा के कारण कृत्तिवास रामायण नाम से प्रचलित हो गया। ग्रंथ के शीर्षक में आया पांचाली नाम संस्कृत काव्य शास्त्र के रीति सम्प्रदाय से संबंधित है जिसमें रीति को मार्ग भी कहा गया है। रीति या मार्ग से तात्पर्य काव्य सृजन में प्रयुक्त रचना शैली अथवा पद्धति से है। संस्कृत काव्यशास्त्र में मुख्य रूप से वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली रीतियां वर्णित हैं जिनका संबंध क्रमशः तत्कालीन विदर्भ, गौड़ एवं पांचाल जनपदों

से है। वैदर्भी रीति लगभग समास रहित होती है जबकि गौड़ी में समास का बाहुल्य होता है। पांचाली रीति न तो वैदर्भी रीति की भांति समास रहित होती है, और न ही गौड़ी की भांति समास-जटित होती है। यह मध्यममार्गी है। हालांकि इसमें छोटे-छोटे समास अवश्य मिलते हैं। इस रीति से काव्य भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी बनता है। अनुस्वार का प्रयोग न होने से यह वैदर्भी की तुलना में अधिक माधुर्ययुक्त होती है। इसे आख्यान काव्य की रचना हेतु सर्वाधिक उपयुक्त रीति माना जाता है। इस तरह श्रीरामपांचाली का तात्पर्य हुआ श्रीराम-आख्यानकाव्य (गूगल विकीपीडिया से साभार)।

श्रीरामपांचाली के प्रारंभ अथवा प्रत्येक कांड के अंत में एक-दो पंक्तियां मिलती हैं जिनसे ज्ञात होता कि इस रामायण के रचयिता का नाम कृत्तिवास ओझा अथवा कीर्तिवास ओझा है जो विचक्षण कवि हैं; उन्होंने पुराण सुनकर कौतुक में ही गीत रच डाले। 20वीं शताब्दी के कुछ विद्वानों ने, जिनमें नगेंद्रनाथ वसु एवं दिनेशचंद्र सेन प्रमुख हैं, एक हस्तलिखित पोथी प्राप्त की जो कृत्तिवास का आत्मचरित बताया जाता है। इस पोथी को दिनेशचंद्र सेन ने 1901 ई. में अपने ग्रंथ 'बंगभाषा व साहित्य' के द्वितीय संस्करण में प्रकाशित किया। इसके बाद नलिनीकांत भट्टशाली ने भी एक हस्तलिखित पोथी प्राप्त की। इन पोथियों के अनुसार कृत्तिवास पश्चिम बंगाल के नदिया जिले में फुलिया के रहनेवाले थे जो उस समय गौड़ राज्य में था। प्राचीनकाल में गौड़ और बंगाल दो भू-भाग अथवा जुड़वां राज्य थे। कृत्तिवास ओझा के पूर्वपुरुष यवन-उपद्रव-काल में अपना मूल स्थान छोड़कर यहां चले आए थे। इनके पितामह का नाम मुरारी ओझा, पिता का नाम वनमाली एवं माता का नाम मानिकी था जिनके कृत्तिवास सहित पाँच पुत्र थे। ये पद्मा नदी के पार वारेंद्रभूमि में पढ़ने गए थे। कृत्तिवास अपने अध्यापक आचार्य चूड़ामणि के अत्यंत प्रिय शिष्य थे। कृत्तिवास कवि होने के साथ-साथ व्याकरण, छंदशास्त्र, ज्योतिष, धर्म और नीति शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित थे। अध्ययन समाप्त करने के बाद वे गौड़ राज्य के राजा के दरबार में गए। यह कौन से गौड़ाधिपति थे, इसका उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वान इन्हें हिंदू सुल्तान राजा गणेश (कंस) मानते हैं तथा कुछ ताहिरपुर के राजा कंसनारायण। अन्य कुछ एक तीसरे राजा दनुजमर्दन का भी नाम लेते हैं। अस्तु, जनश्रुति के अनुसार कृत्तिवास ने गौड़ेश्वर को पाँच श्लोक लिखकर भेजे। उन्हें पढ़कर राजा अतीव प्रसन्न हुए और इन्हें तुरंत अपने समक्ष बुलाया। वहाँ जाकर इन्होंने कुछ और श्लोक सुनाए। राजा ने इनका अत्यंत सत्कार किया और भाषा (बांग्ला) में रामकथा लिखने का अनुरोध किया। कृत्तिवास ने इस अनुरोध को स्वीकार कर श्रीरामपांचाली काव्य का प्रणयन किया और बांग्ला भाषा के अत्यंत लोकप्रिय आदि कवि सिद्ध हुए। (गूगल विकीपीडिया से साभार)।

कृत्तिवास की निश्चित जन्मतिथि उक्त आत्मचरित से भी ज्ञात नहीं होती। बांग्ला साहित्य के इतिहासकार योगेशचंद्र राय 1433, दिनेशचंद्र 1385 से 1400 ई. के बीच तथा सुकुमार सेन 15वीं शती के उत्तरार्ध में इनका जन्म मानते हैं। एक अन्य अवधारणा के अनुसार कृत्तिवास का जीवनकाल ईस्वी 1381 से 1461 माना जाता है। लोक प्रचलित है कि गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस से 100 वर्ष पूर्व उत्तर भारतीय किसी भाषा में इस पहली रामायण की रचना हुई। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार के संपादन में गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीरामचरितमानस के सम्पादकीय के अनुसार इसकी रचना सन् 1576 में सम्पन्न हुई थी, इस तरह श्रीरामपांचाली अथवा कृत्तिवासी रामायण की रचना सन् 1476 में निर्धारित होती है। डॉ. कामिल बुल्के (रामकथा, छठा संस्करण 1999, पृ.189) भी इस संबंध में लिखते हैं कि 'कृत्तिवास ओझा ने बंगाली साहित्य के प्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रामायण अथवा श्रीरामपांचाली की रचना 15वीं शताब्दी ई. के अंत में पयार छन्द में की थी। इसका पाठ अनिश्चित है इसमें न केवल बहुत सी प्रक्षिप्त सामग्री मिलती है बल्कि कृत्तिवास की मूल भाषा को भी बाद के कथाकार और लिपिकार बदलते रहे हैं। क्षेपकों का पता लगाना दुःसाध्य है क्योंकि इस रचना की कोई भी हस्तलिपि 200 वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। राक्षसों की रामभक्ति से संबंध रखने वाले अंश सर्वसहमति से प्रक्षिप्त माने जाते हैं। ये अंश संभवतः 18वीं श. ई. में कविचन्द्र द्वारा लिखे गये हैं। कृत्तिवास का प्रथम संस्करण श्रीरामपुर मिशन प्रेस द्वारा सन् 1803 ई. में प्रकाशित किया गया था; इसमें अद्भुताचार्य की रामायण के बहुत से अंश जोड़ दिए

गए थे। बाद में बंगीय साहित्य-परिषद ने अयोध्याकांड (सन् 1900 ई.) तथा उत्तरकांड (सन् 1903 ई.) का सम्पादन किया था तथा सन् 1936 ई. में नलिनीकान्त भट्टशाली ने आदिकांड सम्पादित किया था। सम्पूर्ण कृत्तिवास रामायण के प्रामाणिक संस्करण की अपेक्षा है, इसके अभाव में प्रस्तुत ग्रंथ (रामकथा) के समस्त संदर्भ पूर्णचन्द्र दे द्वारा सम्पादित तथा चक्रवर्ती-चटर्जी एंड कं. द्वारा प्रकाशित कृत्तिवास रामायण के चतुर्थ संस्करण (कलकत्ता, सन् 1949) की ओर निर्देश करते हैं। इस संस्करण में प्रत्येक कांड अध्यायों में विभाजित है'। इस तरह डॉ. बुल्के ने पूर्णचन्द्र दे द्वारा सम्पादित कृत्तिवास रामायण को ही वर्तमान में ग्राह्य बताया है।

अन्य अनेक रामायणों की तरह कृत्तिवास कृत श्रीरामपांचाली अथवा कृत्तिवासी रामायण का आधार भी वाल्मीकि रामायण है। श्रीरामपांचाली में छह कांड हैं– आदिकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड और लंका काण्ड, जबकि वाल्मीकि रामायण में सात काण्ड हैं–बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड, इनमें से बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड क्षेपक अर्थात् बाद में किसी के द्वारा जोड़े हुए माने जाते हैं। वाल्मीकि रामायण के तीन पाठ प्रचलित हैं– दाक्षिणात्य पाठ (गुजराती प्रिंटिंग प्रेस मुम्बई, निर्णय सागर प्रेस मुम्बई तथा दक्षिण के अन्य संस्करण); गौड़ीय पाठ (गोरेसियो-पेरिस तथा कलकत्ता सीरीज के संस्करण) तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ (दयानंद महाविद्यालय लाहौर का संस्करण)। एच याकोबी (रामायण पृ.3) के अनुसार, प्रत्येक पाठ में बहुत से श्लोक ऐसे मिलते हैं जो अन्य पाठों में नहीं पाये जाते। दाक्षिणात्य तथा गौड़ीय पाठों की तुलना करने पर देखा जाता है कि प्रत्येक पाठ में श्लोकों की एक-तिहाई संख्या केवल एक ही पाठ में मिलती है। इसके अतिरिक्त जो श्लोक तीनों पाठों में पाए जाते हैं उनका पाठ भी एक नहीं है और इनका क्रम भी बहुत स्थलों पर भिन्न है। (डॉ. बुल्के, वही, पृष्ठ-20)। कृत्तिवासी रामायण, वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ पर निर्भर है जिसके अग्रलिखित अंश अन्य दो पाठों में नहीं हैं– विभीषण रावण से अलग होने के बाद पहले कैलास पर अपने भाई वैश्रवण (कुबेर) से मिलता है और बाद में राम की शरण लेता है, संजीवनी के लिए जाते समय भरत से हनुमान की भेंट, सीताहरण के पूर्व जटायु राम से अपने संबंधियों के यहां जाने की आज्ञा लेकर घर जाता है। जबकि वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ और कृत्तिवासी रामायण के अग्रलिखित अंश एक समान हैं–दशरथ की पुत्री शान्ता का उल्लेख, सीता की जन्मकथा में एक अप्सरा का उल्लेख, शापमोहिता कैकेयी का दोषनिवारण, राम के प्रति तारा का शाप, केसरी द्वारा धवल-वध तथा सम्पाति के पुत्र सुपार्श्व का प्रस्ताव, सरमा-वाक्य, निकषा-वाक्य, सभा में रावण द्वारा विभीषण पर पाद-प्रहार, कालनेमि का वृत्तान्त, विभीषण की कैलास-यात्रा, भरत-हनुमान-संवाद, विभीषण-निकषा संवाद।

डॉ. बुल्के (वही, पृ.190) के अनुसार– कृत्तिवास का प्रारंभिक कथानक पद्मपुराण-पातालखंड के गौड़ीय पाठ से प्रभावित है। कृत्तिवास के बालकांड के पूर्वार्द्ध में रघुवंश के राजाओं का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अग्रलिखित सामग्री बंगीय पातालखंड तथा कृत्तिवास दोनों में मिलती है-- हरिश्चन्द्र, सौदास, दिलीप, रघु, अज-इन्दुमती की कथा, दशरथ-जटायु की मित्रता, दशरथ द्वारा शनि से वर-प्राप्ति, अंध मुनि पुत्र का नाम सिंधु, मंथरा तथा दुंदुभी की अभिन्नता, अहल्या का शापवश शिला बन जाना। कृत्तिवास रामायण में राम भक्ति के प्रभाव के कारण परम्परागत कथानक में बहुत कुछ परिवर्तन किया गया है, उदाहरणार्थ– वाल्मीकि के उद्धार की कथा, वामदेव के प्रति वसिष्ठ का शाप, केवट का वृत्तांत, हनुमान के वक्षस्थल पर राम-नाम अंकित होने की कथा, राक्षसों की राम-भक्ति, रावण का पुत्र वीरबाहु रणभूमि में राम को विष्णु-चिन्हों से आभूषित देखकर अपना धनुष फेंक देता है तथा राम की स्तुति करने लगता है, विभीषण का पुत्र तरणी-सेन वैष्णव तिलक लगाये रणक्षेत्र में आता है और उसके शरीर, रथ तथा पताका पर राम-नाम अंकित है, रावण भी रणक्षेत्र में राम के सामने नतमस्तक होकर उनके अवतारत्व तथा दयालुता में विश्वास प्रकट करता है, रामजन्म के वर्णन में शुक-सारण की राम-भक्ति का उल्लेख मिलता है, नागपाश के वृत्तान्त में कृष्णभक्ति की झलक मिलती है।

ऊपर के विवरण में कृत्तिवासी रामायण के कथानक पर वैष्णव प्रभाव परिलक्षित होता है, परन्तु इस पर शैव तथा शाक्त सम्प्रदायों की भी गहरी छाप है। हनुमान शिव के अवतार माने जाते हैं तथा महीरावण की कथा में राम

तथा शिव की अभिन्नता का उल्लेख किया गया है। सेतुबंध के वृत्तांत में राम द्वारा शिवप्रतिष्ठा का उल्लेख है। लंकावरोध के पश्चात् पार्वती रावण की सहायता करने के लिए शिव से अनुरोध करती हैं, लंका-देवी अथवा लंकिनी के स्थान पर चामुंडा देवी ही हनुमान को लंका में प्रवेश करने से रोक देती हैं। रावण से युद्ध में राम की विजय भी उनके द्वारा की गई देवी-पूजा का परिणाम माना गया है। इसी आधार पर हिन्दी के आधुनिककालीन सुप्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'राम की शक्ति पूजा' की रचना की थी।

कृत्तिवास रामायण के अग्रलिखित प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते हैं, किन्तु ये अन्य रामकथाओं में विद्यमान हैं– राम तथा लक्ष्मण के स्थान पर भरत तथा शत्रुघ्न को विश्वामित्र के साथ भेजने का दशरथ का प्रयत्न, सीता का पूर्वानुराग, कैकेयी द्वारा दो भिन्न अवसरों पर वर प्राप्ति, राम के निर्वासन के पूर्व राम-गुहक की मैत्री, सीता द्वारा दशरथ को पिण्डदान, लक्ष्मण का राम की सहायता करने जाने के पूर्व कुटी के चारों ओर रेखाएं खींचना, तारा का शाप कि बालि भिल्ल के रूप में कृष्णावतार में राम का वध करेंगे, नल की वर-प्राप्ति की कथा तथा हनुमान-नल कलह और लक्ष्मण का संयम जिसके बल पर वह इन्द्रजित को हराने में समर्थ हुए, भस्मलोचन तथा महीरावण की कथा, सेतुभंजन का वृत्तांत, मन्दोदरी से विभीषण का विवाह, सीता द्वारा रावण का चित्र बनाने से राम द्वारा सीता का त्याग, कुश-लव का राम से युद्ध। कृत्तिवासीय कथानक के कुछ वृत्तांत केवल बंगाल की रामकथाओं में ही पाये जाते हैं, जैसे– राम-सीता विवाह के अवसर पर चन्द्रमा का नृत्य, हनुमान का लंका से ब्रह्मास्त्र ले आना, राम का मन्दोदरी को आशीर्वाद देना जिसके फलस्वरूप रावण की चिता जलती रहती है, सीता के प्रति मंदोदरी तथा अन्य राक्षसियों के शाप।

यद्यपि कृत्तिवास कृत श्रीरामपांचाली वाल्मीकि रामायण का बांग्ला में पद्यानुवाद माना जाता है तथापि इसे अविकल अनुवाद अथवा मात्र शब्दानुवाद नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें वाल्मीकीय रामकथा के प्रवाह में चरित्रों एवं घटनाओं को लेकर कवि ने नवीन उद्भावनायें की हैं और स्थान-स्थान पर जहां अवसर मिला है मध्यकालीन बंगाली समाज के परिवेश और संस्कृति का सुन्दर चित्रण किया है। जैसे वाल्मीकि रामायण के राम अपने वीरत्व और शौर्य में अद्वितीय हैं जिनमें स्वाभाविक रूप से दृढ़ कठोरता भी परिलक्षित होती है, जबकि श्रीरामपांचाली के राम कुसुम-कोमल हैं और वे हाथ में पुष्प-धनु लेकर वन जाते हैं। कृत्तिवास ने वाल्मीकि की तरह पितृभक्ति, सत्यनिष्ठा, त्याग, प्रजानुरंजन, पातिव्रत्य का यथावत प्रतिपादन किया है। परन्तु साथ ही कई नये आख्यान देकर उनमें बंगाल की रीति-नीति, आमोद-प्रमोद, आचार-अनुष्ठान तथा बंगाली स्त्री का स्थानीय रूप दिखाकर कृत्तिवास ने अपनी इस रचना में बंगाल के स्थानीय परिवेश को साकार किया है। इन्होंने वाल्मीकि रामायण के गूढ़ दार्शनिक अंशों, विचारों, विश्लेषणात्मक भागों एवं आलंकारिकता के स्थान पर अपने रचनासौष्ठव से बंगाल की निजता को सहजता से उभारने का सफल प्रयास किया है।

डॉ. कामिल बुल्के (रामकथा, छठा संशोधित संस्करण 1999) ने कृत्तिवास रामायण के कुछ विशिष्ट संदर्भों को उद्धृत किया है जो इस प्रकार हैं– कृत्तिवास रामायण (1/60-61) में स्वयंवर के समय राम को देखकर सीता की प्रेम दशा तथा देवताओं से उनकी विनय का वर्णन मिलता है (पृ. 285)। कृत्तिवास ने सीता-जन्म से संबंधित वृत्तांत को एक नया रूप दिया है जिसमें मेनका के स्थान पर जनक ने उर्वशी को देख लिया था तथा काममोहित हो जाने के कारण उनका तेज भूमि पर गिर गया था, जिससे पृथ्वी गर्भवती हुई। बहुत समय बाद जनक ने हल जोतते समय भूमि में से एक डिम्ब प्राप्त किया जिसमें से सीता निकली थी (पृ. 293)। कृत्तिवास रामायण (3/28) के अनुसार कुबेर नामक दैत्य ने ब्रह्मा से अवध्यता का वर प्राप्त किया था। बाद में उसने अष्टावक्र नामक मुनि का उपहास किया और उनसे शापित होकर राक्षस बन गया। इस कथा के अनुसार कबंध राक्षस बनने के पश्चात् ही इन्द्र ने उसके सिर पर वज्र मारा था जिससे उसके सिर तथा पैर उदर में घुस गए थे। उसके शरीर के जल जाने के बाद उसमें से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ, जो राम की स्तुति करने लगा। राम ने उसकी भक्ति से संतुष्ट होकर उसे अपने परमधाम जाने का वर दिया। अंत में कबंध ने

राम को शबरी के यहां जाने का परामर्श दिया तथा विमान पर चढ़कर विष्णुलोक के लिए प्रस्थान किया (पृ. 342)। कृत्तिवास रामायण (3/25) के अनुसार सीताहरण के बाद आहत जटायु से मिलने के पूर्व ही एक चक्रवाक पक्षी से राम-लक्ष्मण की भेंट हुई। राम ने चक्रवाक से पूछा कि जनकनंदिनी को कौन ले गया है किन्तु चक्रवाक ने परिस्थिति समझने के बाद राम का इस प्रकार उपहास किया–'तुम दो मनुष्य होते हुए भी एक स्त्री की रक्षा नहीं कर पाये? मैं अकेला पक्षी हूं, फिर भी दो मादाओं को रख लेता हूं। तुम लोगों ने स्त्री को खो दिया और अब इधर-उधर भटक कर उसके विषय में पूछते हो, क्षत्रिय समाज तुमको क्या समझेगा?' राम ने क्रोध में आकर उसको यह शाप दिया कि आज से तुम रति-सुख से वंचित रहोगे; रात में आहार खोजते-खोजते तुमको मादा से अलग रहना पड़ेगा। इस पर चक्रवाक पतित-पावन भक्तवत्सल नारायण के रूप में राम की स्तुति करते हुए अनुनय विनय करने लगा। अंत में राम ने तरस खाकर कहा कि द्वापर में व्याध तुम्हें जाल में फंसाएगा, तब तुम मेरे शाप से मुक्त हो जाओगे (पृ. 343)। कृत्तिवास रामायण में भी कई अन्य रामायणों की तरह लक्ष्मण रेखा खींचने का प्रसंग है (पृ. 358)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार जाम्बवान ने गृद्धपति सम्पाति से सीता की खोज में सहायता करने के लिए कहा तब सम्पाति ने अपनी असमर्थता प्रकट कर अपने पुत्र सुपार्श्व को बुलाया। सुपार्श्व ने अंगद को अपनी पीठ पर समुद्र के उस पार ले जाने का प्रस्ताव किया किन्तु अंगद ने अस्वीकार किया। सम्पाति अंत में हिमालय के लिए प्रस्थान करता है (पृ. 358)। कृत्तिवास रामायण में विभीषण के पुत्र तरणीसेन को रामभक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है (पृ. 433)। कृत्तिवास (5/43) के अनुसार सेतु बंध के समय नल और हनुमान के बीच इसलिए कलह होता है कि नल हनुमान द्वारा लाया हुआ पर्वत बायें हाथ से पकड़ता है। क्रुद्ध होकर हनुमान एक ही बार में चार पर्वत ले आते हैं और नल उन्हें नहीं पकड़ पाता है, इस पर दोनों एक दूसरे पर अभियोग लगाने के लिए राम के पास जाते हैं (पृ. 438)। कृत्तिवास रामायण (6/109) में जलती चिता का उल्लेख है। रणभूमि में मंदोदरी को देखकर तथा उसे सीता समझकर राम ने उसे 'सौभाग्यवती' होने का आशीर्वाद दिया। वास्तविकता ज्ञात होने पर राम ने कहा–'चिता सदैव प्रज्वलित रहेगी, इससे तुम्हारा सौभाग्य चिरस्थायी होगा' (पृ. 469)। कृत्तिवास रामायण (6/114) में मंदोदरी का शाप सीता की अग्निपरीक्षा का कारण माना गया है। मंदोदरी ने राम के दर्शनों की आशा से आनन्दमग्न सीता को यह कहकर शाप दिया कि तुम्हारा यह आनन्द अकस्मात् निरानन्द हो जायेगा। लंका की स्त्रियों ने भी उस अवसर पर सीता को शाप दिया (पृ. 472)। कृत्तिवास रामायण (7, 44-45) में सीतात्याग के तीन कारणों का सम्मिलित वृत्तान्त इस प्रकार है। भद्र से लोकापवाद की चर्चा सुनकर राम सरोवर में नहाने चले गए। रास्ते में उन्होंने किसी धोबी के मुंह से अपनी निन्दा सुन ली तथा घर पहुंचकर सीता द्वारा अंकित रावण का चित्र देख लिया। सीता की सखियों ने जिज्ञासा से प्रेरित होकर सीता से रावण का चित्र खींचने का अनुरोध किया था। सीता ने फर्श पर रावण का चित्र बना दिया था और बाद में थकित होकर वह उस चित्र के पास सो गई थीं। राम के आगमन पर सखियां चली गईं, रावण का चित्र देखकर राम का संदेह और दृढ़ हो गया और वह सीता को त्याग देने का संकल्प करके चले गए। (पृ. 558)।

स्वामी करपात्रीजी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रामायण मीमांसा (प्रथम संस्करण-वि.सं. 2034) में कई स्थानों पर श्रीरामपांचाली अथवा कृत्तिवासीय रामायण की विशिष्टता को प्रकट करने वाले उसके विशेष संदर्भों को उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैं– कृत्तिवासीय रामायण तथा अश्वघोष के बुद्धचरित्र में वाल्मीकि को भार्गव च्यवन ऋषि का पुत्र कहा गया है (पृ. 72)। जैसा कि प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि मूलतः व्याध था, कृत्तिवास रामायण में उस व्याध का नाम रत्नाकर तथा उसके पिता का नाम च्यवन है। यहां सप्तर्षियों के स्थान पर उसे ब्रह्मा और नारद मिलते हैं। ब्रह्मा के आदेशानुसार वह नदी में स्नान के लिए जाता है। उसके देखनेमात्र से नदी सूख जाती है। ब्रह्मा उसे राम नाम का उपदेश करते हैं। किन्तु वह उसका उच्चारण न कर सकने के कारण 'मरा' नाम जपता है (पृ.87)। कृत्तिवास (1।26) के अनुसार सिंहल के राजा सुमित्र ने अपनी पुत्री सुमित्रा के विवाह का निमंत्रण दशरथ को भेजा। दशरथ ने कौशल्या तथा कैकेयी से मृगया का बहाना

कर वहां जाकर उससे विवाह किया। विवाह की द्वितीय रात्रि को दशरथ ने नवविवाहिता पत्नी को लेकर अयोध्या को प्रस्थान किया। बंगाल में उस रात्रि को अशुभ मानकर कालरात्रि कहते हैं। वह अशुभ रात्रि दशरथ ने सुमित्रा के साथ बितायी, इसी कारण सुमित्रा दशरथ से उपेक्षित हुई। सुमित्रा को देखकर कौशल्या और कैकेयी को आशंका हुई। वे सोचने लगीं कि यह हमसे अधिक सुन्दरी है। दशरथ हमारी उपेक्षा करेंगे। अतः दोनों ने पार्वती तथा शंकर की उपासना की और उनसे वर मांगा कि सुमित्रा अभागिनी हो। बाद में सुमित्रा को प्रमाद हुआ जिससे सब पत्नियों से सुन्दर होने पर भी दशरथ उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे तथा कैकेयी का अधिक आदर करने लगे (पृ. 435-436)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार दशरथ की 750 रानियां थीं जबकि वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह संख्या 350 है (पृ.437)। कृत्तिवास रामायण (1/29) के अनुसार दशरथ ने निःसंतान लोमपाद को अपनी पहली संतान देने की प्रतिज्ञा की थी। अतः जब उनकी पत्नी (भार्गव राजा की पुत्री) एक कन्या को जन्म देती है, दशरथ उसका नाम हेमलता रखकर उसे लोमपाद के यहां भेजते हैं। बाद में हेमलता के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। अन्यत्र दशरथ की कन्या का नाम शान्ता ही माना जाता है। बंगाल की रामकथाओं में दशरथ की पुत्री का प्रायः उल्लेख मिलता है (पृ. 441)। कृत्तिवास रामायण (1/59) में इन्द्र को गौतम का प्रियतम शिष्य माना गया है। उन्होंने गौतम का वेष धारण कर अहल्या के साथ रमण किया। गौतम अहल्या के शरीर पर शृंगार के लक्षण देखकर इन्द्र का दुराचार जान गये। इन्द्र आश्रम में ही रहते थे। बुलाये जाने पर पुस्तकें कांख में दबाये गौतम के पास आये (पृ. 445)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार राम ने अहल्या के मस्तक पर ही पैर रखकर उसे पाषाण से प्रकट किया था (पृ. 448)। कृत्तिवास रामायण में सीता को शंका होती है कि एक धनुष को तोड़कर (राम ने) मेरे साथ विवाह किया, अब भृगुमुनि (परशुराम) एक धनुष और लाये हैं। न जाने मेरी कितनी सपत्नियां होंगी (पृ. 467)। कृत्तिवास रामायण में लक्ष्मण परशुराम से कुछ उग्रता से बातें करते हैं (पृ. 469)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार दशरथ अपने मंत्रियों से कहते हैं कि मुझे अंधक मुनि ने वर दिया है कि ऋष्यशृंग द्वारा यज्ञ कराने से पुत्र-प्राप्ति होगी। यह ऋष्यशृंग कौन हैं? इस पर वसिष्ठ ने उनकी कथा बतायी। तब दशरथ लोमपाद के यहां जाकर ऋष्यशृंग को अयोध्या लाकर यज्ञ कराते हैं (पृ. 474)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार दुर्गा का कथन है कि राम शिव के गुरु हैं, उनमें भेद नहीं है (पृ. 483)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार विष्णु कश्यप और अदिति की ओर निर्देश करते हुए देवताओं से कहते हैं कि दशरथ तथा कौशल्या ने मेरी सेवा की है और मैं उनको वर दे चुका हूं कि मैं तुम्हारे घर में जन्म लूंगा (पृ. 489)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार रावण का मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। आकाशवाणी से रावण को यह विदित हो गया कि विष्णु का अवतार हो गया है अतः रावण ने शिशु राम को मारने के लिए शुक और सारण को भेजा, परन्तु वे शिशु को प्रणाम करते हैं और भक्ति का वरदान पाकर लंका लौट जाते हैं (पृ. 497)। कृत्तिवास रामायण में अनेक राक्षस रामभक्त बन जाते हैं (पृ. 499)। कृत्तिवास रामायण (1/53) के अनुसार किसी दिन दशरथ अपने पुत्रों के साथ गंगास्नान करने गये थे। वहां गुहक अपने तीन करोड़ सैनिकों द्वारा दशरथ की सेना को रोक लेता है तथा राम को देखने की इच्छा प्रकट करता है, पर दशरथ राम को रथ में छिपा कर उससे युद्ध करके उसे हराकर और बांधकर रथपर रखवा देते हैं। इस पर गुहक पैर के अंगूठे से बाण मारता है। राम यह कौतुक देखने आते हैं। वह राम का दर्शन कर अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाता है कि मैं पूर्वजन्म में वसिष्ठ-पुत्र वामदेव था। दशरथ अंध मुनि के पुत्रवध (श्रवण-वध) का प्रायश्चित पूछने गये थे। उस दिन वसिष्ठ घर पर नहीं थे। मैंने ही दशरथ को तीन बार राम-नाम जपने का परामर्श दिया था। पिताजी के आने पर जब मैंने यह प्रसंग सुनाया तब उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझे चंडाल बन जाने का शाप दिया। उन्होंने कहा एक ही बार के राम नाम उच्चारण से सब पाप कट जाते हैं, फिर तीन बार राम नाम जपने का उपदेश तुमने क्यों किया? वसिष्ठ ने मुझसे कहा जब दशरथ के घर राम का जन्म होगा तब उनका चरण-स्पर्श कर तुम शाप-मुक्त होओगे। राम ने दशरथ की अनुमति से उसे शापमुक्त किया और उससे मैत्री की (पृ. 501)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार ब्रह्मा

ने शिव से कहा था कि ऐसी युक्ति सोची जाय कि जिससे सीता का विवाह राम से ही हो। इस पर शिव ने परशुराम को अपना धनुष देकर आदेश दिया कि मेरा यह धनुष जनक के घर में रख दो और जनक से कहना कि सीता के साथ वही विवाह करे जो इस धनुष को तोड़ सके (पृ. 507)। कृत्तिवास रामायण (1/62) में चन्द्रमा ने नर्तकी का रूप धारण कर (राम-सीता विवाहोत्सव में) अपने नृत्य से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया, जिससे शुभ मुहूर्त टल गया, जैसा कि देवता चाहते थे, अतएव लौकिक दृष्टि से वह विवाह सुखदायक नहीं हुआ (और सीता का हरण हुआ)। इसी के आधार पर अन्य कल्पनाएं हुई हैं (पृ. 510)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार कुशध्वज वेद पाठ कर रहे थे उस समय उनके मुख से एक कन्या उत्पन्न हुई। उन्होंने उसका नाम वेदवती रखा। शुम्भदैत्य ने कुशध्वज को मार डाला एवं वेदवती तपस्या करने चली गयी। तप करते समय रावण से अपमानित होकर वेदवती ने अग्नि में प्रवेश किया (पृ. 519)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनका श्राद्ध उचित रीति से करने के लिए राम और लक्ष्मण अंगूठी बेचने चले जाते हैं। तब अवकाश देखकर सीता फल्गु नदी के किनारे खेलने लगती हैं। पितर दशरथ यह देखकर कहते हैं कि भूख की पीड़ा असह्य हो उठी है, रेत का पिण्ड देकर भूख शांत कर दो। सीता ने ऐसा ही किया। परन्तु बाद में ब्राह्मण, तुलसी और फल्गु सीता द्वारा पिण्ड दान करने का साक्ष्य नहीं देते हैं। अतः उनको सीता शाप देती हैं। वट वृक्ष सीता का समर्थन करता है तथा राम और सीता दोनों से आशीर्वाद प्राप्त करता है (पृ. 539)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार केकैयी को जो दो वर प्राप्त हुए थे उनमें से एक दशरथ के शम्बरासुर से हुए युद्ध में मिला था और दूसरा वर दशरथ के व्रण (फोड़े) की पीव चूस लेने के कारण मिला था (पृ. 544)। कृत्तिवास रामायण (5/10) के अनुसार शूर्पणखा, मंथरा का रूप धारण कर सीता से मिलने अशोकवाटिका में आई थी (पृ. 558)। कृत्तिवास रामायण (1/27) में कहा गया है कि कभी अयोध्या में अनावृष्टि हुई थी। नारद से उसका कारण रोहिणी नक्षत्र पर शनि का दृष्टिपात जानकर दशरथ शनि से युद्ध करने गये। शनि की दृष्टि से दशरथ का रथ टूट गया, जटायु ने उसे संभाला। दशरथ की विजय हुई। फलस्वरूप अग्नि को साक्षी करके दोनों ने मित्रता की (पृ. 560)। कृत्तिवास रामायण (3/23) में प्रसंग है कि ब्रह्मा, राक्षसों को निद्रा से मोहित करके अशोकवाटिका में सीता के पास जाकर राम के आगमन का आश्वासन देकर उन्हें क्षुधा और तृषा मिटानेवाला पायस खिलाकर चले जाते हैं (पृ. 579)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार अंतरिक्ष में स्थित देवता युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। पार्वती ने शिव से अनुरोध किया कि वह अपने भक्त रावण की रक्षा करें। शिवजी ने कहा, रावण को अमरत्व का वर नहीं प्राप्त है। विष्णु अवतार लेकर उसका वध करने आये हैं। अब उसका बचना संभव नहीं है (पृ. 665)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार गरुड़ ने राम की नागपाशमुक्ति के पश्चात् उनसे कृष्ण-रूप दिखाने की इच्छा प्रकट की। इस पर राम ने कहा मुझे न देखकर वानर-सेना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जायगी। तब गरुड़ ने पंख फैलाकर राम को छिपा लिया और राम ने उन्हें कृष्ण-रूप दिखाया। हनुमान ने योगबल से सब वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने कृष्णावतार के समय बदला लेने का निश्चय किया (पृ. 667)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार (हनुमान के संजीवनी लेने जाने के बाद) मध्यरात्रि में रावण की आज्ञा के अनुसार सूर्योदय हुआ था। किन्तु हनुमान ने सूर्य को अपनी कांख में दबा लिया था (पृ. 668)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार रावण ने शान्तिकर्म का आयोजन किया। चंडीपाठ के लिए वृहस्पति को बुलाया। देवताओं ने पवनपुत्र हनुमान के द्वारा राम को चंडीपाठ अशुद्ध कराने का परामर्श दिया। तब हनुमान मक्खीरूप धारण कर गये और चंडीपाठ के दो अक्षर चाट आये। परन्तु वृहस्पति ने अभ्यासवश शुद्ध पाठ ही किया। हनुमान ने विक्रमरूप दिखाया, वृहस्पति डर गये। हनुमान ने ग्रंथ छीनकर प्रथम अध्याय के तीन श्लोक मिटा दिये। अशुद्ध पाठ देखकर चंडी (माहेश्वरी) कैलास चली गयी (पृ. 677)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार रावण द्वारा तपस्या के पश्चात् ब्रह्मा ने उससे कहा था कि तुम्हारे सिर एवं भुजाएं कटने पर फिर उत्पन्न हो जायेंगी और रावण को ब्रह्मास्त्र देकर कहा इसी ब्रह्मास्त्र से तुम्हारा मर्मस्थान भेदित होने पर ही मृत्यु होगी। रावण ने उसे मंदोदरी के रक्षण में दे रखा था। विभीषण ने यह रहस्य राम को बताया। हनुमान ने मंदोदरी के पास ब्राह्मण वेष में जाकर कहा, जब तक ब्रह्मास्त्र तुम्हारे

पास है रावण नहीं मर सकता है, किन्तु मुझे शंका है कि विभीषण कहीं यह जान न ले कि तुमने उसे कहां छिपा रखा है। मंदोदरी ने कहा मैं सावधान हूं। मैंने उसे स्फटिक के खंभे में छिपा रखा है। हनुमान ने लाठी से खंभा तोड़ दिया तथा ब्रह्मास्त्र राम के पास ले गये (पृ. 678)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार राम-रावण युद्ध के पश्चात समुद्र की प्रार्थना से (लंका जाने हेतु बांधे गये) सेतु को भंग किया गया था (पृ. 681)। कृत्तिवास रामायण (5/47) के अनुसार भस्मलोचन नामक राक्षस की दृष्टि जिस पर पड़ती थी वह उसी क्षण भस्मीभूत हो जाता था। इस कारण भस्मलोचन प्रायः अपनी आंखों को चमड़े के परदे से ढके रखता था। जब रामसेना समुद्र पारकर लंका की ओर बढ़ रही थी तब रावण ने उसके विरुद्ध भस्मलोचन को भेज दिया। विभीषण के परामर्श से राम ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर उसके सामने असंख्य दर्पण रख दिये जिनपर दृष्टि डालकर उसने स्वयं को देखा और अपने आपको ही जला लिया (पृ. 683)। कृत्तिवास रामायण (6/79-87) के अनुसार महीरावण अष्टावक्र द्वारा शापित शक्रधनु गंधर्व था। निकषा के परामर्श से रावण ने उसे बुलाया था, किन्तु विभीषण ने पक्षी के रूप में दोनों की मंत्रणा सुन ली और राम को सावधान कर दिया। हनुमान अपनी पूंछ बढ़ाकर चारों ओर से सेना की रक्षा करते हैं। राम ने आकाश में विष्णु चक्र रख दिया था। नल ने पाताल में माया का विस्तार किया। महीरावण ने क्रमशः दशरथ, कौशल्या और जनक के रूप में आकर हनुमान को धोखा देने का असफल प्रयास किया। अंत में वह विभीषण के रूप में प्रवेश पाकर मायाचूर्ण से राम और लक्ष्मण को निद्रामग्न करके दोनों को अपने भवन में ले गया। हनुमान पाताल पहुंच कर किसी वृद्धा से राम और लक्ष्मण का वृतान्त जानकर मक्षिका-रूप धारण कर महल में जाकर राम और लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं। बाद में हनुमान महामाया मंदिर में देवी को राम का समाचार सुनाते हैं। देवी राम और शिव की अभिन्नता का उल्लेख करती हुई महीरावण के वध का उपाय बताती है कि जब राम और लक्ष्मण देवी के सामने उपस्थित किये जायें तो उनको महीरावण से कहना चाहिए कि हम साष्टांग प्रणाम करना नहीं जानते, हमें करके बतलाइये। जब वह साष्टांग प्रणाम करे तब उसी समय उसे मार डालना चाहिये। देवी के इस निर्देश के अनुसार ही हनुमान ने महीरावण का वध कर दिया। बाद में महीरावण की पत्नी भी युद्ध में आती है। हनुमान के पादप्रहार से उसके गर्भ से चार सिरवाले अहिरावण का जन्म हुआ। उसने तुरन्त हनुमान का मुकाबला किया तथा हनुमान के हाथों मारा गया (पृ. 685)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार बह्मा ने रावण को वर दिया था कि नर और वानर के सिवा कोई भी तुम्हें नहीं मार सकेगा और सिर कटने पर भी तुम मरोगे नहीं (पृ. 695)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार राजा सौदास गंगाजल के स्पर्श से ब्रह्महत्या के शाप से मुक्त होता है (पृ. 703)। कृत्तिवास रामायण (6/129) के अनुसार राम के राज्याभिषेक के बाद सीता हनुमान को भोजन परोसकर उन्हें तृप्त करने में असमर्थ होने पर ध्यान से जानती है कि ये तो रुद्रावतार हैं (पृ. 724)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार जहां कहीं रामकथा का पाठ होता है वहां अदृश्य रूप में हनुमानजी विराजमान रहते हैं (पृ. 734)। कृत्तिवास रामायण (6/128) के अनुसार हनुमान ने माला हाथ में लेकर उसे ध्यान से देखा और उसकी बहुमूल्य मणियां तोड़कर वे खाने लगे। पूछने पर इस व्यवहार का कारण यह बताया कि इनमें रामनाम अंकित नहीं है। अतः मेरी दृष्टि में इनका कोई मूल्य नहीं है। इस पर किसी ने पूछा क्या तुम्हारे शरीर में राम-नाम अंकित है। यह सुनकर हनुमान ने नखों से छाती फाड़कर दिखलायी। उनके शरीर में सर्वत्र रामनाम का उल्लेख था (पृ. 739)। कृत्तिवास रामायण के अनुसार बाली की पत्नी तारा ने राम को शाप दिया था कि सीता अधिक समय तक तुम्हारे साथ नहीं रहेगी और अपनी पवित्रता व पातिव्रत्य के कारण अंततः भूमि में प्रवेश करेगी (पृ. 751)।

श्रीरामपांचाली अथवा कृत्तिवासी रामायण के उक्त प्रसंगों को देखकर लगता है कि कृत्तिवास ओझा ने अपनी इस रचना में वाल्मीकि रामायण के अलावा रामकथा से संबंधित अन्य स्रोतों तथा बंगाल में प्रचलित रामकथा संबंधी लोकगाथाओं का उपयोग भी किया है। इनके अलावा कवि ने कई जगह नवीन उद्‌भावनाएं भी की हैं और इनके साथ ही बंगाल के मध्यकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को स्थान-स्थान पर इस कृति में समाविष्ट कर मौलिकता का परिचय भी दिया है। ❑❑

—डॉ. बाबूलाल शर्मा

असमिया रामायण : माधव कन्दली

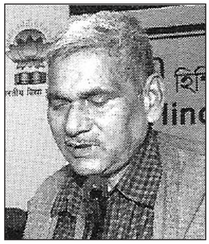

डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय

रामायण भारतीय जाति का, मानवता का अमर महाकाव्य है इसमें भारत ने अपने को पूर्ण रूप से उद्‌भासित किया है। रामायण का भारतीय समाज और भारतीय जनजीवन पर प्रभाव बहुत गहरा है। हजारों वर्षों से इसने भारत की हृदय-भूमि को गंगा की धारा की तरह सिंचित किया है। इसका प्रभाव भारतीय जनमानस पर आज भी अक्षुण्ण है। रामायण के प्रति विद्वान और अनपढ़ दोनों के हृदय में अपार आदर और श्रद्धा का भाव विद्यमान है। रामायण भारतीय समाज का प्राण बिन्दु है। इसलिए रामायण महाकाव्य भारत के आबाल-बृद्ध-वनिता हर व्यक्ति के लिए असीम श्रद्धा की वस्तु है। महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण रचित होने के पहले रामकथा आख्यानक काव्य के रूप में प्रचलित और लोकप्रिय थी। अतः रामायण को भारतीय का धर्म-प्राण कहा जाता है। रामायण के दीर्घ कथा प्रवाह में जो कुछ निर्मित हुआ है उसका हमारे जीवन के साथ बड़ा ताल-मेल है। युग बीत जाते हैं, विवरण के संदर्भ बदल जाते हैं, परन्तु मनुष्य के मूलभूत विचारों में कोई बदलाव नहीं आता। रामायण की पुरातनता, सनातनता का यही रहस्य है। भारत के हर ग्राम में राम का निवास है क्योंकि वे आदर्शों के प्रतिनिधि, मर्यादा पुरुषोत्तम तथा विष्णु के अवतार हैं। राम का जीवन एक ऐसा आदर्श जीवन है जिसके अंदर एक औसत भारतीय को कैसा जीवन जीना चाहिए, क्या उसके दैनंदिन जीवन का आचरण होना चाहिए तथा पारिवारिक जीवन में उसे किन मयार्दाओं का पालन करते हुए विभिन्न आश्रमों के निर्वाह से अपनी जीवन यात्रा आगे बढ़ानी चाहिए, यह सब देखा जा सकता है।

रामायण के राम संस्कृति-मनुष्य हैं, पुराण-पुरुष हैं। वे सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धर्मयुक्त मयार्दाओं का पालन करने वाले नर श्रेष्ठ हैं। सामाजिक रूप से राम का चरित्र निष्कलंक कथा है। वे ऐतिहासिक महापुरुष थे, जिन्होंने कर्तव्य के आगे सदैव अपने क्षुद्र स्वार्थों को बलि दी। राम ने आदर्श राजा बनकर प्रजा-पालन किया। वे घर-घर में परिवार के समस्त बंधनों के आदर्श हो गये हैं। वे स्वयं महान थे और जिनके अवतार स्वीकार किये गये वे विष्णु भी महान थे, दैवी तथा मानवी गुणों के समन्वय के विराट पुरुष थे। भक्त लोग राम को नारायणत्व से नरत्व तक अवतरित मानते हैं और अनेक प्रबुद्ध जन उन्हें नरत्व से नारायणत्व तक उन्नत। वे चाहे नारायण हों या नर उनका सबसे बड़ा गुण है मानवीयता। इसलिए रामकथा वस्तुतः मानव जाति की कथा है और रामायण मानवता का महाकाव्य। वाल्मीकि रामायण समस्त राम-काव्यों का उद्‌गम स्रोत है। यह जातीय महाकाव्य है। ऋषि प्रणीत होने के कारण इसे आर्ष महाकाव्य भी कहा जाता है। संस्कृत के रघुवंश और नैषध काव्य, तमिल भाषा की 'कंब रामायण', मलयालम की 'अध्यात्म रामायण', असमिया की 'कंदली रामायण', मराठी की 'भावार्थ रामायण', बंगला की 'कृतिवास रामायण' आदि इसी कोटि में आते हैं। इन सभी रामकाव्यों पर अपने-अपने परिवेश

का गहरा धार्मिक-सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव लक्षित होता है। **पूर्वांचल के काव्यों का आधार वाल्मीकि रामायण का गौड़ीय संस्करण ही रहा है** और उनमें इस प्रदेश की धार्मिक-सांस्कृतिक प्रवृतियों तथा लोकाचार आदि का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। संस्कृत भाषा से लेकर अपभ्रंश से होती हुई दक्षिण भारतीय भाषाओं, बंगाली, असमी, उड़िया आदि में जो विकसित हुई, उन सब पर स्थानीयता, जाति धर्म और निजंधरों का दबाव है। रामकथा भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बनकर भारत की समग्र जनता के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुई है। रामाख्यानक रचनाएं भारतीय अस्मिता की बोधक, सांस्कृतिक धरोहर, साहित्यिक-राष्ट्रीय और शाश्वत मानव मूल्यों का उत्कृष्ट भंडार होने के साथ ही लोकमानस को आन्दोलित-आह्लादित करने में सर्व प्रकारेण समर्थ है। राम कथा को भारत की किसी एक भाषा, किसी एक जाति, किसी एक मतवाद, किसी विशिष्ट सम्प्रदाय, किसी राजनीतिक मत, किसी एक विचारधारा से जोड़ना हमारी अज्ञानता तथा हठधर्मिता का प्रतीक है। रामकथा ने भारतीय वाङ्गम को ही नहीं, अपितु विश्व वाङ्गम को प्रभावित किया है।[1]

असम और बंगाल में दोनों प्रदेशों में शक्ति की उपासना अत्यंत लोकप्रिय थी और वैष्णव कवियों के लिए उसके साथ अपनी आस्थाओं का समन्वय करना एक प्रकार से आवश्यक था। भक्ति का बीज प्राग्वैदिक युग से ही भारतवासियों की मानसिकता में विद्यमान था। परवर्ती काल में आर्यो की बौद्धिकता जब भक्ति की प्राथमिक प्रवृतियों के साथ मिश्रित होने लगी तब भारतीय धार्मिक भाव के अंदर धीरे-धीरे गंभीरता और व्याप्ति आयी। अवतारवाद की कल्पना के प्रसार के साथ नरोत्तम राम भी विष्णु के अवतार के रूप में चिह्नित हुए। रामचरित्र के अंदर समाज कल्याण का बीज निहित होने के कारण राम को केन्द्र कर भक्ति का समावेश होने लगा। स्वामी रामानंद के आन्दोलन के माध्यम से यह रामोपासना खूब लोकप्रिय हो उठी। भारतीय धर्म की सारी शिक्षाओं को रामायण के माध्यम से समाज व जीवन में व्याप्त कर देने के लिए तत्कालीन चिन्तकों भक्तों ने प्रयास करना शुरू कर दिया। इसी के फलस्वरूप विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं तथा लोकभाषाओं में रामायण की रचना की प्रवणता बढ़ने लगी। प्रादेशिक भाषाओं में रचित रामायणों में भक्ति का प्राधान्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। यह युग ही भक्ति का युग था। इन रामायणों में राम विष्णु के अवतार हैं और इसके सारे श्रेष्ठ चरित्र विभिन्न देवी-देवताओं के अंश हैं।

रामकथा पर संस्कृत में वाल्मीकि के बाद भी अनेक रामायणों की रचना हुई। उनमें योगवशिष्ठ, 'अध्यात्म रामायण' और 'अद्‌भुत रामायण' हैं। डॉ. भीखी प्रसाद वीरेन्द्र अपने शोधग्रंथ 'रामकथा : कृत्तिवास और तुलसीदास' की भूमिका में लिखते हैं– 'सबसे पहले तमिल भाषा में रचित हुई 'कम्ब रामायण' (द्वादश शताब्दी) उसके बाद तेलगू भाषा में रचित हुई 'द्विपद रामायण', 'निर्वाचनोत्तर रामायण', 'उत्तर रामायण' (त्रयोदश सदी) चतुर्दश शताब्दी में रचित हुई तेलगू भाषा में 'भास्कर रामायण', मलयालय भाषा में 'रामचरितम्', असमिया में 'माधव कंदलि रामायण' और 'लवकुश युद्ध', गुजराती भाषा में 'रामलीलाना पदों'। पंचदश शताब्दी में रचित हुई बंगला की 'कृत्तिवासी रामायण', मलयालम भाषा में 'कलश रामायण', गुजराती में 'राम विवाह', 'राम बालचरित', 'सीता हरण'। सोलहवीं शताब्दी में विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनेक रामायणों की रचना हुई जिनमें हिन्दी में तुलीस का 'रामचरितमानस' और उड़िया में बलराम दास की 'रामायण' प्रसिद्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी में रचित हुई नेपाली भाषा में 'भानुभक्त रामायण'। (पृ.15-16)।

मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन में रामकथा और राम चरित्र को सर्वथा नवीन गति मिली। हिन्दी के प्रथम रामायणकार विष्णुदास और असमिया के प्रथम रामायणकार माधव कंदलि का रचनाकाल भक्ति आंदोलन की पूर्ववर्त्ती सीमा पर पड़ता है। दोनों कवियों की रामाख्यान कृतियों का मूलाधार रामायण है। माधव कंदलि का लक्ष्य भी अन्य रामायणों की तरह संस्कृत में प्रणीत रामायण को जनभाषा में प्रस्तुत कर राम के चरित्र के माध्यम से जनसाधारण के सम्मुख मानवीय गुण, शील और आचार का आदर्श प्रस्तुत करना रहा होगा। असम में सबसे पहले माधव कंदली ने रामायण लिखी इनका प्रामाणिक जीवन उपलब्ध नहीं है। असमिया विद्वान इन्हें

चौदहवीं शती का और बंगला विद्वान सुकुमार सेन इन्हें सोलहवीं शती का मानते हैं। प्राचीन काल के अधिकांश कवियों की भांति माधव कंदलि के भी जीवन-वृत्त ग्रंथों एवं आश्रयदाता के बारे में साक्ष्य के अभाव के कारण अनिश्चितता बनी हुई है। वैसे कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने वाराही (वराह क्षत्रिय) राजा महामाणिक्य के अनुरोध पर रामायण की रचना की। "माधव कंदलि ने राजाश्रित होने के कारण राजा के अनुरोध पर ही रामायण की रचना लोकभाषा में की थी। वे ब्राह्मण थे। उस समय विष्णु की पूजा-उपासना का प्रचलन था। इसीलिए वे वैष्णव भक्ति की ओर आकर्षित होकर भी रामकथा लिखने के लिए भी प्रेरित होंगे।"[1] कंदली ने आस-पास असम के नौगांव अंचल में कहीं जन्म लिया होगा। विद्वानों में मतैक्य नहीं होने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि महा माणिक्य राजा तथा उनके आश्रित कवि माधव कंदली का काल चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। माधव कंदलि को संस्कृतेतर किसी भारतीय भाषाओं में प्रथम रामायण लिखने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने स्वीकार किया है कि जन समाज उन्हें कविराज कंदलि कहता है। 'शास्त्रार्थ में पारंगत लोग ही कंदली कहलाते होंगे।' सत्येन्द्रनाथ शर्मा ने भी न्याय शास्त्र में गति रखने वाले व्यक्ति को कंदली कहा है।[2]

माधव कंदलि की कंदलि उपाधि के विषय में प्रायः सभी एकमत हैं कि मध्यकालीन असम में न्याय शास्त्री, शास्त्रार्थपटु, तर्कपटु, विद्वानों की सम्मान सूचक उपाधि 'कंदलि' होती थी। एक विद्वान अनंत कंदलि की एक उक्ति है– "तर्कत लाभिलानाम अनंत कंदलि।" कविराज की उपाधि, संभवतः उन्हें अपने आश्रयदाता अथवा विद्वत मंडली से प्राप्त हुई होगी। पांडित्य गरिमा के कारण उन्हें कंदलि उपाधि मिली होगी एवं सर्वजनबोध्य कविता रचने के लिए कविराज उपाधि मिली थी। अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है कि माधव कंदलि कविराज के नाम से विख्यात थे। उन्होंने रामायण की रचना पयार नामक छंद में वाराही राजा महामाणिक्य के अनुरोध पर की थी। असम में शंकरदेव तथा माघवदेव द्वारा अपनी पंचकांड रामायण में क्रमशः उत्तरकांड और आदिकांड जोड़कर सप्तकांडात्मक स्वरूप दिए जाने के कारण माधव कंदलि की रामायण का प्रभाव विदित होता है। डॉ. मागध ने अपनी पुस्तक 'असम प्रान्तीय राम साहित्य' में कथा-गुरु चरित के आधार पर माधव कंदलि को शंकर देव की गुरु परम्परा में सन्निविष्ट किया है। माधव कंदलि, राघवाचार्य, महेन्द्र कंदलि शंकर देव के गुरु थे। शंकर देव ने भी उत्तरकांड में माधव कंदलि को ससम्मान स्मरण किया है। कंदलि के सम्बंध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है। लेखक राम का भक्त है, वह स्थान-स्थान पर राम की वंदना करता है। राम कथा के मर्मस्पर्शी स्थलों की उसे पहचान है। रमानाथ त्रिपाठी ने लिखा है– 'पता नहीं पूर्वांचलीय लोग अपने प्रदेश की रामायणों को वाल्मीकि का अनुवाद क्यों मानते हैं? जो सच में अनुवाद हैं ही नहीं। बंगला और उड़िया भाषाओं की रामायणों के स्रोत ग्रंथ कई रामायणें, नाटक, पुराण आदि हैं किन्तु असमिया रामायण में वाल्मीकि रामायण को ही अपना मुख्य आधार बनाया है।'[3] असमिया विद्वान श्रीकृष्णकांत संदिकै ने एक बार कहा था-'संस्कृत रामायण के पाठ निर्णय और इतिहास आलोचना के लिए प्राचीन असमिया रामायण की सहायता की आवश्यकता होगी।'[4]

असमिया रामायण में वाल्मीकि का अंध अनुसरण

नहीं है। लेखक ने वाल्मीकि की कथा को अपने युग और परिवेश के अनुकूल प्रस्तुत कर साधारण जन के लिए नूतन आस्वाद के साथ प्रस्तुत किया है। असमिया जनता स्थानीय चित्रण समन्वित इस रामायण के प्रति अपनत्व की अनुभूति करती है। डॉ. पुष्पासिंह का मत है– 'कवि कंदलि ने युगीन परिस्थितियों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया, लोक की पतनोन्मुखी दशा देख उनका मन विचलित हो उठा होगा। लेकिन लोक चेतना उद्बुद्ध करने का उन्हें रास्ता दीख रहा था। जिसकी पूर्ति वाराही नरेश महामाणिक्य ने की। माधव कंदलि महामाणिक्य के राज कवि थे। विषम परिस्थितियों को देख राजा ने अनुभव किया कि राम कथा के आदर्श पात्रों के चरित्र गान द्वारा देश की विषम परिस्थिति को सम बनाया जा सकता है।'[5] अतः लोक में प्रेरणा तथा सजीवता प्रदान करने के उद्देश्य से राजा ने अपने आश्रित कवि माधव कंदलि को परब्रह्म राम को सामाजिक क्षेत्र में उतारने का आग्रह किया जिसके कारण लोक की जीवन धारा में नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हो सके। राजा के वाक्य को शिरोधार्य कर कंदलि ने वाल्मीकि रामायण का सम्पूर्ण मंथन किया और वहाँ से सारतत्व को ग्रहण कर देश-काल और पात्रों के अनुसार 'सप्त कांड रामायण' की रचना की।

माधव कंदलि ने रामायण रचना के विषयों में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। वाल्मीकि रामायण को पढ़कर उसे अपने प्रबंध में जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, इसका उल्लेख कवि ने इन शब्दों में किया है–

'आपोनार, बुद्धि, अर्थ मित बुजिलो।
संक्षेप करिया ताक पद विरचि लो।
समस्त रसक कोने जानिवाक पारे।
पक्षी सम उरई जैन परवा अनुसारे।।
कवि सब निबंधय लोक व्यवहारे।
कतो निज कतो लम्मा कथा अनुसारे।।'

(असमिया रामायण किष्किन्धा कांड, छंद-3966)

मैंने (वाल्मीकि की कथा का) जैसा अर्थ समझा उसे संक्षित कर लिखा। समस्त रसको कौन जान सकता है। पक्षी अपने परों की शक्ति के अनुसार उड़ा करते हैं। कवि लोक व्यवहार के लिए काव्य रचना करते हैं। वे कुछ तो अपनी ओर से लिखते हैं और कुछ स्रोत-समाग्री के अनुसार।

वे यह भी कहते हैं कि रामायण औपौरुषेय पाठ नहीं है। मैंने इसमें जो संशोधन और संक्षेपण किए हैं, उसके लिए मैं क्षमा प्राथी हूँ। माधव कंदलि ने वाल्मीकि के आधार पर रचना करके भी स्थानीय चित्रण से मार्मिक प्रसंगों को सजीव रूप से उपस्थित करने में विशेष सफलता पायी है। असमिया रामायण में वाल्मीकि का अंध अनुसरण नहीं है। कवि ने वाल्मीकि की कथा को अपने युग तथा परिवेश के अनुकूल प्रस्तुत कर साधारण जन के लिए उसे नूतन आस्वाद के साथ प्रस्तुत किया है। असमिया जनता स्थानीय चित्रण समन्वित इस रामायण के प्रति अपनत्व की अनुभूति करती है। रामकथा मर्मज्ञ रमानाथ त्रिपाठी ने लिखा है- 'असमिया रामायण में प्रायः संस्कार, प्रसाधन, वस्त्रालंकार, भोज्य पदार्थ, पशु-पक्षी, वनस्पति, जाति, धर्म, साधना एवं स्थान विशेष का वर्णन करते समय लेखक अपने परिवेश की झलक दे गया है। इस रामायण में स्थान स्थान पर वहाँ के खाद्य पदार्थ, भात, संदेश आदि का वर्णन है। असम में पायी जाने वाली संधिके, शांखारि (शंखकार) आदि जातियों का उल्लेख है। वन का वर्णन करते समय मेठोन (एत्म्रम्रदृ४), घोंग (काला पत्थर), सौनगुई (सुनहरी पीठ वाला झिपकली जातीव जीव), राजगोम तथा मांडलिक सर्पों का वर्णन है। माधव कंदलि ने असम के जनजीवन, प्रकृति को बड़े ही भव्य रूप में उपस्थित किया है, यथा राम को वन से लौटा लाने के लिए भरत के साथ जाने वाले लोग असम के विभिन्न वर्ण जातियों के लोग हैं–

'क्षत्री वैश्यगण, कायस्थ सज्जन
नट भाट तेली तांती।
ठारि सोणारि कंसार सेरवांरी।।'
(अयोध्याकांड, छंद-2381)।

डॉ. सत्येन्द्र नाथ शर्मा का यह कथन प्रासंगिक लगता है– 'चतुर्दश शती का असमिया समाज, असमिया जीवन धारण की प्रणाली, शिल्प, धर्म विश्वास, खाद्याखाद्य, जाति और व्यवस्था, फूल-फल, पशु-पक्षी, राजकीय व्यवस्था आदि के सम्पूर्ण चित्रण, न सही पर कुछ आभास इस ग्रंथ (माधव कंदलि रामायण) में उपलब्ध है। जनता के जीवन का प्रतिबिम्ब पकड़कर कन्दलि की रामायण

का वर्णन अधिक आकर्षक हुआ है।।'[6]

श्रीमंत शंकरदेव के पूर्वकालीन कवियों में माधव कंदलि निःसंदेह श्रेष्ठ कवि थे। श्रीमंत शंकरदेव ने उत्तरकांड (रामायण) का अनुवाद करते समय अपने को खरगोश और कंदलि को हस्ती कहकर तुलना करके उनके पांडित्य की स्वीकृति के लिए अप्रमादी कवि विभूषण का प्रयोग किया है-

पूर्व कवि अप्रमादी माधव कंदलि
आदि बिरचिला पदे रामकथा।
हस्तीर देखिया शशा जेन धारे मार्ग
मोर भैल तेहणय अवस्था।।[7]

भारतीय प्रान्तीय आर्य भाषाओं का प्राचीनतम राम-साहित्य असमिया रामायण है। इस संदर्भ में फादर कामिल बुल्के का कथन है– 'भारत की प्रादेशकि आर्य भाषाओं का प्राचीनतम राम-साहित्य असमिया, बंगाली तथा उड़िया में सुरक्षित है। तीनों भाषाओं में एक-एक रामायण सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सका, असमिया में माधव कंदली का, बंगाली में कृतिवासका तथा उड़िया में बलराम दास का रामायण। इनमें से 14 वीं शताब्दी के अंत का माधव कंदली कृत रामायण सबसे प्राचीन है।[8]

माधव कंदली कृत रामायण के अन्तःसाक्ष्य से ज्ञान होता है कि उन्होंने सप्त कांड रामायण की रचना की थी, लेकिन शंकरदेव (1449-1568) के समय में आदि और उत्तर कांड न मिलने के कारण इन दोनों कांडो को परवर्ती काल में जोड़ना पड़ा। माधव कंदलि रामायण में कुल 5226 छंद हैं। अयोध्या से लेकर लंका कांड तक छंदों के क्रम इस प्रकार हैं– अयोध्या 126, अरणय 773, किष्किन्धा 603, सुंदरकांड 854 और लंका कांड 1870 माधव कंदलि द्वारा असमी में लिखित रामायण को वह लोकप्रियता नहीं मिली जो उसे मिलनी चाहिए थी। काल के प्रवाह में वह लुप्त होने के कगार पर थी। लेकिन 15 वीं सदी में असम के प्रसिद्ध संत-पुरुष एवं भक्त-कवि शंकर देव की उस पर नजर पड़ी, तो वह इसकी तरफ आकृष्ट हुए। मगर तब तक इसके आदिकांड और उत्तरकांड विलुप्त हो चुके थे। बहुत खोज करने पर भी इसके आदि और उत्तरकांड उपलब्ध न हो सके। तब उन्होंने अपने शिष्य माधव देव के द्वारा इसका आदिकांड लिखवाया और स्वयं उत्तरकांड लिखकर इसे पूरा किया।

डॉ. दिनेश कुमार चौबे ने लिखा है, 'माधव कंदलि को संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं में प्रथम रामायण लिखने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने पंचकांडात्मक रामायण की रचना सन 1400 ई. के आस-पास की थी। इसमें पंचकांड हैं अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर एवं लंका युद्धकांड या वाल्मीकि रामायण पर आधारित इस रामायण में स्थानीय रीति रिवाज एवं संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगत होता है। माधव कंदलि की रामायण को सप्तकांडात्मक रूप देने का कार्य महापुरुष शंकरदेव और माधव देव ने किया। शंकरदेव द्वारा उत्तर कांड सन 1550-60 और माधवदेव द्वारा आदि कांड लगभग इसी समय रचित हुआ।'[9] इस तरह सप्तकांड-रामायण के रचयिता माधव कंदलि के अतिरिक्त माधव देव तथा शंकरदेव हैं, जिन्होंने क्रमशः आदिकांड तथा उत्तरकांड लिखकर पंचकांड रामायण को सप्तकांड का रूप दिया। इस प्रकार सप्तकांड रामायण के माध्यम से असमिया में पहली बार रामकथा को समग्रता एवं विस्तृति मिली है। माधव कंदलि कृत रामायण का अनुमानित रचना काल सन् 1400 ई. है। सप्तकांड रामायण का महत्व महापुरुष शंकरदेव तथा माधवदेव के प्रयासों के कारण हमेशा अक्षुण्ण रहा। इसी के आधार पर परवर्ती काल में रचित अनन्त कंदलि कृत रामायण इसके समान लोकप्रियता प्राप्त न कर सकी। सप्तकांड-रामायण को लोकप्रिय बनाये रखने में शंकरदेव तथा माधवदेव का विशेष योगदान है। दोनों महापुरुषों ने उसमें धर्म एवं भक्ति तत्वों को समाविष्ट कर अधिक लोकप्रिय एवं अमर बनाया। डॉ. मागध का यह कथन है-त्त्ऐसा स्पष्ट होता है कि माधव कंदलि का उद्देश्य इस कृति के द्वारा केवल रामकथा का गायन था, भक्ति प्रचार नहीं लेकिन माधवदेव ने उनकी कृति में धर्म एवं भक्ति तत्वों को जोड़कर उसे जन समाज में धार्मिक ग्रंथ के रूप में प्रचारित किया। फलस्वरूप अद्यावधि उपलब्ध माधव कंदलि कृत रामायण माधव देव द्वारा किंचित संशोधित, परिवर्द्धित एवं संपादित रूप में उपलब्ध है।'[10] इसे भी शंकरदेव तथा माधवदेव की अन्य धार्मिक कृतियों की अन्य भांति ही जन समाज में आदर प्राप्त है।

शंकरदेव (1449-1568) असमिया के महान कवि,

भक्त, समाज सुधारक तथा सम्प्रदाय प्रवर्तक हैं। इनके विषय में कई चरित्र-काव्य लिखे गये हैं। प्राप्त जानकारी के आधार पर इनका जन्म 1449 ई. में असम के नौ गांव जिले के बरदोआ गांव में हुआ था। उन्होंने अपने व्यक्तिचरित्र तथा सामाजिक ऊर्जा के कारण ही लोकप्रियता प्राप्त कर धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक गुरुपद को प्राप्त किया। शंकरदेव के विषय में सम्यक अध्ययन डॉ. मागध के ग्रंथ 'शंकरदेव साहित्यकार और विचारक' में हुआ है। शंकरदेव ने असम धरा पर जिस शाश्वत भारतीय साहित्य की रचना शताब्दियों पूर्व की वह न केवल धार्मिक बल्कि साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक दृष्टि से भी अन्यतम उपलब्धि है। श्रीमंत शंकरदेव को समर्पित शिष्य परंपरा के ध्वजवाहक थे श्रीमाधव देव। उन्होंने अपने गुरु के संकेत से साहित्य सर्जन शुरू किया तथा अपनी अद्वितीय साहित्यिक तथा कला प्रतिभा के बल पर भारतीय भक्ति साहित्य में असमिया भक्ति साहित्य को सुप्रतिष्ठ किया। असमिया जीवन को शंकर-माधव ने अपनी लोकोत्तर आध्यात्मिक प्राणवायु से ऊर्जस्वित किया। माधवदेव शंकरदेव के उद्घोषक थे। उन्होंने अपनी सारी प्रतिभा अपने गुरु के विचारों के प्रचार-प्रसार तथा उसके पल्लवन में लगा दिया। गुरु के आदेश पर उन्होंने माधव कंदली के रामायण को पूरा किया।

असमिया रामकाव्य रचयिताओं में 16वीं शताब्दी के अनंत कंदलि का नाम उल्लेखनीय है। इनके द्वारा रचित रामायण (1552-60) के तीन खंड प्राप्य हैं- अयोध्या, अरण्य और किष्किंधा। लेकिन तदयुगीन ग्रंथों में कंदलि रामायण का उल्लेख सप्तकांड के रूप में मिलता है। बाद में बहुत से असमिया विद्वानों ने संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं से रामकाव्यों का असमिया में अनुवाद कर रामकाव्य को समृद्ध किया है। असमिया रामायणों में राम को विष्णु और लक्ष्मीपति कहा गया है-लक्ष्मी समन्विते, क्षीरोदसागरे, आछा प्रभु नारायणा (छंदः 547) इत्यादि। सीता लक्ष्मी हैं।

माधव कंदली की रामायण में शंकरदेव ने उत्तरकाण्ड जोड़ा था और उन्होंने आख्यान को भक्तिपरक दृष्टिकोण दिया। वाल्मीकि रामायण से केवल भक्तिपरक दृष्टिकोण का ही अंतर नहीं है, चरित्र चित्रण में भी मौलिकता का परिचय दिया है। इतना सब होते हुए भी लेखक ने मूलकथाकार कंदली के वर्णन से साम्य स्थापित किया है। इसी तरह रामायण के आदिकांड को लिखते समय माधव देव ने माधव कंदली के दृष्टिकोण को भली प्रकार हृदयंगम कर लिखने का प्रयास किया है। उन्होंने कंदली का ही दृष्टिकोण अपनाया है, फिर भी उनकी अपनी निजस्वता भी है। माधव कंदली का प्रेरणा ग्रंथ वाल्मीकि रामायण है, जिसमें अनेक प्रसंगों की भरमार है, वर्णन भी विस्तार युक्त है। कंदली ने मूल कथा में से चुनाव भी किया और उसमें संक्षिप्त पद्धति अपनायी। उन्होंने वाल्मीकि का अनुवर्तन कर अपने ढंग से विश्रुत रामकथा का वर्णन किया है। वाल्मीकि के पश्चात कई कवियों ने रामकथा को अपने ढंग से नये मोड़ दिए। अवतारवाद का प्रचार हो जाने के कारण राम,भरत,माता कैकेयी आदि के चरित्र को निष्कलंक बनाने की चेष्टा की गयी है। परन्तु, असमिया रामायण में ऐसा प्रयास नहीं है। कैकेयी सहज रूप में ही अपने पुत्र का मंगल कल्याण चाहती है। कंदली ने लक्ष्मण रेखा और छाया सीता प्रसंगों का भी बहिष्कार किया है क्योंकि वे प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं। सीता-अनुसूइया संवाद के समय पर कंदली ने सीता जन्म के नए वृत्तांत का वर्णन किया है– अपुत्रक जनक भार्या सहित यज्ञ-भूमि जोतने गये। आकाश में मेनका अप्सरा की देखकर दुखी हुए। आकाशवाणी हुई कि यज्ञ-भूमि जोतो तुम्हें ऐसी ही पुत्री प्राप्त होगी। यह प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय संस्करण के अनुसार है। कथा को भक्तिपरक दृष्टिकोण देने के लिए और प्रसंग को रोचक रूप देने के लिए केवट-प्रसंग और ग्रामवधू प्रसंग लाये गये हैं। कंदली ने इन्हें नहीं अपनाया।

प्रो. भूपेन्द्रराय चौधरी की मान्यता है– 'माधव कंदलि ने वाल्मीकि रामायण का गौड़ीय या पूर्व भारतीय पाठ का अनुसरण किया है। फादर बुल्के ने गौड़ीय पाठ के कुछ प्रसंगों के उल्लेख किये हैं जो माधव कंदलि रामायण में उपलब्ध हैं, यथा– राम की कुश– पादुकाओं का उल्लेख, सीता की जन्म कथा में मेनका का वृत्तांत, राम के प्रति तारा का शाप, विभीषण पर रावण का पाद प्रहार, राम की शरणागति के पूर्व विभीषण द्वारा अपनी माता से तथा अपने भाई कुबेर से भेंट, कालनेमि का वृत्तांत,

समुद्रलंघन के वर्णन में सुरसा का प्रथम स्थान में उल्लेख, सम्पाति के पास सुपार्श्व का आगमन।'[11] माधव कंदलि रामायण में वाल्मीकि रामायण से कुछ भिन्न प्रसंग हैं, यथा-सीताहरण के समय सुपार्श्व द्वारा रावण को रोकना, हनुमान का लंका की वाटिका का विध्वंस करने के पूर्व वृद्ध ब्राह्मण के रूप में रावण से भेंट करना, नल को दिए हुए वरदान का यह स्पष्टीकरण कि उसके स्पर्श से पत्थर नहीं डूबेंगे। धनुभंग के पूर्व ही राम के रूप पर मुग्ध होकर देवी सीता का मन निमज्जित हो गया। सीता ने निश्चय कर लिया कि राम ही हमारे पति होंगे।

'रामर रूपत, निमजिल मन, भै गैल देवी मोहति
एहेन्तेसे मोर, हैबै निजपति, करिलो मने निश्चया'

अयोध्याकांड में कैकेयी को कलंक मुक्त करने वाली किसी भी कथा का असमिया रामायण में अभाव है। असमिया रामायण में स्वयंवर के समय उपस्थित राजाओं की मनोदशा का अच्छा चित्रण है। वे सीता के लोभ में अपनी-अपनी पत्नियां छोड़कर आये हैं। वे अब कठोर धनुष देखते हैं और तिरछी आंखों से सीता को देखकर सांसें भरते हैं। इस रामायण में निराश राजाओं के साथ राम का युद्ध वर्णन है। असमिया रामायण में जयंतकाक सीता के स्तनों पर चोंच प्रहार करता है। असमिया रामायण में रावण लक्ष्मण को शक्ति प्रहार से आहत करता है, उसमें कालनेमि राक्षस और मकरी की कथा है। असमिया रामायण में हनुमान गन्धर्वों से युद्ध करते हैं। इस रामायण में हनुमान-भरत की भेंट नहीं दिखायी गयी है क्योंकि वाल्मीकि रामायण में भी नहीं है। इसमें राम का माया मुंड, रावण को नंदी का शाप, सुग्रीव-बाली की उत्पति की कथायें हैं साथ ही अग्नि-परीक्षा प्रसंग अत्यंत मार्मिक है। हनुमान लंका में प्रवेश कर राक्षसों के जो खेल देखते हैं, वस्तुतः वे असम के प्राचीन खेल हैं। राम के भवन में असम की स्थापत्य कला का परिचय मिलता है। भित्ति चित्र भी दिखाये गये हैं।

असमिया रामायण में सीता वनवास, वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश का जन्म, राम का अश्वमेध यज्ञ, हनुमान जन्म वृत्तांत, लवकुश का रामायण गान तथा राम से परिचय, राम के समक्ष सीता की उपस्थिति, सीता का भयंकर क्रोध से पाताल प्रवेश, राम द्वारा भाइयों व पुत्रों के मध्य राज्य वितरण, काल और राम की भेंट, लक्ष्मण-वर्जन और राम का स्वर्ग गमन इत्यादि प्रसंग है। असमिया रामायण में जहाँ एक ओर राम के महामानवत्व का चित्रण है, वहीं उनके ब्रह्मत्व का भी। तथापि असमिया के राम अपने ब्रह्मत्व को सदैव याद नहीं रखते। अन्य पात्र भी राम के ब्रह्मत्व को सदैव याद नहीं रखते। राम ब्रह्म होने के कारण कोमल, सुकुमार भी हैं। असमिया रामायण में उन्हें दूर्वादल श्यामसू और मक्खन जैसा कोमल कहा गया है- 'लवनु पुतलि जेन सुकोमल तनु।' (छंद 1200)। असमिया की सीता भी वाल्मीकि रामायण की तरह रावण की उपस्थिति में भय तथा लज्जा के कारण पीठ देकर उत्तर देती–

रावण के लाजे, भये पिठि दिया,
सीता में दिला उत्तर है।

असमिया रामायण का रावण सीता को लक्ष्मी मानता हुआ भी उनसे भोग की कामना करता है। वह कई तरह से सीता को प्रबुद्ध करता है। इसमें पात्रों का चित्रण स्वाभाविक एवं मानवीय आधार पर हुआ है। अधिकांश चरित्र भक्ति-भावापन्न और उससे अनुप्रेरित हैं। अधिकांश चरित्र वाल्मीकि के प्रायः अनुरूप ही हैं। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं। यदि कतिपय भिन्नताएं हैं भी तो वे कवि-युग की परिस्थिति तथा दृष्टि की भिन्नता के कारण हैं। माध कंदलि ने तुलसीदास या कृतिवास की तरह अन्य पुराण, उपपुराणों से कथा का संयोजन नहीं किया है। वाल्मिकि से अनुवाद करते समय भी कवि ने सतत सौन्दर्य तथा पाठकों की रुचि के प्रति ध्यान रखा है। कहीं भी साम्प्रदायिक या धार्मिक मतवाद को महत्व देकर सौन्दर्य को विनष्ट नहीं किया है। इस संदर्भ में डॉ. सत्येन्द्र नाथ शर्मा का कथन महत्वपूर्ण है– 'इस रामायण की रचना करते समय कवि ने राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया है अवश्य, पर भक्ति प्रवाह में न बहकर वाल्मीकि रामायण के प्रमुख मानवीय स्तर को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं की है। पदों में बार-बार ईश्वरत्व थोपकर राम-लक्ष्मण, भरत आदि के चरित्रों का मानवीय आवेदन विनष्ट नहीं किया है।[13]'

डॉ. दिनेश कुमार चौबे का यह कथन महत्वपूर्ण है- 'माधव कंदलि और शंकरदेव ने भी विभिन्न संस्कृतियों

के समन्वय और विभिन्न जातियों के परस्पर मेल से नवीन भारतीय संस्कृति के विकास के लिए असम में वातावरण का निर्माण किया। असम के इन दोनों कवियों ने आर्य-आदर्श विरोधी आचार-नीति का विरोध करते हुए लोगों को राम और कृष्ण के प्रति आकर्षित करने का प्रयास किया। माधव कंदलि ने इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर रामकथा को जनभाषा में काव्य रूप प्रदान किया। शंकरदेव और माधवदेव ने भी सांस्कृतिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में ही समुचित सामंजस्य एवं अन्तर्भावना से भारतीय संस्कृति के युगानुरूप सर्जन किया है।'[14]

माधव कंदलि ने वाल्मीकि के आधार पर रचना करके भी स्थानीय चित्रण से मार्मिक प्रसंगों को सजीव रूप से उपस्थित करने में विशेष सफलता पायी है। यह कहना भी जरूरी कि बहुत से असमिया विद्वानों ने संस्कृत और हिन्दी भाषाओं के रामकाव्यों का असमिया में अनुवाद कर रामकाव्य को समृद्ध किया है। इन भाषा-रामायणों के लेखकों ने अपने काव्य के पात्रों को अपने प्रदेश के परिवेश में ढालकर प्रस्तुत किया। फलतः उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक ने राम काव्य के पात्रों को अपना समझा। माधव कंदलि को जनभाषा असमिया को काव्य भाषा का रूप देने में पूर्ण सफलता मिली है। इनके परवर्ती सभी कवियों ने उनकी भाषा का अनुकरण किया है। माधव कंदलि की भाषा लोक-भाषा है जो लोक प्रचलित मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के कारण अपनापन के मान के साथ परिपूर्ण है। उनकी भाषा प्रसंगानुरूप है। प्रसंग, भाव, परिस्थिति, वार्तालाप के विषय एवं वक्ता-श्रोता के अनुसार ही भाषा का प्रयोग हुआ है जिससे काव्य में स्वाभाविक सौन्दर्य की वृद्धि हो पायी है। माधव कंदलि की काव्य भाषा का सर्जनात्मक एवं साधानात्मक रूप भावानुरूप, प्रवाहपूर्ण तथा प्रसंगोचित है। राम काव्य का जो भी प्रयोजन है, वह महलों व झोपड़ी-झोपड़ी तक पहुँच रहा है। असमिया रामायण अपने क्षेत्र में जनप्रिय है। आज भी यहाँ के लोग इस रामायण को कंठस्थ कर जन-समाज में गायन करते हैं। श्री हरिनारायण बरुआ का कथन है– 'यह रामायण हमारे देश के आबाल-वृद्ध सभी के हृदय का धन एवं सेवा की वस्तु है, क्योंकि यह हमारी जाति के आचार-व्यवहार, रीतिरिवाज, रीति-नीति एवं सामाजिक जीवन के तथ्य से युक्त है।'[15] असमिया रामायण महत्वपूर्ण महाकाव्य होने के साथ ही भारतीय रामसाहित्य की एक अन्यतम कृति है। इसमें राष्ट्र की ऐक्य भावना का आभास मिलता है। असम के अलावा अन्य पूर्वोत्तर प्रदेशों में भी इस रामकथा का अत्यंत प्रभाव है। कंदलि की रामायण भारतीय संस्कृति की असम देशीय विशिष्टता का दर्पण है। यह असमिया में एक अद्वितीय रचना है। वाल्मीकि तथा तुलसी की तरह असमिया रामायण असमिया साहित्यकाश में दैदीप्यमान नक्षत्र है। माधव कंदलि रामायण असमिया की राम काव्यधारा में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वस्तुतः माधव कंदलि कृत रामायण असमिया जीवन, भाषा-साहित्य तथा संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ :

1. उपेन्द्रचंद्र लेखारु : असमिया रामायण साहित्य, पृ-24।
2. डॉ. सत्येन्द्रनाथ शर्मा : असमिया साहित्य इतिवृत्त, पृ-42।
3. भारतीय महाकाव्य, पृ-81।
4. भारतीय महाकाव्य,पृ-83।
5. भारतीय भाषाओं में रामकथा, पृ-154।
6. असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, पृ-80।
7. रामायण (उत्तरकांड),पृ-440।
8. फादर कामिल बुल्के, रामकथा, पृ-187।
9. असमिया और हिन्दी साहित्य : अंतरंग पड़ताल, पृ-24।
10. डॉ. मागध : हिन्दी असम प्रान्तीय राम साहित्य, पृ-59।
11. भारतीय भाषाओं में रामकथा, पृ-130।
12. असमिया (रामायण), छंद 4173।
13. असमिया साहित्य इतिवृत्त, पृ-254।
14. हिन्दी और असमिया के प्रथम रामायण, पृ-22।
15. हरिनारायण दत्त बरुआ : असमिया रामायण, भूमिका पृ-12।
16. चित्र- गूगल से साभार

❑❑

संपादक-नया परिदृश्य,
गेट बाजार, (एन.जे.पी.), पो.- भक्तिनगर,
सिलीगुड़ी (प. बंगाल)-734007
मो. 9434494430, **Whatsap No.** *8972694711*
dromprakashpandey80@gmail.com

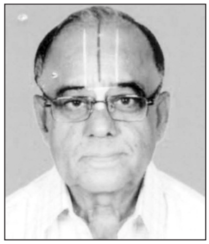

तमिल की कम्ब-रामायण अर्थात रामकादै

आर. एन. श्रीनिवासन

अमृत-सी समुधुर तमिल भाषा को अपने महत्वपूर्ण काव्यों द्वारा अनेक कवियों ने सुविकसित एवं सुसम्पन्न किया है जिनमें से ...स्वनामधन्य कवि श्री कम्बर ने 'रामकादै' नाम के अपने बृहत् महाकाव्य को दस हजार से भी अधिक गेय पदों द्वारा बड़े विस्तार से अलंकृत किया था। श्री कम्बर के 'रामकादै' महाकाव्य का गहन अध्ययन करके उसका रसास्वादन करने वाले बड़े-बड़े कवियों में से सुविख्यात हैं भारत के राष्ट्रकवि श्री सुब्रह्मण्य भारतीयार जो कि संस्कृत, तमिल, तेलुगु हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी, फ्रेंच आदि भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। कम्ब- 'रामकादै' अथवा रामायण की प्रशंसा में उनकी निम्नाँकित सूक्ति बहुत ही लोकप्रिय है–

यामरिन्द पुलवरिले कम्बनैप्पोल,
वळ्ळुवर पोल इळंगोवेप्पोल,
भूमितनिल यांगणुमे पिरन्ददिल्लै।

अर्थात जहाँ तक कवियों के बारे में हमारा ज्ञान है, कम्बन, वळ्ळुवर और इळंगो के समान सारे जगत् में कोई भी पैदा नहीं हुआ।

तमिलनाडु के चोळ प्रदेश में ईसवी बारहवीं शताब्दी में कम्बर का जन्म हुआ था। वे तमिल और संस्कृत दोनों भाषाओं के बड़े विद्वान थे। तमिल में अपनी 'रामाकादै' की रचना करने से पूर्व उन्होंने न केवल वाल्मीकी रामायण का बहुत अच्छा व गहन अध्ययन किया, अपितु वाल्मीकी के उपरान्त वशिष्ठ जी द्वारा रचित 'योग वशिष्ठ रामायण' और बोधायन कृत 'रामायण' आदि का भी विशेषतः गहरा अध्ययन किया था। अंत में, वाल्मीकी रामायण को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर उसी का अनुगमन करते हुए अपनी मातृभाषा तमिल में 'रामकादै' की रचना की थी जिसका उल्लेख रामकादै के दसवें पद में इस प्रकार से कम्बन करते हैं– **देव पाडलिल इक्कदैच्चेय्दवर मूवर आनवर तम्मुळुम, मुन्दिय नाविनान उरैइंन पड़ि (10)** तीनों रामकथाकारों की कृतियों में से सर्वप्रथम कृति ही सर्वश्रेष्ठ है।अतएव, सुस्पष्ट है कि कम्बन के विचारानुसार 'योग वशिष्ठ रामायण' और बोधायन रामायण दोनों में से 'वाल्मीकी रामायण' ही उत्कृष्ट है।

चूँकि कम्बर तमिळ भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे, अतः तमिल भाषा के ईसा पूर्व के अतिप्राचीन, संघकालीन ग्रन्थों जैसे 'पन्नुप्पाट्टु', 'एट्टुत्तोगै', 'चिलप्पतिकारम्' 'मणिमेखलै', 'जीवक चिन्तामणि' तथा 'तिरुज्ञानसम्बन्धर', तिरुनावुक्कारसर आदि तिरसठ शिव-भक्त नायनमारों और कुलशेखराळवार, पेरियाळवार, तोण्रडिप्पोड़ि आळवार, तिरुमंगै आळवार जैसे श्री वैष्णव भक्त-कवियों द्वारा उद्गार किये चतुः सहस्त्रों भक्तिरसपूर्ण गेय पदों में वर्णित रामायण-कथा-प्रसंगों से भी भली भाँति सुपरिचित थे। दस हजार मधु भरे पद्यों से बहुत सुन्दर तमिल भाषा एवं अद्‌भुत शैली द्वारा अपनी अनोखी 'रामकादै' की रचना करने और संस्कृत में भी बड़े विद्वान होने के

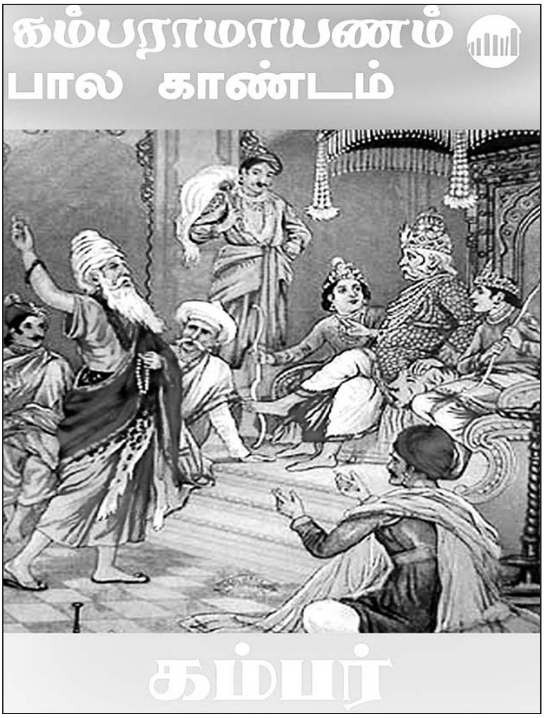

बावजूद भी, कम्बर आदिकवि वाल्मीकी के समक्ष इतने नम्र होकर कहते हैं–

वाँगुगु पाद नान्गुम, वकुन्त वान्मीकि ऍन्बान,
मूँगैयान पेसलुट्रेन, एन्नयान् मोळियलुट्रेन।

अर्थात् उनका पाण्डिन्य कहाँ और मेरा कहाँ! वस्तुतः उनके समक्ष मैं 'मूक' हूँ, फिर भी मूक बोलने की चेष्टा करते हुए जैसे पागल जैसा बकता है, ठीक वैसे ही मैं भी 'रामकादै' लिखने का प्रयास करता हूँ।

कंबर या कंबन की उक्त पंक्तियों से सुस्पष्ट है कि वाल्मीकि ने ही उनकी रामायण की राह खोल दी थी। महान श्री वैष्णव नादमुनि, जिन्होंने बारहों आळवारों द्वारा उद्गार किये चतु:सहस्रों गेय पदों का संग्रह किया था जो श्री कम्बर के घनिष्ठ मित्र थे। उनकी सलाह एवं सहयोग से कम्बर की रामायण 'रामकादै' का श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ मंदिर में लोकार्पण हुआ था जिसका उल्लेख आज भी उक्त मन्दिर के 'कम्बर मण्टप' (माता लक्ष्मी मन्दिर के समक्ष) में द्रष्टव्य है।

यद्यपि कम्बर ने वाल्मीकी के समान ही अपनी रामायण का ढाँचा बना लिया। फिर भी तमिल-संस्कृति-परिस्थितियों के अनुरूप रामायण की कथा की घटनाओं में सुधार किया है।

कम्बर की 'रामकादै' में बालकाण्ड, अयोध्या काण्ड, आरण्य काण्ड, किष्किन्दा काण्ड, सुन्दर काण्ड, और युद्ध काण्ड, इस प्रकार कुल छः काण्ड हैं। बालकाण्ड में 22 सर्ग, अयोध्याकाण्ड में 12 सर्ग, आरण्यकाण्ड में 11 सर्ग, किष्किन्दा काण्ड में 16 सर्ग, सुन्दरकाण्ड में 15 सर्ग और युद्धकाण्ड में 38 सर्ग, इस प्रकार कुल 116 सर्ग हैं तथा 10,436 गेय पद हैं।

कम्बरामायण की विशेषता यह है कि अनपढ़ लोगों को भी पूरी कम्बरामायण सम्पूर्णतः कण्ठस्थ रहती है और खेत जोतते समय भी किसान लोग सामूहिक रूप से उसका गायन करते हुए खेत में अपना-अपना कम करते हैं। आम जनता के बीच में कम्ब रामायण बहुत लोकप्रिय है। पढ़े लिखे लोगों के बीच में उसके विभिन्न पात्रों पर 'पट्टिमंरम' सुविख्यात है।

वाल्मीकि की रामायण में विभीषण को त्शरणागतथ मानते हैं श्री रामचन्द्रजी, परन्तु कम्बरामायण में विभीषण को ही नहीं, बल्कि सुग्रीवकेवट गुहन को भी मिलाते हुए श्री राम जी विभीषण से कहते हैं– तुम्हारे साथ अब राजा दशरथ के सात पुत्र हुए! जैसे राजा दशरथ जी मेरे पिताश्री हैं, ठीक वैसे ही तुम्हारे भी पिताश्री हैं-

सुग्रीव
गुहनोडुम ऐवरानोम,
पिन्बु कुन्ड्रु मगनोडु अरुवरानोम,
न्रिनोडु एळुवरानोम,
पुदल्वराल पोलिन्दान उन्दै।

वाल्मीकि की रामायण में श्रीराम जी केवट गुहन को 'आत्मसम सखा' ही मानते हैं, सहोदर के रूप में नहीं।

वाल्मीकि रामायण में जो उत्तरकाण्ड है कम्ब रामायण में नहीं है। वाल्मीकि रामायण में कम्बरामायण का 'इरणियवध' सर्ग उपलब्ध नहीं है। कम्बर ने वृत्त छन्द में अपनी रामायण की रचना की है। पंडितों का विचार है कि अपनी 'रामकादै' में कम्बर ने छियानबे (96) प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है।

स्व. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी सुविख्यात महान राजनितिज्ञ ही नहीं, अपितु अच्छे साहित्यकार भी थे।

अपनी रचित मौलिक रामायण 'चक्रवर्ती तिरुमगनर' में वे कहते हैं कि सीता जी का रावण द्वारा जब अपहरण हुआ था वहाँ पर वाल्मीकि और कम्बर दोनों की रामायण में एक भेद द्रष्टव्य है– वाल्मीकि कहते हैं कि रावण सीता जी को अपने हाथ से उठाकर अपहरण करते हुए ले जा रहा था परन्तु इसी घटना को जरा बदल कर कम्बर कहते हैं कि सीता जी का स्पर्श न करते हुए रावण जहाँ पर वे खड़ी थी उस छोटे भूमि-भाग को ही अपनी हथेली पर उठाते हुए सीता जी का अपहरण करके वह उन्हें ले जा रहा था। यही वर्णन तमिल-संस्कृतियोचित जँचता है, तमिल भाषियों को भी भाता है। अधार्मिक,अन्यायी और पाशिवक रीति से जब एक अत्याचारी क्रूर एक स्त्री के साथ दुर्व्यवहार और बलात्कार करता हो, तो उस बेचारी स्त्री का क्या दोष हो सकता है, फिर भी हमारे देश में उस अबले पर सहानुभूति व दया दिखाने के बावजूद भी उस स्त्री की शीलता पर एक धब्बा या कलंक समझा जाता है। यह धारणा यद्यपि बिलकुल गलत है, निराधार है, फिर भी समाज के मुंह को कौन बन्द कर सकता है? ऐसी बुरी धारणा से दूर रहने की इच्छा से ही कम्बर ने जानबूझकर ऐसे प्रसंग को अच्छी तरह बदल दिया था।

कम्बर के समय राजाओं की सहायता एवं सहयोग से रामायण की कथा की घटनाओं का मंदिरों के उत्सवों के दौरान नाटकों के रूप में अभिनय होता था और नृत्य भी होते थे। राजा ऐसे नाटकों के आयोजकों अभिनेताओं, गायकों एवं नृत्यकारों को भेंट के रूप में 'मानियम' (जमीन) देता था। श्री इ.ति. तिरुवेंगड़म अपनी 'राजयोगम' तख्म इतिहासक्कावियम-'रामायण' पुस्तक में कहते हैं- कम्ब रामायण द्वारा जानने योग्य एक देव-रहस्य भी होता है। श्री रामचन्द्र जी को भी हम जैसे ही मनुष्य का जन्म लेकर बड़े-बड़े मानसिक एवं शारीरिक कष्टों को झेलना पड़ा था, इसका कारण क्या है? इसके पीछे ही वह देव-रहस्य है।

श्री तिरुवेंगडम के अनुसार उस 'देव-रहस्य' को जानने के बाद ही हम 'रामकादै' का पाठ करें– उस जमाने में असुरों और राक्षसों का ताण्डव-नृत्य होता था। वे लोग विशेष रूप से देवताओं को कई प्रकार के उपद्रव देते थे। देवताओं को उनके लिए इन्द्र द्वारा निर्दिष्ट कार्यों को करने नहीं देते थे। उल्टे, उन्हें राक्षसों के आदेशों का विनम्रतापूर्वक डरते-डरते पालन करना पड़ता था। जब असुरों और राक्षसों की हिंसाएँ और क्रूरताएँ पराकाष्ठा तक पहुँच गयीं तो देवगण ब्रह्मा के पास जाकर रक्षा करने की प्रार्थना करने लगे, तो वे उन्हें शिव जी के पास और शिवजी उन्हें 'श्रीमन नारायण' के पास ले गये तो वे अपना अभयहस्त दिखाते हुए बोले– आप लोग सपरिवार भूलोक जाइए और पर्वतों और जंगलों में वानरों के रूप में रहिए। मैं भी सपरिवार भूलोक में राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में अपना अवतार लूँगा और राक्षसों का संहार कर दूँगा। श्रीमन् नारायण के सलाहानुसार ही देवताओं ने निम्नप्रकार से अपना-अपना अवतार लिया-

ब्रह्म देव - जाम्बव,
इन्द्र - वाली,
सूर्य - सुग्रीव,
वायु - हनुमान।

अपने वचनानुसार स्वयं श्रीमन् नारायण ने राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में अवतार लिया तथा श्री रामचन्द्र के नाम से राक्षसों का, विशेषतः रावण का वध किया।

'रामायणच्चिनदनैगळ' नामक अपनी पुस्तक में प्रोफेसर चे. वेंकटरामन कहते हैं–

शीलम इन्नदु ऐन्रु अरुन्ददिक्कु अरुळिय तिरुवे (चित्रकूटम्-16)। सीता जी की पतिव्रतता एवं पति-भक्ति की प्रशंसा स्वयं श्रीराम के मुँह से ही कम्बर कराते हैं और कम्बर का प्रस्तुत परिवर्तन विशिष्टतापूर्ण है। कम्बर के अनुसार सीता देवी वन्दनीय थीं, बड़ी पतिव्रता थीं, पतिव्रता-धर्म से कभी भी जरा भी विचलित नहीं होती थी, सदा-सर्वदा अपने पति देव का ही स्मरण करती थी और उनकी सेवा-सुश्रूषा करती थी। श्रीराम जी को अपनी अर्द्धांगिनी सीता पर सम्पूर्णतः विश्वास था। इसीलिए तो रावण द्वारा अपहरण हो जाने के बावजूद भी अपनी पत्नी के पतिव्रतत्व पर बिलकुल सन्देह नहीं किया। रावण से युद्ध करके उसे मारने के बाद विजयी होकर अपनी पत्नी सीता को अपने पास लिया, जबकि वाल्मीकि रामायण में राम, सीता के पतिव्रत्य पर संदेह करते हैं। श्रीराम को अपनी पत्नी सीता की पति-परायणता पर सचमुच गर्व था, इसीलिए सीता के पतिव्रत पालन पर गर्व करते हुए यहाँ तक कहते हैं कि पतिव्रता-धर्म पालन की उत्तमा अरुन्धति

को भी 'शील (पतिव्रता-धर्म) क्या है' के बारे में उपदेश देती थी मेरी पत्नी सीता– **शीलम इन्नदेन्रु अरुन्ददिक्कु अरुळिय तिरुले** (कम्ब रामायण-चित्रकूटम-16)।

विश्व तमिल अनुसंधान संस्था, तमिलनाडु सरकार द्वारा प्रकाशित कम्ब–रामायण में ग्रन्थकार श्री मु. रामस्वामी कहते हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में धर्म, अर्थ, काम को आगे करके मोक्ष-प्राप्ति की राह खोलती है 'रामायण'। धर्म-न्यायोचित जीवन को षड्यन्त्र ग्रस लेता है, धर्म पुनः जीत लेता है। के आधार पर ही रची गयी है 'रामकादै'।

वाल्मीकी, कम्बर, तुलसी तीनों ही काव्य साम्राज्य के सम्राट थे। तीनों ने अपनी अपनी अलग-अलग भाषा क्रमशः संस्कृत, तमिल और हिन्दी में अलग-अलग समय में 'राम-चरित' की रचना की है। तीनों के जीवन काल में भी बड़ा अन्तराल है। वाल्मीकि, कम्बर और तुलसी के मध्य सदियों का व्यवधान है। फिर भी, राम चरित को अमृत बनाकर प्रदान करने में तीनों समर्थ हैं, वन्दनीय हैं तथा सदा-सदा के लिए अमर हैं।

वाल्मीकि का राम एक महापुरुष था, वीर धीर-पराक्रमी था, धीरोदान्त नायक था, गुणवान रहा, आदर्श मनुष्य था। कम्बर का राम अवतार पुरुष था, दैवी गुण सम्पन्न वीर था, पुरुषोत्तम था। तुलसी का राम तो स्वयं भगवान रहा। आदर्श मनुष्य-जीवन प्रदर्शित करने हेतु स्वयं महाविष्णु ने मनुष्य का रूप धारण कर लिया था। तुलसी अपने को जीवात्मा तथा श्रीराम को परमात्मा समझ कर उनके साथ ऐक्य हो जाते हैं। श्रीराम प्रभु हैं, तो तुलसी, दास हैं। तुलसी के श्रीराम, भक्ति के सागर हैं।

वाल्मीकी का एक ऐतिहासिक काव्य के प्रोफेसर और कम्बर का एक नाटकीय काव्य के प्रोफेसर और तुलसी का एक भक्ति काव्य के प्रोफेसर के रूप में हम रसास्वादन कर सकते हैं।अपनी रचना 'सुन्दरकाण्डम' में तमिल के सुप्रसिद्ध वर्तमान प्रवचनकर्ता सुखि-शिवम् जी कहते हैं– रामायण यथार्थ : सम्पन्न हुई है। कलियुग का हाथ प्रभाव और कवियों की कल्पना दोनों निश्चित रूप से मिलकर यह भ्रम पैदा कर देती हैं कि रामायण वास्तविक नहीं है, सिर्फ कल्पना मात्र है। रामायण का साहित्य के रूप में रसास्वादन हो सकता है, उसके लिए 'हृदय' चाहिए। उसे राजनैतिक इतिहास के रूप में ले सकते हैं, उसके लिए 'ज्ञान' चाहिए। रामायण को आध्यात्मिक ज्ञानानुभूति के रूप में भी समझ सकते हैं जिसके लिए आत्मा और आध्यात्मिक विचार अपेक्षित हैं।

काल-चक्र द्वारा न मिटनेवाली और कभी न दबने वाला अमिट एवं अमर काव्य है रामायण। वह तो कल्पना मात्र है यह समझकर उसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। ऐसा अद्भुत अमरतत्व रामायण में विद्यमान है। उसी की वजह से 'रामायण' को नरर्क्कुवाटत अमिळ्दम अर्थात नरों का अमृत कहकर गाते थे।

प्रत्येक भारतीय के हृदय एवं रक्त तथा नस-नस में श्रीराम जी का आसीन रहना अपरिहार्य है, विराजमान हैं, पूजित भी हैं श्रीराम और यही है भारतीयता। पुरुषों का आदर्श श्री राम हैं और स्त्रियों का आदर्श सीता जी हैं। अनेकों के जीवन की राह खोलने की शक्ति, क्षमता, दक्षता तथा प्रतिभा राम-कथा अर्थात, रामायण के पास है।

रामायण-पारायण की फलश्रुति के रूप में 'रामकादै' के अंत में कम्बर कहते हैं–

वेंरिसेर इलंगैयानै वेंरमाल वीरम् ओद निंर रामायणन्रिल निगाळन्ददु कदैगल तम्मिल ओंरिनै प्पडित्तोर तामुम उरैत्तिड़क्केट्पोर तामुम नंरिदु एंरोर तामुम नरगमेय्दिड़ारे।

लंकन पर विजयी महाविष्णु की वीरता का गुण-गान करने वाली रामायण में सम्पन्न गाथाओं में से केवल एक का भी पठन जिसने किया हो अथवा उसका स्त्रवण किया हो अथवा किसी ने रामायण के पठन-श्रवण को अच्छा कार्य बताया हो तो वह नरक नहीं जाएगा।

कम्बर के इस तमिळ काव्य में शब्द एवं अर्थ का स्वाद शहद-क्षीर सम्मिश्रण सा लबालब है। नवरसों से युक्त उनकी भाषा-शैली सबको मंत्र-मुग्ध करा देती है।

❑❑

65, महालक्ष्मी अपार्टमेंट
सी-303, तीसरा तल्ला,
11, एवेन्यू, अशोक नगर,
चेन्नै-600083

बलरामदासकृत उड़िया रामायण

डॉ. सूफिया यास्मिन

भारत में 3000 वर्षों से भी अधिक समय से दो महाकाव्य– वाल्मीकि कृत रामायण और व्यास कृत महाभारत, भारत के सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। महाभारत में मुख्य रूप से भाइयों के पारस्परिक कलह की कथा है जबकि रामायण में इस संबंध में पारिवारिक सामाजिक आदर्शों की स्थापना है। इसीलिए राम अपने पिता, अपने भाइयों और यहां तक की अपने शत्रुओं के लिए भी आदर्श हैं। इस तरह रामायण में एक भारतीय परिवार के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों का प्रतिपादन है। इसके चरित्रों में राम एक पति के रूप में, सीता एक पत्नी के रूप में जो पति के कष्टों को अपना समझती है, भरत एवं लक्ष्मण आज्ञाकारी भाइयों के रूप में आदर्श हैं तो रावण भी एक आदर्श शत्रु है जो लंका की अशोकवाटिका में सीता के रहते हुए भी उसे कभी स्पर्श तक नहीं करता। इस तरह रामायण की कथा एक आदर्श के रूप में भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है जिससे समस्त भारतीय इसे पढ़ सुनकर अथवा नाट्य रूप में देखकर आनन्दित होते हैं।

उड़ीसा के साहित्यिक इतिहास में गत 600 वर्षों से रामकथा का उड़िया में लिखित रूप उपलब्ध है। वहां इसकी ताड़-पत्र पर हस्तलिखित प्रतियां उपलब्ध हैं। जिन्हें गांवों के मुखिया, ब्राह्मणों अथवा वैष्णवों से प्राप्त कर उपकृत होते थे। इन हस्तलिखित प्रतियों की मंदिर अथवा मुखिया के घर में पूजा कर अनुष्ठानपूर्वक रामकथा कही-सुनी जाती थी अथवा रामलीला की नाट्य प्रस्तुति होती थी जिसमें सभी ग्रामीण भाग लेते थे।

उड़िया साहित्य के प्राचीनतम राम-कथाकार 15वीं शती के सिद्धेश्वर परिडा हैं। इन्होंने अपने ईष्टदेवी सारला चंडी के नाम पर अपना नाम सारलादास रख लिया था और वे इसी नाम से विख्यात हुए। उनकी रचनाओं में से महाभारत तथा चंडीपुराण प्रकाशित हैं। उनके नाम से अलग से कोई रामायण उपलब्ध नहीं है। उनके महाभारत में वर्णित रामकथा को ही उनकी रामायण के रूप में **सारलादास रामायण** कहा जा सकता है। सारलादास ने अपने महाभारत में बहुत से स्थलों पर रामकथा-विषयक सामग्री का समावेश किया है तथा आदि, वन और उद्योग पर्वों में समस्त रामायण का संक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया है। वन-पर्व की रामकथा

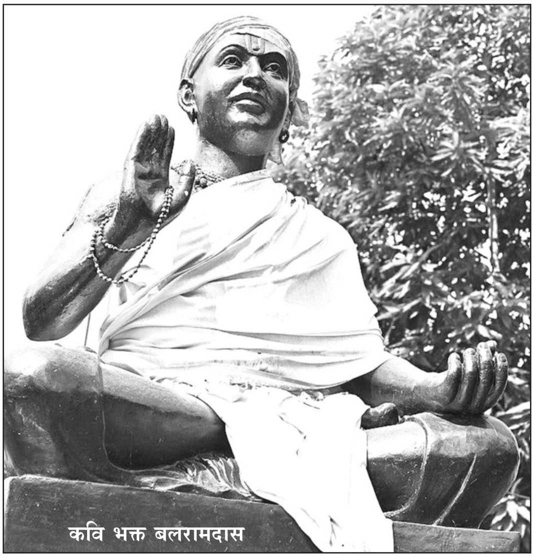
कवि भक्त बलरामदास

अगस्त्य द्वारा विलंका के राजा को सुनाई जाती है। सारलादास की रामकथा की अग्रलिखित विशेषताएं उल्लेखनीय हैं– (1) इसमें रामकथा तथा कृष्णकथा के पात्रों की पारस्परिक अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया, जैसे राम = कृष्ण, सीता = द्रौपदी, अंगद = जरा नामक भील, अंजना = कुन्ती, सुग्रीव = अर्जुन, वालि = कर्ण, लक्ष्मण = बलराम, वालि = भीम, सुग्रीव = दुःशासन। लक्ष्मण तथा भरत भी राम के अंतरंग सखा होने के नाते अर्जुन से अभिन्न माने गये हैं। (2) इसमें अवतारवाद के नये रूप का प्रतिपादन है जिसके अनुसार विष्णु राम के रूप में, इन्द्र भरत के रूप में, ब्रह्मा शत्रुघ्न के रूप में और ईश्वर (शिव) लक्ष्मण के रूप में अवतारित माने जाते हैं। (3) इसमें लक्षशिर, सहस्रशिर, शतशिर, दशशिर रावणों का उल्लेख है जो विभिन्न कल्पों में राम द्वारा मारे जाते हैं। (4) इसमें दशरथ की 750 पत्नियों, दशरथ की पुत्री शान्ता का वृत्तान्त, दशरथ द्वारा विश्वामित्र के साथ भरत तथा शत्रुघ्न को भेज देने के प्रयास, सीता द्वारा पिंडदान तथा नल-हनुमान के बीच कलह का उल्लेख है। (5) इसमें रामकथा के विकास की दृष्टि से कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रसंग इस प्रकार हैं– लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र का वध, वालि तथा सुग्रीव का अहल्या की संतान के रूप में उल्लेख, हनुमान को रुद्रावतार माना जाना, हनुमान के वज्र-कौपीन का उल्लेख, हनुमान जन्म के समय ही दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे, ब्रह्मा के वीर्य से वाल्मीकि की उत्पत्ति, रावण वध के बाद राम का वानरों के साथ किष्किन्धा होकर पैदल ही अयोध्या वापस जाना। सिद्धेश्वर परिडा अथवा सारलादास के नाम से एक विलंका रामायण नामक काव्यकृति भी कही जाती है, परन्तु वस्तुतः यह रचना 1700 ई. के लगभग सिद्धेश्वर दास द्वारा हुई थी। सिद्धेश्वर परिडा (सारलादास) तथा सिद्धेश्वर दास के नाम-सादृश्य के कारण विलंका रामायण को सारलादासकृत माना गया है, जो भ्रामक है।

उक्त सारलादास द्वारा प्रतिपादित रामकथा मूलतः उनके ग्रंथ 'महाभारत' के विभिन्न स्थलों पर आंगिक रूप से वर्णित है। जबकि 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बलरामदास ने स्वतंत्र रूप से रामायण की रचना की। बलरामदास की रामकथा-विषयक 5 अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं– (1) दो संदेश काव्य। **कान्तकोइलि** (34 छन्द) में अशोकवन में विरहिणी सीता एक कोयल को सम्बोधित कर अपने हरण के बाद की घटनाओं का वर्णन करती हैं। **काकपोइ** (34 छन्द) में सीता एक काक को सम्बोधित कर अशोकवन में अपने दुःख का वर्णन करती हैं और राम के पास एक लिखित संदेश भेजती हैं। (2) दो बारहमासे। **सीतांक बारमासी भावना** में अशोकवन में रहने वाली सीता राम के साथ अपने अतीत जीवन का स्मरण करती हैं। **बारमासी** का विषय वही है, किन्तु इसमें वह कान्हु को सम्बोधित करती हैं। (3) **ब्रह्माण्ड भूगोल** में समस्त रामककथा को शरीर में अवतारित किया गया है। (4) **हनुमन्त चउतीसा** में 34 छन्दों में सीता-हनुमान संवाद है। (5) **कर्णदान** 240 छन्दों में रचित काव्य कृति है।

16वीं शताब्दी में ही नीलाम्बरदास ने **ठिका रामायण** की रचना की जिसमें समस्त रामकथा का वर्णन है। इसमें बलरामदास रामायण से अलग कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं– महिरावण की कथा, रावण का चित्र बनाने के कारण राम द्वारा सीता का त्याग, लवकुश युद्ध आदि। 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्जुनदास ने रामविभा (रामविवाह) की रचना की। 17वीं शताब्दी में रचित 5 रामकथा विषयक रचनाएं उल्लेखनीय हैं– धनंजयकृत

रघुनाथ विलास जो सर्गबद्ध है, शंकरदास कृत **बारहमासी कोइली** जिसमें बारहमासी की लोकशैली में वनवासी राम के प्रति कौशल्या का विरह वर्णन है, महेश्वरदास कृत **टीका रामायण** है जो एक प्रकार से बलरामदास रामायण की टीका है, इसमें राम-सुग्रीव भेंट के विषय में एक अलग कथा है, कान्हुदास कृत **रामरसामृतसिन्ध** तथा हलधरदास कृत **अध्यात्म रामायण का उड़िया अनुवाद।**

उल्लेखनीय है कि 18वीं शताब्दी का उड़िया राम साहित्य अपेक्षाकृत समृद्ध है। इस शताब्दी में रचित सिद्धेश्वरदास कृत **विलंकारामायण** का प्रधान वर्ण्य विषय है सीता द्वारा (पूर्व-खण्ड में) सहस्सस्कंध रावण-वध तथा (उत्तर खंड में) लक्षस्कंध रावण वध, यह उत्तर खण्ड नितान्त अप्रामाणिक तथा अर्वाचीन है। इसी प्रकार वारानीधिदास कृत **विलंका खण्ड** में सहस्त्र-स्कन्ध रावण का वध उल्लेखनीय है। **विचित्र रामायण** नामक दो रचनायें मिलती हैं– एक विश्वनाथ खुंटिया तथा दूसरी भुइंया माधवदास की। सिद्धेश्वरदास के शिष्य भुइंया माधोदासकृत विचित्र रामायण के कथानक की कुछ विशेषताएं हैं– दशरथ की 21 पटरानियों का उल्लेख, दशरथ की पुत्री शांता की जन्मकथा, डाकिनियों से वानर सेनापतियों का जन्म, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र जयासुर का वध। इस रामायण में रामकथा के निर्वहन का कुछ परिवर्तित रूप विद्यमान है। इसी शताब्दी में उपेंद्र भंज ने **रामलीलामृत, षोल पोइ** (सोलह छन्द), **वैदेहिश विलास** तथा **अवना-रस-तरंग** की रचना की। वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, भोजकृत चम्पूरामायण, महानाटक आदि पर आधारित **वैदेहीश विलास** एक पांडित्यपूर्ण रचना है। इसी शताब्दी में ही रामदास द्वारा **रामरसामृत**, गोपीनाथ कविभूषण द्वारा **रामचन्द्र विहार** (80 सर्ग), त्रिपुरारिदास द्वारा **रामकृष्ण-केलि-कल्लोल** (श्लेष काव्य), ब्रजबंधु सामन्तराय द्वारा **रामलीलामृत काव्य,** ईश्वरदासकृत **रामलीला,** लक्ष्मीधरदास कृत **अंगदपड़ि** (अंगद के दूत कार्य का वर्णन), मागुणी पटनायक द्वारा **रामचन्द्र विहार,** गोवर्धनदास द्वारा **पचीसा पोई** (युद्धकांड विषयक), शिशु ईश्वरदास द्वारा **नलराम चरित** की रचना हुई। इसी समय लेलेंगा गोपाल, नरहरि कवि चन्द्र, सूर्यमणि-च्याउ पटनायक तथा सारलादास (जो उड़िया महाभारत के रचयिता सारलादास से भिन्न है) ने अध्यात्म रामायण का उड़िया में अनुवाद किया। हरिहर कवि के पुत्र वनमालीदास ने भोजकृत चम्पू रामायण को उड़िया में अनूदित कर उसका नाम **सुचित्र रामायण** रखा। इसी शताब्दी में रामकथा विषयक नाट्य साहित्य का प्रवर्तन हुआ जिसमें वैश्य सदाशिव की **रामलीला** तथा रघुनाथदास की **छन्द रामायण** उल्लेखनीय हैं। 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में भी उड़िया में भी रामकथा विषयक रचनाओं का क्रम जारी रहा। 19वीं शताब्दी में कृष्णचरण पट्टनायककृत **रामायण,** भुवनेश्वर कविचन्द्र कृत **सीतेश विलास,** केशव पट्टनायक (केशव हरिचन्दन) कृत **नृत्यरामायण** (केशव रामायण) तथा केशव त्रिपाठी कृत **पूर्ण रामायण** उल्लेखनीय हैं। एक **हलिआ रामायण** है जो हल चलाते समय गाये जाने वाले गीतों का संकलन है। इसी क्रम में पीताम्बर राजेन्द्र, अनंग नरेन्द्र तथा विक्रम नरेंद्र कृत **रामलीला** शीर्षक नाट्य कृतियां मिलती हैं।

ऊपर वर्णित उड़िया में रचित रामकथा अथवा रामकथा के किसी अंश को लेकर रचित रचनाओं में उड़िया-साहित्य की सबसे प्रसिद्ध रामायण की रचना बलरामदास द्वारा 16वीं शती के प्रारम्भ में हुई। यह रामायण इतनी लोकप्रिय हुई कि बलरामदास को उत्कलवाल्मीकि कहा जाता है और इसे ही उड़िया रामायण का विशेषण प्राप्त है। इस ग्रंथ के कई नाम प्रचलित हैं : जगमोहन रामायण (रचयिता का दिया हुआ), दण्डि रामायण (दण्डि छन्द में होने के कारण) और बलरामदास रामायण (लेखक के नाम पर)। यद्यपि वाल्मीकि रामायण इसका प्रधान आधार है, फिर भी इसमें रामकथा के विकास की दृष्टि से बहुत से परिवर्तन मिलते हैं जो सारलादास के महाभारत में आई रामकथा तथा बंगाली में कृत्तिवास रामायण से भी सादृश्य रखते हैं। मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ पर निर्भर बलरामदास कृत रामायण अथवा उड़िया रामायण की निम्नांकित विशेषताएं महत्वपूर्ण हैं–

(1) समस्त ग्रंथ शिव-पार्वती-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(2) दशरथ की पुत्री शान्ता का उल्लेख, सीता की

जन्म-कथा में मेनका का प्रसंग, शापदोषमोहिता कैकेयी का दोष-निवारण, राम की कुश-पादुकाओं की चर्चा, राम के प्रति तारा का शाप, जटायु गरुड़ का पुत्र है, सम्पाति से वानरों की भेंट के प्रसंग से सुपार्श्व का आगमन, विभीषण पर रावण का पाद-प्रहार, हनुमान की हिमालय-यात्रा के वर्णन में कालनेमि तथा भरत का उल्लेख।

(3) बलरामदास का अवतारवाद अनिश्चित है। इसमें पुत्रेष्टि-यज्ञ के वर्णन के अनुसार चारों भाई तो विष्णु के अवतार हैं किन्तु अन्यत्र लक्ष्मण को शेष का अवतार माना गया है तथा भरत, शत्रुघ्न को क्रमशः चक्र और शंख का। अरण्यकाण्ड में बलरामदास लक्ष्मण को रुद्र, भरत को सूर्य तथा शत्रुघ्न को चन्द्र मानता है। अनुसूइया लक्ष्मण को शूलधारी कहती है। उत्तरकाण्ड में सीता तथा सरस्वती की अभिन्नता का उल्लेख है तथा यह भी कहा जाता है कि स्वर्ग में राम तथा सीता नारायण और लक्ष्मी के रूप में मिलते हैं किन्तु एक अन्य स्थल पर राम, सीता और लक्ष्मण क्रमशः जगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलभद्र भी माने गये हैं।

(4) सारलादास की रामकथा की भांति बलरामदास रामायण भी बंगाली रामकथा कृत्तिवास रामायण से सादृश्य रखती है, जैसे– दशरथ के प्रति शनि का वरदान, सीता का पूर्वानुराग, राम-गुह-बंधुत्व, केवट-प्रसंग, विभीषण-मन्दोदरी का विवाह।

(5) वाल्मीकि कथानक के अग्रलिखित परिवर्तन रामकथा के विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं– माता-सीता का वृत्तान्त, वेदवती की कथा, नारद-मोह की कथा, रावण का सीता-स्वयंवर देखने आना, सुरभि के अवतार, मंथरा का वैर, सीता के प्रति लक्ष्मण का शाप, राम का मुनियों को गोपी बनने का वरदान देना।

उड़िया रामायण अथवा जगमोहन रामायण अथवा दण्डी रामायण के कर्त्ता बलरामदास को उड़िया साहित्य में पंचसखा शाखा से संबंधित माना जाता है। उड़िया रामायण मूल में संस्कृत वाल्मीकि रामायण का अनुवाद माना जाता है। परन्तु यह अविकल अनुवाद नहीं है क्योंकि इसके रचयिता बलरामदास ने संस्कृत रामायण को अपने जीवन काल में पढ़ा ही नहीं था। उसने इसकी रचना स्थानीय पंडों-पुजारियों से प्राप्त वाल्मीकीय रामकथा विषयक सूचनाओं और प्रचलित लोकगाथाओं के आधार पर की। इसीलिए इसमें वाल्मीकि रामायण में वर्णित कथा के अलावा उड़ीसा के स्थानों, सामाजिक मूल्यों-आदर्शों, भोजन आदि से संबंधित विवरण भी समाहित हैं। इस तरह बलरामदास द्वारा निर्मित जगमोहन रामायण अथवा दण्डी रामायण, वाल्मीकि रामायण से अलग रामायण के रूप में भी अपनी पहचान रखती है। यह रामायण मुख्य रूप से उड़ीसा के सामाजिक-आदर्शों, जीवन-पद्धति, मनोरंजन इत्यादि को लेकर की गई रचना के रूप में दिखाई देती है।

डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक 'रामायण इन उड़िया फोकलोर' में ठीक ही लिखा है कि भारत में वाल्मीकि रामायण के बहुत से पाठ मिलते हैं, इसलिए यह कहना सही नहीं है कि इसका कोई निश्चित पाठ है। फिर वाल्मीकि रामायण के अलग-अलग पाठ को भी देश के बहुत से रचनाकारों ने अपने परिवेश के अनुसार अलग-अलग ढाला है, तो विभिन्न कलाकारों ने अपने अनुसार इसकी नाट्य प्रस्तुतियां दी हैं। उड़ीसा में रामायण की लिखित और मौखिक दोनों परम्परायें विकसित हुई जो इस प्रांत के विभिन्न नगरों, गांवों एवं आदिवासी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमें एक चीज सामान्य है कि राम विष्णु अवतार के रूप में पूज्य हैं।

<u>सामग्री-स्रोत</u> :

1. गूगल विकीपीडिया।
2. डॉ. कामिल बुल्के, रामकथा, छठा संस्करण 1999।
3. स्वामी करपात्रीजी, रामायण मीमांसा, प्रथम संस्करण-वि.सं. 2034।
4. चित्र- गूगल से साभार

❑❑

52ए, बिक्रमगढ़
फ्लैट न. 5, दूसरा तल्ला
कोलकाता-700032
मो. 980334430296

प्राचीन भारतीय उत्कीर्णन-अंकन में श्रीराम

ललित शर्मा

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में श्रीराम

पुरातात्त्विक शिल्पकला, स्थापत्य तथा इतिहास के आधार पर पुरातत्त्व के विद्वानों का मानना है कि–मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मंदिरों के निर्माण की परम्परा हमारे देश में गुप्तकाल से पहले की प्राप्त नहीं होती। इससे संबंधित पूर्व श्रीराम के सद्कार्यो व उनके जीवन आदर्शों की पूजा के मृदपट्ट हमारे देश के मध्यप्रदेश, बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ़ से लेकर हरियाणा और कौशाम्बी तक के विस्तृत क्षेत्र में मिले हैं। इनमें श्रीराम (रामायण) के जो दृश्य उकेरे हैं। वे मूलतः पकी हुई ईटों पर हैं। इनमें श्रीराम, हनुमान तथा वानर सेना है। ये ईटें पटना के पुरा संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

मध्यप्रदेश के पन्ना जिलान्तर्गत नचना नामक पुरास्थल के मंदिरों में गुप्तयुगीन स्थापत्य के सुन्दर शिल्प में श्रीराम से सम्बन्धित कई दृश्य देखने को मिलते हैं। इनमें सीता से रावण द्वारा छद्म साधुवेश में भिक्षा की याचना, श्री राम की उपस्थिति में लक्ष्मण द्वारा सूर्पनखा की नासिका को काटना, वानरों के साथ श्रीराम का विचार-विमर्श तथा समुद्र पर सेतु निर्माण का दृश्य शिल्पांकित है। इन दृश्यों में गुप्तकालीन कला के सभी तत्व निहित हैं। ऐसी शिल्पकला परम्परा पन्ना से नर्मदा नदी तक तथा उसके पूर्वी निमाड़ क्षेत्र के बटकेश्वर मंदिर तक प्रसारित रही। नर्मदा तट पर बसे नेमावर के मन्दिरें में भी श्रीराम के कुछ दृश्य शिल्प रूप में देखे गये हैं। उल्लेखनीय है कि श्रीरामकथा से सम्बन्धित प्राचीनतम फलक द्वितीय-प्रथम सदी ईसा पूर्व का है जिसमें रावण द्वारा सीता के हरण के दृश्य का अंकन है। यह पकी हुई मिट्टी का है तथा यह कौशाम्बी से प्राप्त है और वर्तमान में इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है। इसी प्रकार प्रथम सदी ईस्वी की श्रीराम की एक पकी हुई मिट्टी की मूर्ति है जिस पर ब्राह्मी में 'राम' लेख उत्कीर्ण है और यह मूर्ति लास ऐंजिल्स के कंट्री आर्ट संग्रहालय में है।

पुरातत्त्वविद् डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार गुप्त युग में श्रीराम के मंदिर चौकोर भवन वाले परन्तु शिखर विहीन बने थे जिनकी कई दीवारों पर श्रीराम के चरित्र सम्बन्धी अनेक घटनाक्रमों का मृदपट्टिकाओं पर शिल्पांकन किया गया। ये पट्टिकायें 43.43 सेमी तथा 56.56 सेमी आकार की हैं। इन पट्टिकाओं पर श्रीराम-बालि युद्ध, श्रीराम-रावण युद्ध, अशोक वाटिका में हनुमान एवं सीता जी, पंचवटी जाते श्रीराम-सीता और लक्ष्मण, मकराक्ष (राक्सस) के साथ श्रीराम का युद्ध, बाली-सुग्रीव युद्ध, श्रीराम द्वारा त्रिशिरा राक्सस का शिरछेदन, स्वर्णमृग का पीछा करते श्रीराम, अशोक वाटिका को नष्ट करते हनुमान, वानर सेना-नायक रूप में हनुमान, सेतु निर्माण करती वानर सेना जैसे दृश्य हैं।

इन सभी पर (ऊपर या नीचे) ब्रह्मी लिपि में रामायण के संस्कृत में श्लोक एवं शीर्षक उकेरे गये हैं। एक आकलन के अनुसार लिपिशास्त्र के आधार पर ये शिल्पावशेष 1500 वर्ष पुराने पुरातात्त्विक प्रमाण हैं।

उक्त में से मारीच एवं श्रीराम का फलक मूलतः हरियाणा के नचारखेड़ा स्थल में प्राप्त हुआ है जो 43 गुणा 43 सेमी आकार का है। इस फलक में स्वर्णमृग दौड़ता हुआ, भयवश पीछे मुड़कर देख रहा है तथा श्रीराम-सीता भी उसे देख रहे हैं। श्रीराम के हाथों में धनुष बाण और कन्धे पर अक्षय तुणीर है तथा जटा सिर पर बंधी है जबकि सीता बालों में वन पुष्पाभरण धारण किये हुए है। इस मृदफलक पर श्रीराम का जटायु से मिलने का दृश्य भी उकेरा हुआ है जिस पर ब्रह्मी लिपि में एक पंक्तिबद्ध लेख 'न अन्तरा रघुनन्दन आससाद महागृध्रे' अंकित है। वाल्मीकि रामायण में इस दृश्य का वर्णन है– **अथ पंचवटी गच्छन अन्तरारघुनन्दनः। आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्।।** (रामायण, अरण्य, सर्ग 14, श्लोक 1)।

इसी क्रम में मध्यप्रदेश के पन्ना जिले में नचना के मन्दिरों में भी गुप्तकालीन स्थापत्य के दुर्लभ उदाहरण देखने को मिलते हैं। यहाँ लक्ष्मण द्वारा, श्रीराम की उपस्थिति में सूर्पनखा की नासिका काटते हए शिल्पांकित किया गया है। यहीं से प्राप्त 5वीं सदी ईस्वी के एक प्रस्तर फलक पर रावण द्वारा सीता से भिक्षा मांगने का कथानक अंकित है जो अति महत्वपूर्ण है। शिल्पकला की यह परम्परा पन्ना से नर्मदा नदी तट तक प्रवाहित रही जहाँ निमाड़ क्षेत्र में हरसूद के बटकेश्वर मन्दिर की देहरी पर बालि-सुग्रीव युद्ध को उकेरा गया है।

श्रीराम की वनगमन यात्रा का अनुशीलन किया जाये तो ज्ञात होता है कि उनकी दक्षिण-पथ की यात्रा मुख्यतया वर्तमान बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ के क्षेत्र से होकर सम्पन्न हुई थी। पुराविद् डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी के अनुसार, इस भू-भाग में इस आशय के वास्तु तथा मूर्तिकला के पुरावशेष आज भी विद्यमान हैं। क्षेत्र के देवगढ़, शिवरीनारायण, जांजगीर, खजुराहो आदि में श्रीराम हैं– कथा के प्रचुर शिल्पांकन प्राप्त हुए हैं। वाराणसी के भारत कला भवन में प्रदर्शित एक फलक में ऋष्यमूक पर्वत का एक दृश्य उत्कीर्ण है। श्रीराम कथा के विविध दृश्यों के मृण्मयी अवशेष श्रावस्ती एवं भीतरगांव (कानपुर) के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं जो गुप्तकालीन हैं। श्रावस्ती से प्राप्त फलक पर हनुमान का राक्षसों के साथ भीषण युद्ध दर्शनीय है। बिहार के चौसा एवं अफसद के मृतिका फलकों पर शृंगवेरपुर में श्रीराम द्वारा गंगा पार करने का दृश्य तथा चित्रकूट में राम-भरत-मिलाप का महत्वपूर्ण शिल्प दृश्य है। देवगढ़ तथा नचना से प्राप्त रामायण के दृश्य में साधुवेश में रावण सीता से भिक्षा याचना करते हुए शिल्पित है। यहाँ समीप ही दोनों ओर पुष्प सहित वृक्षों का सुन्दर अंकन है जो विशिष्ट है। इसी क्रम में एक अन्य दृश्य में बालि-सुग्रीव ऊपर उठे हुए हाथों में पाषाण खण्ड लिये आमने-सामने युद्धरत हैं। जबकि उनके दाहिनीं ओर धनुर्धारी श्रीराम लक्ष्मण त्रिभंग मुद्रा में खड़े हैं। अन्य दृश्यों में पंचवटी स्थित सूर्पणखा प्रसंग, बालि-सुग्रीव युद्ध, विविध अलंकरणों से सुसज्जित राजसी वेश में रावण, राक्षसगण व कुमार इन्द्रजीत को भी प्रदर्शित किया गया है।

नचना और देवगढ़ मन्दिरों के फलकों पर श्रीराम की सुग्रीव से मैत्री, बालिवध जैसे कथानकों को विस्तार से उकेरा गया है। भारत कला भवन वाराणसी में गुप्तकालीन एक पाषाण फलक पर सीता की खोज के दृश्य का भावपूर्ण अंकन है जिसमें श्रीराम और लक्ष्मण, हनुमान एवं सुग्रीव से विचार विमर्श करने में निमग्न हैं। चौसा से प्राप्त एक गुप्तकालीन मृतिका फलक पर अंकित श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान तथा अंगद को परम्परागत अलग-अलग आकर्षक वेशभूषा में प्रदर्शित किया गया है। देवगढ़ के गुप्तकालीन दशावतार मन्दिर की चौकी तथा स्तम्भों पर रामायण के जिन दृश्यों का अंकन है उनमें वनगमन, अहिल्याउद्धार, वाल्मीकि आश्रम तथा अत्रि के आश्रम में श्रीराम, शूर्पनखा प्रसंग, दण्डकवन में सीताहरण, बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतु निर्माण, अशोक वाटिका में सीता एवं हनुमान द्वारा संजीवनी बूंटी लाना जैसे दृश्य प्रमुख हैं।

दमोह (मध्य प्रदेश) के जिला पुरातत्व संग्रहालय में 10वीं सदी की श्रीराम की द्विभुजी कलात्मक मूर्ति है। इसमें उनके दोनों करों में धनुष बाण हैं तथा वे एक सुन्दर पुष्पित वन में खड़े हैं। यह मूर्ति वर्तमान में जबलपुर के

दुर्गावती संग्रहालय में सुरक्षित है। खजुराहो में चन्देल कालीन शिल्पकला में रामायण के दृश्य अंकित हैं, इनमें बालिवध तथा अशोक वाटिका में सीता का दृश्यांकन अत्यन्त मनोहारी द्रष्टव्य है। इनमें से पहला कदरियाँ महादेव और द्वितीय पार्श्वनाथ मन्दिर में है। मध्यप्रदेश के भोपाल स्थित राज्य संग्रहालय में दशावतार विष्णु की मूर्तियों में एक मूर्ति श्रीराम की है इसमें उन्हें धनुष बाण धारण किये आकारित किया गया है। यह दशावतार मूर्तिपट्ट पूर्व मध्यकाल का है। इसी क्रम में उज्जैन के विक्रम कीर्ति मन्दिर पुरातत्त्व संग्रहालय में 45 सेमी लम्बी एवं 28 सेमी मोटे कला फलक पर दो रथिका स्तम्भों के मध्य उज्जैन से प्राप्त परमार युगीन दो मूर्तियाँ हैं। एक में बालि-सुग्रीव का युद्ध और द्वितीय फलक में श्रीराम अंकित हैं। यह मूर्ति महाकाल परिक्षेत्र से अवाप्त हुई थी। मूर्ति के सम्मुख पक्ष में दो वानर योद्धा बालि-सुग्रीव अपनी मुष्ठिका से युद्ध करते हुए दर्शित हैं। पृष्ठ में करबद्ध निवेदन करती एक स्त्री का शिल्प है। दोनों की पूँछ उठी हुई है तथा वे लंगोट धारण किये एक दूसरे के प्रति क्रोध भाव से दर्शित हैं। पृष्ठ भाग में खड़ी स्त्री बालि की पत्नी तारा है जो श्रीराम से याचना करती प्रदर्शित है। मूर्ति की रथिका के दूसरे पक्ष में श्रीराम की मूर्ति शिल्पित है जिसमें वे दाहिनें कर में बाण और बायें कर में धनुष धारण किये हुए है।

बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के मल्हार ग्राम के देउल मन्दिर परिसर में एक गोलाकार पाषाण स्तम्भ के मध्य भाग में श्रीराम द्वारा बालि-वध कथानक का भावपूर्ण कला अंकन देखने को मिलता है। इसमें लघु स्तम्भों से विभक्त बायें भाग में ऋष्यमूक पर्वत का अंकन है। इसमें ऊँचे अधिष्ठान पर सुग्रीव को बैठा दिखाया गया है। यहाँ बालि से भयातुर होकर सुग्रीव कृशकाय है। उसकी मुखाकृति पर भयाक्रान्त भाव है। उसके दोनों ओर दो अनुचर स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं। यहीं पर श्रीराम वीरभाव में अंकित हैं और वे बालि-वध को उद्धत दिखायी देते हैं। उनके बायें कर में धनुष है। उनके पृष्ठ में ताड़ वृक्षों का कलामय अंकन है। इस दृश्य में सर्वाधिक सुन्दरता कीर्तिमुख, लता वल्लरी तथा मुक्ता गुम्फित किनारों से बन पड़ी है। द्वितीय दृश्य में श्रीराम का बायाँ चरण एक शिला पर स्थित है और वे शर संधान कर अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके दाहिनें ओर सुग्रीव का मुष्टिकायुक्त दाहिना हाथ ऊपर उठा है जबकि बायाँ हाथ वक्षस्थल पर स्थित है। इसी क्रम में बालि-सुग्रीव युद्ध का भी दृश्य है। सुग्रीव को गले में माला धारण किये उकेरा गया है, जिससे उसकी पहचान में भ्रम न हो। दोनों की दैहिक संरचना तथा आक्रोश युक्त मुख मुद्रा एक समान है। उनके पैरों के नीचे शिलाखण्ड तथा पृष्ठ भाग में वृक्ष का अंकन है। तृतीय दृश्य में बालिवध का अंकन है। इसमें श्रीराम बालि के हृदय में बाण मारते दर्शित हैं जिस कारण वह अचेतन होकर धरती पर पड़ा है। उसका शीश श्रीराम की गोद में है और वे अपने दायें कर से उसके सीने में घुसे तीर को निकालने के उपक्रम में है, सामने की ओर ग्रीवा में माला धारण किये सुग्रीव व कर में धनुष धारण किये लक्ष्मण तथा उनके निकट हनुमान दृष्टिगत हैं। इसी फलक के द्वितीय भाग में एक अलंकरण युक्त पीठिका पर तारा के साथ सुग्रीव की पत्नी रुमा का विलाप करते हुए दृश्य है। दोनों बालि-वध की घटना से शोकाकुल है। उसके दाहिना हाथ अपने मस्तक पर शोक मुद्रा में तथा बायाँ हाथ नीचे की पीठिका पर है। बालिवध का इतना मार्मिक और भावमय कलात्मक जीवन्त अंकन विवेच्य शिल्पकला में अन्यत्र कहीं नहीं मिला है। एक अन्य फलक में तारा और रुमा का पूर्व की भांति अंकन है। मूर्ति फलक के द्वितीय अंकन में लक्ष्मण के साथ हनुमान, सुग्रीव तथा अंगद, श्रीराम से मिलने तथा सीता की खोज हेतु उनकी आज्ञा लेने जाते हुए दर्शित है। किष्किन्धा का राज्य मिलने पर सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण का कार्य व्यापक रूप में करवाया था। इस दृश्य में कपिगण भी हैं जिनकी सभी की मुखमुद्रा पर चिन्ता एवं भय के भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। यह फलक अज्ञात शिल्पी की कठोर कला-साधना का प्रमाण है। इसकी निर्माण कला छठी सदी ईस्वी के अन्त अथवा सातवीं सदी के आरम्भिक काल की है। इस कालावधि में इस दक्षिण कोसल क्षेत्र पर सोमवंशी शासक महाशिवगुप्त बालार्जुन का शासन था।

बिलासपुर जिले के जांजगीर स्थल पर विष्णु का 12वीं सदी का मन्दिर कला शिल्प की दृष्टि से दर्शनीय है। इस स्थान को सम्राट जाज्वल्यदेव ने बसाया था। विवेच्य मन्दिर के चारों ओर जगती और सोपान भित्ति

पर रामायण की घटनाएँ अंकित हैं जिनमें श्रीराम का लक्ष्मण-सीता के साथ वनगमन, स्वर्ण मृग का दृश्य, मृग आखेट दृश्य, सीता हरण, बालि सुग्रीव युद्ध, बालि वध, वानरदल द्वारा दानवों का संहार आदि उल्लेखनीय हैं। दुर्ग जिले के देवबालोद के निकट परवर्ती नागवंशी कला शैली के मन्दिर की भित्ति पर श्रीराम कथा एवं वानर दल का सुन्दर अंकन है। शहडोल के सिंहपुर में एक वैष्णव मन्दिर की द्वारशाखा में जिन धनुर्धरों का अंकन है, उन्हें श्रीराम लक्ष्मण ही कहा जाता है। बिलासपुर जिले के रतनपुर किले के द्वार पर रामायण का एक दृश्य बड़े ही मार्मिक रूप में शिल्पित है जो प्रत्येक शोधार्थी तथा पर्यटक का ध्यान आकर्षित करता है। इस शिल्प में लंकापति रावण अपने आराध्य शिव महादेव को प्रसन्न करने हेतु अपने सिरों को काटकर उन्हें पुष्पों के रूप में समर्पित कर रहा है। दक्षिण कोसल प्रदेश की कलचुरी कालीन कला में इस प्रसंग का यह एक मात्र उदाहरण है। रावण की समर्पित भक्ति एवं उसका वीरत्व भाव इस कलाशिल्प में स्पष्ट झलकता है। पन्द्रहवीं सदी के हम्पी के हजार-राम मन्दिर में श्रीराम कथानक के अंकन विश्व प्रसिद्ध हैं।

पुराविद् प्रो वी.डी. झा के अनुसार श्रीराम की एक-एक मूर्ति जगदलपुर के बालाजी मन्दिर और दन्तेवाड़ा के दन्तेश्वरी मन्दिर में संरक्षित है। बालाजी मन्दिर की मूर्ति हरे पाषाण पर निर्मित है। इसमें द्विभुजी श्रीराम ललितासनमुद्रा में प्रदर्शित हैं। उनके एक कर में धनुष और दूसरे में बाण है। उनके चरणों में अंजलिबद्ध मुद्रा में हनुमान का अंकन है। यह मूर्ति लगभग 14वीं सदी की है। दंतेवाड़ा से उपलब्ध मूर्ति में समभंग मुद्रा में प्रदर्शित श्रीराम के दाहिने कर में धनुष एवं बायें में बाण है तथा वे परम्परागत वेशभूषा धारण किये हैं।

बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ के कला शिल्पों में श्रीराम के बाल्यकाल या अयोध्या से सम्बन्धित किसी घटना का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। प्रयाग शृंगवेरपुर में गंगा पार से लेकर लंका प्रयाण तक के अनेक दृश्य यहाँ के शिल्प में बहुतायत से हैं। इन शिल्पांकनों में इन अंचलों की कला की संवेदनशीलता, शारीरिक सौष्ठव, भंगिमा, वस्त्र विन्यास वास्तव में यथार्थ जीवन की जनाभिव्यक्ति का रोचक समन्वय प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार गुप्तकालीन तथा पूर्व मध्यकालीन कला शिल्प के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि श्रीराम से सम्बन्धित वनगमन एवं लंका विजय के कथानक शिल्पांकनों में उनके उत्प्रेरक प्रसंगों को ही चिर स्थायी बनाया गया है। इस प्रकार पाषाणकला में श्रीराम कथानकों के अंकन युग परिवर्तन के शाश्वत संदेश हैं जो एक महान उदात्त चरित्र की स्मृति हमारे जीवन को अद्यतन व्याप्त किये हुए है।

हरियाणा के कुरुक्षेत्र से 80 किमी दक्षिण-पूर्व में स्थित सन्धाय ग्राम से प्राप्त एक मृदफलक (22 x 22 सेमी) पर श्रीराम तथा मकराक्ष का युद्ध उकेरा हुआ मिला है। इसमें खर नामक राक्षस के पुत्र मकराक्ष को रावण ने अपनी बहन सूर्पनखा के अपमान का बदला लेने के लिये श्रीराम के विरुद्ध भेजा था। मकराक्ष ने फिर लंका की युद्ध भूमि में अपने पिता खर की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए श्रीराम से युद्ध किया था। उसने श्रीराम से कहा-- राम ! ठहरो ! सावधान हो जाओ, तुमसे मेरा द्वन्द्व युद्ध होगा और मैं अपने पैने तीरों से तेरे प्राण ले लूंगा। उल्लेखनीय है कि इस राक्षस की आंखें और मुख मकराकृति (मगरमच्छ) जैसा तथा शेष शरीर गधे (खर) जैसा होने से इसे 'मकराक्ष' कहा गया।

इस फलक पर मूर्तिकार ने मकराक्ष को श्रीराम का बायां हाथ अपने जबड़े में पकड़े व श्रीराम को अपना बायां पैर राक्षस के पेट पर मारकर उसे धक्का देते बड़े सुन्दर शिल्प से सजाया है। यहाँ श्रीराम के कानों में सुन्दर कुण्डल, ग्रीवा में अलंकृत कण्ठाभरण हैं जिसमें चक्रदार पेण्डिल है, पहने दर्शाया है। श्रीराम द्वन्द्व युद्ध में लंगोट धारण किये हुए हैं। उनके नीचे एक अश्व मृत पड़ा है। मकराक्ष के मुख के नुकीले दांत तीक्ष्ण हैं तथा उसके सिर पर कान के नीचे लम्बे मोटे बाल हैं। उसकी मुखमुद्रा आक्रामक है। वह अपने दोनों खुरों पर खड़ा हुआ श्रीराम से द्वन्द्व युद्ध कर रहा है।

झज्जर के गुरुकुल पुरातत्त्व संग्रहालय में दर्शित एक मृद्फलक काफी भग्न है। इसमें श्रीराम वृक्ष की आड़ में बालि पर धनुष ताने हुए हैं। एक अन्य फलक हरियाणा के हिसार जिले में स्थित दुर्जनपुर के ग्राम नचारखेड़ा में मिला था जो 43x43 सेमी का है। इसमें रामायण के अरण्यकाण्ड में वर्णित त्रिशिरा राक्षस को उकेरा गया है।

वह दो स्तम्भ पर आधारित छत के नीचे बनी एक चौकी पर बैठा है तथा उसके दायें बायें जमीन पर हाथ में तलवार लिये दो रक्षक बैठे हैं। इनमें से एक के पैर में कुषाणकालीन जूते हैं। त्रिशिरा के चेहरे पर बायीं ओर चौथी सदी की ब्राह्मी लिपि में 'तृशिर' (त्रिशिरा) उकेरा हुआ है। फलक के निचले भाग पर ब्राह्मी में ही 'चतुर्दश राक्षसा सुजित्वा रामद्येय यशः (अर्थात श्रीराम ने 14 राक्षसों को जीतकर यश प्राप्त करने का दृश्य उकेरा हुआ है।)। ऐसे ही एक अन्य फलक में त्रिशिरा को युद्धरत दिखाया गया है। फलक में उसके दो मुख भग्न हैं तथा तीसरा मुख श्रीराम के बाण से कट कर गिरने की अवस्था में उकेरा हुआ है। उसे अश्वजुते रथ पर पद्मासन मुद्रा में बैठे व युद्ध करते दर्शाया गया है। उसके कुल 6 हाथ हैं परन्तु उनमें से 4 भग्न हैं। शेष दो हाथों में क्रमशः तलवार एवं चक्र हैं।

पुरातात्त्विक मूर्तिकला शास्त्र के अनुसार अवतारों की कल्पना विष्णु को सामान्यजन की रक्षा के लिए अवतरित होने के उद्देश्य से की गई थी। अवतारो के कारण ही अनेक धार्मिक और पौराणिक तथा महान ऐतिहासिक महापुरुषों का समावेश विष्णु के अवतारों में किया गया। इन अवतारों को दो भागों में विभाजित किया गया है- प्रथम पूर्ण अवतार, द्वितीय अंशावतार। इनमें प्रमुख रूप से दशावतारों को फलक पर उत्कीर्ण किया गया था। ये अवतार आज भी देवालयों के प्रवेश द्वारों की चौखट, स्तम्भ आदि पर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के अंकनों में एक विशेष क्रम–मत्स्य, परशुराम, कच्छप, वराह, वामन, बलराम तथा श्रीराम आदि को पूर्ण मानवीय रूप में प्रदर्शित किया जाता है। खासकर ऐसे दसों अवतार पंक्तिबद्ध एक-से आकार में ही अंकित होते हैं कहीं कहीं पर इनका अंकन मंदिरों की वेदिका के शिखर की बाहरी भित्ति पर भी किया जाता है।

भारत के प्राचीन देवालयों में श्रीराम की प्राचीन मूर्तियाँ यद्यपि कम मिलती हैं परन्तु जितनी भी एवं जहाँ भी मिलती हैं बड़ी प्रभावोत्पादक मिलती हैं। इस क्रम में राजस्थान के शिल्पियों और सूत्रधारों ने भी श्रीराम के जीवन चरित्र और रामायण कथा का अंकन बड़ी कुशलता से किया। अपराजितपृच्छा, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, रूपमण्डन, देवता मूर्तिप्रकरण जैसे ग्रन्थों में श्रीराम की मूर्ति के अनेक प्रकार के लक्षण दिये गये हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार श्रीराम के करों में धनुष बाण के साथ खड्ग और शंख धारित होने चाहिये तथा वे द्विभुज तथा चतुर्भुज दोनों प्रकार के रूपों में हो सकते हैं। यह ग्रन्थ जहाँ श्रीराम को किरीट मुकुट धारित राजपुरुष बताता है वहीं भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का भी राजपुरुष के रूप में उल्लेख करता है। अग्निपुराण श्रीराम को द्विभुज और चतुर्भुज रूप में वर्णित करता है। रूप मण्डन व देवता मूर्ति प्रकरण श्रीराम का द्विभुजी रूप में उल्लेख करता है। राजस्थान के मेवाड़ भू-भाग स्थित नागदा के सास-बहू नामक देवालय के गूढ़ मण्डप के छज्जों व अष्टकोणीय स्तम्भों पर लंका विजय के लिये सेतु निर्माण और बालि-सुग्रीव युद्ध का दृश्य अंकित है, जिसमें एक वृक्ष के पीछे प्रत्यालीढ़ मुद्रा में श्रीराम को शरसंधान करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। यहीं के एक स्तम्भ के दूसरे फलक में शक्ति से मूर्छित लक्ष्मण को श्रीराम की गोद में लेटा दिखाया गया है तथा एक वानर द्वारा उनका उपचार किया जाना अंकित है जो सबसे आकर्षक शिल्पांकन है। ये फलक अत्यन्त छोटे हैं जो सामान्य लोगों की दृष्टि से देखने में छूट जाते हैं। इस मन्दिर के गर्भगृह की जंघा के दक्षिणी भद्र के उद्गम भाग में श्रीराम का अंकन है। इस मूर्ति में योगासन मुद्रा में विराजमान श्रीराम अपने करों में अक्षमाला, शर, धनुष और शंख धारण किये हुए हैं। जटामुकुट, कुण्डल, कंठहार, यज्ञोपवीत आदि से विभूषित श्रीराम की मूर्ति यहाँ पीठिका पर कल्पवृक्ष व पद्म सहित निर्मित है। इस मन्दिर में गूढ़मण्डप व मुखमण्डप के भागों पर भी रामायण के अनेक दृश्य अंकित हैं, जिनमें बालि-सुग्रीव युद्ध व श्रीराम द्वारा शरसंधान मुख्य है।

श्रीरामकथा का एक सुन्दर कला अंकन किराडू के मंदिर क्रमांक 4 के वेदिबन्ध तथा अन्तर पट्ट पर अंकित है। इसमें श्रीराम का सुग्रीव से संभाषण, सेतुबन्ध के समय श्रीराम का पाषाण खण्ड के आसन पर बैठकर सेतु निर्माण निहारना तथा श्रीराम द्वारा वानर समूह से वार्ता करना अंकित है। इस मूर्ति दृश्य में कुल पांच वानरों का समूह है जिसमें दो वानर बड़े आकार के है। संभवतः वे सुग्रीव और हनुमान हैं। किराडू का यह मंदिर 12वीं सदी का है। किराडू के इसी मंदिर के वेदीबन्ध पर शक्ति आघात

का अंकन भी है, जिसमें व्याकुल श्रीराम की गोद में लेटे हुए लक्ष्मण तथा शोकग्रस्त वानरों का समूह है। यहाँ एक फलक में नल-नील द्वारा सेतुबन्ध तथा अन्य फलक में बालि-सुग्रीव युद्ध व श्रीराम द्वारा सप्तल वृक्षों के भेदन का अंकन है। श्रीराम की एक ऐसी ही मूर्ति जोधपुर के बालोतरा से 5 मील दूर स्थित रणछोड़राय जी मंदिर में है, जबकि सिरोही के असावा में 1298 ई. की श्रीराम के अनन्य सेवक हनुमान की एक विशाल मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। झालरापाटन (झालावाड़) के 10वीं सदी के प्रख्यात सूर्य मंदिर की शुक नासिका के दक्षिण पक्ष में श्रीराम का धनुष बाण सहित अंकन स्पष्ट है जिसमें सीता और लक्ष्मण भी हैं। इस मूर्ति में दोनों भाइयों के दक्षिण करों में शर एवं वामकरों में धनुष का स्पष्ट अंकन है। कोटा जिले के चन्द्रसेल मठ (मन्दिर) में कुछ वास्तुखण्ड व मूर्तियाँ हैं। इनमें दो अलग देवालयों की द्वार शाखा के दो भाग हैं जिनमें घटधारिणी गंगा व जमुना को अपने वाहनों, मकर व कच्छप के साथ शिल्पित किया गया है तथा द्विहस्त द्वारपालों को धनुष व शर धारण किये प्रदर्शित किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय होगा कि द्वारपाल मूर्तियों का धनुष व शर के साथ अंकन करने का कोई साहित्यिक प्रमाण नहीं है और न ही राजस्थान में इस आशय का कोई अन्य साक्ष्य मिलता है। अतः संभावना है कि यह द्वारशाखा श्रीराम को समर्पित किसी देवालय की रही होगी। इसी जिले के मानसगांव में दो शिव मन्दिर 10वीं सदी के हैं। इनमें से प्रथम मन्दिर के नवनिर्मित गूढ़ मण्डप में सलेटी पाषाण से निर्मित एक मूर्ति लगी हुई है जिसमें वृत्ताकार स्तम्भ युक्त रथिका में शर व धनुषधारी द्विहस्त देवाकृति का अंकन है। जटामुकुट, यज्ञोपवीत व मुक्तादाम से सज्जित यह मूर्ति श्रीराम की प्रतीत होती है। यह मूर्ति किसी देवालय के जंघा भाग पर स्थापित रही होगी। मूर्ति के उद्गम भाग में अर्धरत्नाकृतियों व चैत्य शुकनासा का अंकन है।

बारां जिले के भण्डदेवरा देवालय के सभा मण्डप के एक स्तम्भ पर रामायण का दृश्य अंकित है जिसमें मध्य में दशानन रावण रथ पर सवार है और उसने मुख्य हस्तों में खड्ग धारण किया है। इस मूर्ति की दायीं ओर की रथिकाओं के मध्य संभवतः हनुमान और मेघनाद का युद्धरत अंकन है। मूर्ति के बायी ओर रथों पर श्रीराम और लक्ष्मण धनुष धारण कर युद्धरत हैं।

श्रीरामकथा का एक और अंकन नागौर जिले के केकीन्द के नील-कंठेश्वर महादेव मंदिर के मण्डप के अष्ट स्तम्भों के ऊर्ध्वभाग पर अंकित है। इनमें श्रीराम-लक्ष्मण, हनुमान तथा जटायु, श्रीराम-रावण युद्ध व लक्ष्मण का शक्ति आघात, बालि-सुग्रीव युद्ध, सेतुबन्ध निर्माण, स्वर्ण मृग प्रमुख हैं। इसी क्रम में गोठ मांगलोद में 9 वीं सदी के दधिमाता मंदिर की जंघा तथा शिखर के मध्य की पट्टिका पर श्रीराम के वनवास से लंका विजय तक की कथा 15 लम्बी पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण है। इनमें श्रीराम का चित्रण ब्रह्मचारी वेश में जटामुकुट धारण किये हुए एवं हाथ में धनुष व पीठ पर तरकस बाँधे प्रत्यालीढ़ मुद्रा में किया गया है। इस मूर्ति चित्रण में श्रीराम सामान्य पुरुष रूप में हैं, न कि अवतारी रूप में। इन शिल्पों में मारीचवध, सुग्रीव संभाषण, श्रीराम रावण युद्ध आदि नाटकीयता को महत्व देती घटनाओं को चुना गया जो मानव में आश्चर्य के भाव उत्पन्न करती हैं। इन घटनाओं के अंकन में कलाकार ने श्रीराम विषयक कथाओं के सूक्ष्म वर्णनों को ध्यान में रखकर ही अंकन किया है।

इसी प्रकार अन्य पट्टिकाओं में सप्त साल वृक्ष लम्बे तने युक्त अंकित हैं। दाहिनी ओर श्रीराम आलीढ़ मुद्रा में लक्ष्मण सहित खड़े हैं। उनके बायीं ओर सुग्रीव-बाली तथा शिशु वानर अंगद हैं। इसमें सुग्रीव की पहचान उनके गले में उकेरी गजपुष्पी माला से होती है। श्रीराम कथा के इन लघु मूर्ति अंकनों से यह धारणा तो पुष्ट हो जाती है कि 9वीं सदी के प्रतिहार युग से रामायण के महानायक श्रीराम का विशेष अंकन मूर्ति रूप में विशिष्टता सहित उपलब्ध है। प्रतिहार नरेश स्वयं को श्रीराम के भाई लक्ष्मण के वंशज मानकर 'स्वभातृ रामभ्रस्य प्रतिहार्य कृतंयतः श्री प्रतिहार वंशो अयम' की घोषणा करते थे।

विवेच्य मन्दिर दधिमाता में रामकथा का अंकन दक्षिण से पूर्व की ओर है जो एक लम्बे पैनल में है। इसमें दक्षिण दिशा की पट्टिका पर मारीच वध, शबरी की मुक्ति, विभीषण की शरणागति तथा समुद्र की प्रताड़ना तक के कथा चित्र अंकित हैं। इसमें प्रथम पट्टिका श्रीराम एवं लक्ष्मण के वनगमन से आरम्भ होती है। श्रीराम शरसंधान किये हुए स्वर्ण मृग का पीछा करते शिल्पित

किये गये हैं। यहाँ मृग का अंकन दो बार उकेरा गया है। प्रथम अपने पिछले पैरों पर खड़े होकर उछलते हुए तथा पुनः श्रीराम के चरण स्पर्श करते हुए है। पट्टिका के अन्त में दो आकृतियाँ मानवरूप में दिखाई गई हैं, जिनमें से एक मारीच की प्रकृत रूप में तथा दूसरी लक्ष्मण की जो सीता को तपोवन में छोड़कर आये हैं। यहाँ मारीच वध का शिल्प वाल्मीकि रामायण के अनुरूप ही किया गया है।

द्वितीय पट्टिका में सीताहरण का दृश्य है। वृक्ष के नीचे एक स्त्री आकृति बैठी हुई है तथा दूसरी पास में ही खड़ी हुई भिक्षुक को भिक्षा देती हुई अंकित की गई है। दोनों आकृतियाँ ही पंचवटी में सीता का प्रतिनिधित्व करती हैं। भिक्षुक रावण है जो शिखा, दण्ड, कमण्डलु लिये खड़ा है। इस पट्टिका में रावण और सीता की आकृतियाँ रथ में बैठकर आकाशचारी होती हुई अंकित हैं। रथ का अंकन विशिष्ट द्विआयामी प्रकार का है और अंत में लक्ष्मण को विपरीत दिशा की ओर जाते हुए अंकित किया गया है।

तृतीय पट्टिका में अनेक दृश्य उकेरे हुए हैं। श्रीराम और लक्ष्मण जटाजूट धारण किए, धनुष बाण लिए हुए अंकित हैं। इसके पश्चात पुनः श्रीराम प्रत्यालीढ़ मुद्रा में दौड़ते हुए विचित्र पशु पर शरसंधान करते दिखाई देते हैं। संभवतः यह चित्रण कबन्ध वध का है। इसके पश्चात मृतप्राय जटायु का अंकन है। यहाँ जटायु श्रीराम के चरणों में प्रणाम करता शिल्पित किया गया है। पट्टिका के अन्त में श्रीराम और लक्ष्मण मातंगवन में प्रविष्ट होते हुए दिखाये गये हैं जहाँ शबरी की आकृति को दो बार विभिन्न मुद्राओं में अंकित किया गया है।

चौथी पट्टिका इस दिशा की पट्टिकाओं में सर्वांग सुन्दर संयोजन प्रस्तुत करती है। इसमें श्रीराम द्वारा सप्त साल के वृक्षों का एक ही तीर से भेदन को अंकित किया गया है। पट्टिका पर एक ओर श्रीराम और लक्ष्मण तथा दूसरी ओर परस्पर गुंथे हुए बालि व सुग्रीव का अंकन है। इनके मध्य सप्तसाल के वृक्ष के तने उकेरे हुए है। सप्तसाल वृक्ष की कला ऊर्ध्वगामी गति को चित्रित करती है जबकि श्रीराम तथा लक्ष्मण की प्रत्यालीढ़ मुद्रायें और बालि, सुग्रीव की मल्लयुद्धरत मूर्तियाँ ऊर्ध्वगामी गति का संतुलन करती हैं। दोनों भाइयों के निकट एक शिशु वानर का अंकन किया गया है जो बालि के पैरों के बीच में बैठा है संभवतः यह अंगद है। मूर्ति में सुग्रीव की पहचान उसकी ग्रीवा में पहनी गजपुष्पी माला से होती है।

पांचवी पट्टिका में विभीषण का आगमन तथा समुद्र से मार्ग मांगने की घटनाओं का अंकन है। पट्टिका के आरम्भ में श्रीराम और लक्ष्मण, हनुमान को सीता के अनुसंधान हेतु भेजते हैं। इसके पश्चात विभीषण श्रीराम के सम्मुख नतमस्तक खड़े हैं और श्रीराम अभय प्रदान कर रहे हैं। पश्चात पुनः श्रीराम लक्ष्मण सहित अंकित हैं तथा उनके समक्ष मानवरूप में छत्र धारण किये समुद्रदेव तथा उनके प्रतिहारी अंकित हैं। मन्दिर के गर्भगृह की पीछे की भित्ति पर 5 कला पट्टिकाएँ हैं जिन पर सेतुबन्ध, श्रीराम और लक्ष्मण वानरों के मध्य, श्रीराम रावण युद्ध, नागपाश का आक्रमण तथा लक्ष्मण इन्द्रजीत का युद्ध अंकित है। इन पट्टिकाओं पर वानर यूथों, राक्षसों एवं रथों का अंकन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पहली पट्टिका में सेतुबन्ध का दृश्य अंकित है। वानरों का समूह शिलायें उठाकर चलता हुआ अंकित किया गया है। इनमें कुछ वानर एक ही लम्बी शिला को मिलकर उठाये हुए हैं। कुछ वानर स्वतन्त्र रूप से छोटी शिलायें उठाये हैं। इस दृश्य में विविध आकारों के छोटे-छोटे वानर, कुछ सिर पर पत्थर उठाये और कुछ कन्धे पर भार उठाये हुए हैं। इस रूपक में भी लम्बे तथा आड़े शिलापट्ट एवं वानरों की खड़ी आकृतियों में संतुलन उत्पन्न किया गया है। वानरों की सारी आकृतियाँ मानवाकृति के समान हैं। यहाँ वानरों की पूँछ अंकित की हुई नहीं है। अन्तर मात्र मुखाकृति को देख कर ही स्पष्ट हो जाता है। पट्टिका के अन्त में दो वानर बैठे हुए उत्कीर्ण हैं। संभवतः ये दोनों वानर सेना के इंजीनियर नल और नील हैं। इस दिशा में प्रतिरथ पर बनी पट्टिका पर सुग्रीव संभाषण का अंकन है। इसमें श्रीराम और लक्ष्मण सेना के मध्य में बैठे हैं। श्रीराम अपने कर में बाण लिए हुए वृक्ष के नीचे एक शिलाखण्ड पर सुखासन में उपस्थित हैं जबकि लक्ष्मण धरती पर बैठे हैं। श्रीराम के पार्श्व में दो वानर बैठे हैं। जिसमें से एक बड़े ध्यान से श्रीराम के साथ वार्ता में रत है। इनके पीछे वानरों का समूह खड़ा हुआ है, कुछ पेड़ की डाल पकड़े हैं कुछ पाषाण शिलाओं को कंधे पर लिये हैं। संभवतः ये वानर सैनिक छावनी के रक्षक हैं।

भद्रा भाग की मध्य पट्टिका में श्रीराम और रावण की सेना के युद्ध का दृश्य है। यह पट्टिका वानरों और राक्षसों के समूह से पूर्ण है। इस दृश्य में दो रथों का अंकन है इसमें एक में रावण, सुग्रीव की वानर सेना से युद्धरत है तो दूसरी ओर रथ में इन्द्रजीत मेघनाद, लक्ष्मण पर आक्रमण कर रहा है। यहाँ शिल्प में इन्द्रजीत रथ पर आरूढ़ है और लक्ष्मण की आकृति धरती पर स्थानक रूप में उत्कीर्ण है। इसी क्रम में चौथी पट्टिका पर नागपाश के आक्रमण की घटना का अंकन है। इस शिल्प में श्रीराम और लक्ष्मण वानर सेना के मध्य बैठे हैं तथा ऊपर की ओर से गरुड़ आकाश से प्रवेश कर रहे हैं। गरुड़ ने एक नाग को पकड़ा हुआ है और दूसरा पास में अंकित है। नागपाश में बंधे हुए धराशायी श्रीराम लक्ष्मण के अंकन के स्थान पर उन्हें आयुध रहित, परन्तु बैठा हुआ अंकित किया गया है। इसी क्रम में अन्तिम पट्टिका में पुनः सेना और राक्षसों के युद्ध का अंकन है। यहाँ लक्ष्मण प्रत्यालीढ़ स्थानक मुद्रा में रथ पर आरूढ़ राक्षस पर आक्रमण करते हुए अंकित किये गये है। राक्षस का सिर कट कर गिर गया है। रथ में घोड़े का आकार इतना छोटा है कि वह खच्चर सा प्रतीत होता। रथ का सारथी भी गिर रहा है व खच्चर के अगले पैर मुड़ गये हैं।

इसी क्रम में मन्दिर की उत्तर पूर्वी दिशा की पट्टिकाओं का अधिकांश भाग जीर्णोद्धार की क्रिया में दबा गया है परन्तु जो कुछ भी शेष है उनमें प्रथम पट्टिका पर वानर सेना तथा राक्षसों का भयानक युद्ध अंकित है जिसमें श्रीराम और लक्ष्मण को भी दर्शाया गया है। वानरदल वृक्षों की शाखाएँ और पाषाण खण्ड लिये आक्रामक मुद्रा में उत्कीर्ण है। इस पट्टिका में अत्यन्त विशद् रूप से युद्ध की लघु घटनाओं को अंकित किया है। इस दृश्य में श्रीराम अपने शरों का राक्षसों पर प्रहार करते हुए हैं, उनके पीछे लक्ष्मण भी है। एक दृश्य एक राक्षस वानर दल से युद्धरत है। एक वानर उसके शीर्षविहीन गले से लटका हुआ अंकित है, दो वानरों ने उसके पैर पकड़ रखे हैं। राक्षसों की पहचान उनके मुकुट, घुमावदार बाल, बड़े मुख, बाहर निकले नेत्र गोलक तथा तुन्दिल पेट से होती है।

अगला मूर्ति दृश्य लक्ष्मण की मूर्छा का है, श्रीराम उन्हें अपनी गोद में लिटाये एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। एक वानर ने अपनी गोद में लक्ष्मण के पैर रखे हैं तथा उन्हें गर्म करने का प्रयास कर रहा है। मूर्ति में श्रीराम के दुःख का पता उनकी हाथ पर सिर टिकाये हुए मुद्रा से होता है। श्रीराम के सम्मुख एक अन्य मानव शिल्प मूर्ति प्रणाम करते हुए अंकित है जो संभवतः लंका का सुषेण वैद्य है। एक वानर वृक्ष की डाल कंधे पर लिए हुए अंकित है जो संजीवनी लिए हुए हनुमान प्रतीत होते हैं।

तृत्तीय पट्टिका में जो यहाँ की भद्रा पर है श्रीराम और रावण का सम्मुख युद्ध है। इस शिल्प में श्रीराम व लक्ष्मण पैदल हैं लेकिन रावण रथ पर सवार है, रथ के पीछे दो राक्षस गदा धारण किये चलायमान मुद्रा में हैं। इसी क्रम में श्रीराम और लक्ष्मण के पीछे वानरों की विशाल सेना वृक्षों की डाल और पाषाण खण्ड लिये चल रही है। इस दिशा की चौथी पट्टिका में श्रीराम भी रथ पर हैं तथा वे रावण पर बाणों की वर्षा कर रहे हैं, जिससे रावण का शीश विछिन्न हो गया है। इस शिल्प में आमने-सामने दो रथ हैं। श्रीराम के अश्व ने उछलकर अपने अगले दो पैर प्रतिद्वन्दी अश्व के सिर पर रख दिये हैं। रावण के रथ का युद्ध में संतुलन बिगड़ा प्रतीत होता है। इस दृश्य में एक रीछ का अंकन, जाम्बवन्त एवं रीछों की सैनिक सहायता को इंगित करता है। अन्तिम पट्टिका का अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है, परन्तु लंका विजय का दृश्य यहाँ प्रस्तुत है। श्रीराम लक्ष्मण सुनसान नगर में प्रवेश कर रहे हैं। भवनों की खिड़कियाँ सूनी और आधी खुली हैं केवल एक खिड़की में एक स्त्री द्वार पर खड़ी है जो संभवतः सीता है।

राजस्थान के मन्दिरों में एक मात्र इस मन्दिर पर सम्पूर्ण रामायण का यह सबसे प्राचीनतम उदाहरण है जो वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। यह प्रतिहारकालीन शैली का प्रथम उदाहरण है। विद्वान पण्डित रामकरण आसोपा इस विवेच्य मन्दिर को 608 ई. से पूर्व का निर्मित मानते हैं।

सूत्रधार मण्डन के विवरण से साम्यता रखती श्रीराम की एक मूर्ति राजस्थान के चित्तौड़ स्थित विजय स्तम्भ की सातवीं मंजिल पर है। इसके नीचे 'श्रीराम' लेख भी अंकित है। यद्यपि इस मूर्ति के दोनों हाथ भग्न हैं तथापि बायें हाथ में धारण किए गये धनुष के कुछ अवशेषों के आधार पर इनके शर-चाप-धारी होने की संभावना व्यक्त की जा सकती है। यह मूर्ति एक छोटे पद्मपीठ पर खड़ी हुई किरीट मुकुट सहित सामान्य आभूषणों से विभूषित

है। इसके दाएँ-बाएँ पार्श्वों में क्रमशः एक उपासक व एक उपासिका की अंजलिमुद्रा में हाथ जोड़े अपेक्षाकृत छोटी आसन मूर्ति भी है। चित्तौड़गढ़ कुंभश्याम मन्दिर (7वीं सदी उत्तरार्ध) के गूढ़ मण्डप के वेदीबन्ध भाग पर सुन्दर अर्धस्तम्भों से निर्मित ताक में जटाजूट, कुण्डल, कण्ठहार तथा वनमाल से सज्जित श्रीराम एवं लक्ष्मण की स्थानक मुद्रा में मूर्ति का अंकन है। इस मूर्ति में दोनों भाइयों ने अपने दक्षिण कर में शर धारण कर रखा है तथा वामवर्ती कर जानु पर स्थित है। दोनों के मध्य भाग में एक वानर (संभवतः हनुमान) की मूर्ति भी है।

सीकर जिले के हर्ष पर्वत पर हर्षनाथ शिव मन्दिर प्रतिहार वंश (10वीं सदी) से सम्बन्धित है। इस मन्दिर में एक कला फलक महत्वपूर्ण है, इसमें श्रीराम व लक्ष्मण स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित हैं। इसमें दोनों मूर्तियों के जटाजूट, यज्ञोपवीत कर्ण कुण्डल तथा वनमाला का अंकन 10वीं सदी की कला के अनुरूप है। चूंकि पुराण और दूसरे धर्मग्रन्थ लक्ष्मण को प्रतिहारवंश से सम्बन्धित मानते हैं। संभवतः इस फलक में आगे की मूर्ति में एक कर में धनुष व दूसरे कर में तीर का अंकन तथा पीछे वाली मूर्ति में दायाँ कर अभय मुद्रा में एवं बायें कर में धनुष का अंकन है। इससे सिद्ध होता है कि लक्ष्मण को प्रतिहार के रूप में आगे अंकित किया गया है व श्रीराम आशीर्वाद की मुद्रा में हैं। सीकर राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय में 12वीं सदी की एक देव मूर्ति है जिसके कर और शीश भग्न हैं परन्तु उसके वाम पार्श्व में धनुष का अंकन है जो स्कन्ध तक धारण किया हुआ है। इस मूर्ति में देव कण्ठहार, मुक्तमाला, यज्ञोपवीत एवं केयूर से सज्जित हैं। कटिभाग में एक खड्ग का भी अंकन है। कुछ विद्वान इसे कामदेव की मूर्ति बताते हैं मूर्ति नियमें का कोई सबल पक्ष प्रस्तुत नहीं करते। यह भी सत्य है कि कामदेव की मूर्ति के साथ खड्ग का अंकन नहीं होता अतः इस मूर्ति के उक्त लक्षणों से यह श्रीराम की मूर्ति प्रतीत होती है। रानी की वाव (गुजरात) में श्रीराम की चतुर्बाहू मूर्ति उनके एक कर में तलवार धारण किये हुए है।

जैसलमेर दुर्ग (सोनार दुर्ग) के संग्रहालय में श्रीराम की एक ऐसी विचित्र मूर्ति प्रदर्शित है जिसमें उन्हें दाढ़ी और मूँछ के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ श्रीराम की छवि नवयुवक सुकुमार के रूप में है जो पर्यटकों में कौतूहल के भाव उत्पन्न करती है। ऐसा माना जाता है कि मूर्तिकार द्वारा इस मूर्ति को बनाने का उद्देश्य यह रहा होगा कि श्रीराम जब सीता की खोज में थे उस समय उनकी स्थिति ऐसी हुई होगी, जबकि दूसरा उद्देश्य यह भी हो सकता है कि श्रीराम को तत्कालीन राजपूत शासकों का स्वरूप दिया गया हो इसलिए उन्हें दाढ़ी मूँछ के रूप में मूर्तिकार ने दर्शाया गया होगा। यह मूर्ति क्षेत्रीय शिल्पियों ने जैसलमेर के महारावल को भेंट की थी क्योंकि उस क्षेत्र में जब किसी मन्दिर का निर्माण किया जाता था तब महारावल को एक उत्कृष्ट देवमूर्ति शिल्पियों द्वारा भेंट की जाती थी। यह मूर्ति 15वीं सदी की है। जैसलमेर के पुरातत्त्व संग्रहालय में एक अन्य श्रीराम की मूर्ति 15वीं सदी की है। यह काले पाषाण पर है, इसमें भी श्रीराम को दाढ़ी-मूँछ में शिल्पित किया गया है।

जयपुर में आमेर के जगत शिरोमणि मन्दिर के मेरु मण्डोवर वाले भाग में दक्षिण की ओर श्रीराम और सीता का अंकन है। इसमें श्रीराम स्थानक मुद्रा में हैं तथा वे अपने करों में धनुष व शर धारण किये हैं। वे तत्कालीन समय के प्रचलित आभूषणों से सज्जित हैं, उक्त मन्दिर 17वीं सदी का है। श्रीराम मूर्ति के वाम भाग में सीता का अंकन है जिन्होंने कर में सनाल पुष्प धारण किया हुआ है। आमेर में ही लक्ष्मीनारायण मन्दिर व केशव कल्याण मन्दिर में भी उक्त प्रकार से श्रीराम का सीता के साथ अंकन है। लक्ष्मीनारायण मन्दिर की यह मूर्ति अच्छी अवस्था में है, परन्तु केशव कल्याण मन्दिर की मूर्ति पर्याप्त भग्नावस्था में है।

राजस्थान के लगभग सभी कला केन्द्रों पर दशावतार से सम्बन्धित कला फलक प्राप्त होते हैं। इनमें श्रीराम का अन्य अवतारों सहित स्थानक मुद्रा में शिल्प उत्कीर्ण दिखाई देता है। वे धनुष और शर धारण किये होते हैं तथा वहाँ वे जटामुकुट से भी सज्जित होते हैं, परन्तु राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय भरतपुर में एक दशावतार फलक है जिसमें वे द्विहस्त में धनुष तथा शरधारी हैं लेकिन उनके दक्षिणवर्ती निम्न भाग में एक मानवाकृति का अंकन है।

चन्द्रसेल शिव मठ मन्दिर से प्राप्त द्वारशाखा के पेड्या भाग पर शर धनुषधारी द्वारपालों के अंकन व

राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय जैसलमेर में संग्रहीत एक स्वतन्त्र देव मूर्ति पर विचार करने पर यह भी संभावना होती है कि कतिपय इन स्थलों पर श्रीराम को समर्पित मन्दिरों का निर्माण हुआ होगा परन्तु इस सम्बन्ध में किसी भी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व राजस्थान प्रदेश की मूर्तिकला परम्परा का व्यापक विश्लेषण व अध्ययन किया जाना आवश्यक है, जिससे वास्तविक स्थिति का आकलन किया जा सके।

गुजरात में श्रीराम की सौराष्ट्र शैली में निर्मित 7वीं सदी ई. की एक मूर्ति जूनागढ़ जिले के कद्वार स्थान से अवाप्त हुई है। इसमें शरचापधारी श्रीराम द्विभंग मुद्रा में खड़े हैं। वे मुकुट, वनमाला, हार, यज्ञोपवीत से विभूषित हैं तथा उनके पैरों के निकट वानरमुखी हनुमान उपस्थित हैं। पुरातत्व की मान्यतानुसार श्रीराम की प्रारम्भिक मूर्तियाँ देवगढ़ के प्रसिद्ध दशावतार मंदिर में उत्कीर्ण हैं। इनमें वे धनुष बाण से युक्त हैं। यहाँ श्रीरामकथा के अनेक दृश्यों को उकेरा गया है। एलोरा गुफा के वृहत्तर कैलाश मंदिर तथा खजुराहो के मंदिरों में भी श्रीराम की मूर्तियों मिली हैं। खजुराहो के पार्श्वनाथ जैन मंदिर की भित्ति पर श्रीराम-सीता की एक सुन्दर और नयनाभिराम मूर्ति उत्कीर्ण है। इनके पास ही कपिमुख हनुमान भी उकेरे हुए हैं, जिनके शीश पर श्रीराम का एक हाथ पालित मुद्रा में अनुग्रह भाव से रखा है। यह मूर्ति भक्त और आराध्य के अन्तर्सम्बन्धों का आलौकिक मूर्त्यांकन है।

तुलनात्मक दृष्टि से श्रीराम की स्वतन्त्र मूर्तियाँ उत्तर की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय रही हैं। उत्तर भारत में श्रीराम की मूर्तियाँ जहाँ मुख्यतः विष्णु के एक अवतार के रूप में उत्कीर्ण हुईं, वहीं दक्षिण भारत में श्रीराम की स्वतन्त्र मूर्तियों का स्वरूप परिलक्षित होता है। कर्नाटक में श्रीराम का एक सुन्दर मंदिर हीरेमगलूर में स्थित हैं जिसे भारत में श्रीराम का सबसे प्राचीन मंदिर (867 ई.) माना जाता है। इस मंदिर की श्रीराममूर्ति के दोनों पार्श्वों में सीता और लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। दक्षिण में चोलकालीन कांस्य मूर्तियों में भी श्रीराम का मनोहारी अंकन है। श्रीराम की स्वतंत्र मूर्तियों के अलावा उनकी कथा के विविध प्रसंगों के उदाहरण दक्षिण भारत सहित मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ में काफी मिलते हैं।

इलाहाबाद के निकट शृंगवेरपुर में वनवासी श्रीराम-लक्ष्मण तथा सूर्पनखा आख्यान पर उत्कीर्ण एक फलक गुप्तकालीन है। छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल) में रायपुर जनपद के अन्तर्गत राजिम में श्रीराम का राजीवलोचन और सीरपुर में रामदेउल तथा लक्षणदेउल नामक श्रीराम विषयक फलक पूर्व मध्यकाल के हैं। इनमें पंचवटी में सूर्पनखा आख्यान व सीताहरण का मंदिर की भित्तियों पर अंकित है। ललितपुर के सिरोनखुर्द में प्राप्त श्रीराम की एक भग्न मूर्ति झांसी संग्रहालय में दर्शित है। लगभग 9वीं सदी की इस मूर्ति में श्रीराम का मुख्य आयुध धनुष स्पष्ट है। इलाहाबाद पुरातत्त्व संग्रहालय में 5वीं सदी का एक शिल्प श्रीराम के वनवास से वापस अयोध्या आने का है। इस फलक में लक्ष्मण धनुष बाण धारण किये हैं, उनके पास सीता है, सीता के निकट कपिमुख हनुमान हैं, उनके पास श्रीराम का सुन्दर अंकन है। श्रीराम के दोनों कर एक कपि के शीश पर अभयमुद्रा में हैं। मूर्ति शिल्प में सभी गतिचारी हैं तथा शिल्प पृष्ठ में वृक्ष, पुष्प का सुन्दर अंकन है। इलाहाबाद पुरातत्त्व संग्रहालय के प्रभारी राजेश कुमार मिश्र का मानना है कि शृंगवेरपुर के पुरातात्त्विक स्थल से प्राप्त यह मूर्ति शिल्प श्रीराम का उक्त विषयक एक मात्र और दुर्लभ अंकन है। उनके अनुसार इस शिल्प में लंका विजय के पश्चात श्रीराम की वापसी का दृश्य उकेरा गया है। वर्ष 1921 ई. में इस संग्रहालय की स्थापना करने वाले पं. ब्रजमोहन व्यास को यह कलाशिल्प शृंगवेरपुर क्षेत्र से प्राप्त हुआ था ।

गुजरात के अहमदाबाद से 135 किमी दूर प्राचीन राजधानी पाटण में राणीजी की बावड़ी (वापी) लगभग 800 से अधिक देवमूर्तियों के लिये जगत विख्यात है। इसका निर्माण रानी उदयमती ने अपने पति चालुक्य नरेश भीमदेव के काल में 1068 ई. के पश्चात करवाया था। इस वापी में एक पाषाण-फलक पर श्रीराम (रामावतार) की एक विचित्र मूर्ति है। द्विभंग मुद्रा में इसमें श्रीराम पूर्ण सौन्दर्य एवं गरिमा से विभूषित हैं तथा वे करण्ड मुकुट से सज्जित हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि देश में अधिकतर श्रीराम की मूर्तियों में दो ही कर (भुजा) दर्शाये जाते हैं परन्तु इस असाधारण विवेच्य मूर्ति में उनकी चार भुजाएँ दर्शायी गयी हैं। इसमें उनकी दो मुख्य

भुजाओं में तो धनुष बाण हैं तथा पृष्ठ की दो भुजाओं में तलवार और ढाल हैं। अतः इस अंकन के कारण यह मूर्ति भारतीय मूर्तिकला में सर्वाति दुर्लभ उदाहरण है। अग्निपुराण (49.696) में इस आशय के बारे में यद्यपि लिखा जरूर गया है परन्तु उसमें भुजा में ढाल के स्थान पर शंख होना निर्दिष्ट किया गया है। **रामश्चापि शरी खड़गी, शंखी वा द्विभुजः स्मृत।**

'हयसिरसा पंचतन्त्र' नामक ग्रन्थ में भी मूर्ति के दूसरे हाथों में चक्र और शंख को निर्दिष्ट किया गया है। श्रीराम की उक्त चतुभुर्जी मूर्ति के दायें बायें 8 वैष्णव अवतारों की लघु मूर्तियाँ हैं, जिनमें विष्णु अवतार नरसिंह, वामन, परशुराम, वासुदेव, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि आदि देखने में आते हैं। श्रीराम की इस दुर्लभ मूर्ति के तल पर शिल्पकार का नाम 'काकय' उत्कीर्ण किया हुआ है। श्रीराम की इस मूर्ति का माप 1.10 सेमी गुणा 00.40 सेमी है। दीवार में लगी होने से इसकी वास्तविक मोटाई का माप ज्ञात नहीं होता।

दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय में केरल संग्रहालय की कई काष्ठ कलाकृतियाँ हैं। इनमें से एक फलक में श्रीराम को धनुष लिये दिखाया गया है। काष्ठ मूर्ति में श्रीराम पूर्णरूप से बहुत से आभूषणों से सज्जित हैं। उनके शीश पर मुकुट है तथा उनके श्रीमुख की बनावट बहुत ही सजीव तथा आकर्षक है। इस काष्ठ फलक को कलाकार ने रंगों से काफी सुन्दर तरीके से संवारा है। इस मूर्ति को 'राम केरेला' के नाम से जाना गया है।

वृहत्तर भारत के प्राचीन पुरातात्त्विक स्थापत्य शिल्प में भी श्रीराम की कथा के दृश्यों की विशिष्ट छवि मिलती हैं। द्वितीय सदी के आसपास भरहुत की मूर्तिकला में एक आश्रम का दृश्य अंकित है। पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघम के अनुसार यह प्रयागराज स्थित भारद्वाज आश्रम या चित्रकूट स्थित अत्रि आश्रम है। इसमें श्रीराम, लक्ष्मण व सीता के साथ ऋषि के समक्ष खड़े हुए उत्कीर्ण हैं। इसी क्रम में पापनाथ मन्दिर, पट्टदकल, कर्नाटक में अंकित 7वीं सदी ईसवी के एक प्रस्तर फलक पर सेतुबंधन का चित्र अंकन ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय है। एलोरा के कैलाश मन्दिर में तो सम्पूर्ण रामायण ही फलक पर अंकित है। इसके साथ ही यहाँ यह भी उल्लेख आवश्यक होगा कि ऐसा माना जाता है कि दक्षिण भारत में श्रीराम से सम्बन्धित अभिलेख ज्ञात नहीं होते किन्तु पल्लव शासक नन्दीवर्मन का कासाकुडी ताम्र पत्र (752-53 ई.) में श्रीराम की लंका विजय का उल्लेख मिलता है और सातवीं सदी ई. के बाद तो पूरे देश भर में प्राचीन देवालयों में इस प्रकार के अंकन मिलने लगते हैं। इस क्रम में कर्नाटक के शिमोगा जिले के अमृतपुरा स्थित 11वीं-12वीं सदी के शिव मन्दिर, जो होयसलकाल में निर्मित हुआ था, यहाँ रामायण के लगभग सम्पूर्ण कथानक बाह्य भित्तियों पर नामांकन के साथ उत्कीर्ण हैं।

हिमाचल प्रदेश स्थित मण्डी के उपमण्डल सरकाघाट की घनालग पंचायत में वर्ष 2018 में एक खुदाई के दौरान श्रीराम की एक मूर्ति मिली थी, जिसके एक कर में धनुष व दूसरे में बाण का स्पष्ट अंकन है। मूर्ति एक शिला फलक पर उत्कीर्ण है। कला की दृष्टि से यह मूर्ति 18वीं सदी की है। यह संभावना जताई जा रही है कि विवेच्य मूर्ति मण्डी रियासत के राजाओं के समय निर्मित की गई होगी। मूर्ति में श्रीराम के शीश पर अलंकृत गोल टोपी है जिस पर स्थानीय कला का प्रभाव है। वे यज्ञोपवीत धारण किये हैं तथा कटि प्रदेश से घुटनों तक उनकी माला पर भी स्थानीय कला का प्रभाव स्पष्ट है।

तमिलनाडु के नागपट्टिनम जिले में स्थित विजयनगर के एक मन्दिर में स्थापित 15वीं सदी की श्रीराम, लक्ष्मण और सीता की सुन्दर धातु मूर्तियों को मूर्ति चोरों ने 1978 ई. में चुरा लिया था। ये मूर्तियाँ लन्दन में थीं परन्तु भारत सरकार के प्रयास से वर्ष 2014 में ये वापस भारत आ गयी हैं और अभी संस्कृति एवं पर्यटन मंत्रालय नई दिल्ली के पास हैं। वृहत्तर भारत के कम्बोडिया के 'टावर ऑव द गोल्डन हार्न' (जो अब 'पुओन' नाम से जाना जाता है) के सबसे ऊँचे प्रकोष्ठ की दीवारों पर श्रीरामकथा के दृश्यों के अंकन वाले उत्कीर्ण पट्ट हैं। इनमें विवेच्य श्रीराम विषयक चित्रों में उल्लेखनीय श्रीराम-लक्ष्मण की सुग्रीव के साथ भेंट, बालि-सुग्रीव का द्वन्द युद्ध, हनुमान के कन्धों पर बैठे श्रीराम के समक्ष रावण जो सिंहों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर सवार है, सीता की अग्नि परीक्षा और श्रीराम का राज्याभिषेक मुख्य हैं। कम्बोडिया के अंकोरवाट में जो मूलतः विष्णु मन्दिर था,अनेक शिलायें हैं जिनमें

रामायण के दृश्य अंकित हैं यथा श्रीराम द्वारा कबन्ध का वध, श्रीराम-सुग्रीव मैत्री, सुग्रीव-बालि युद्ध, हनुमान का लंका में सीता को पाना, लंका की रणभूमि तथा पुष्पक विमान में श्रीराम का अयोध्या लौटना। इनमें से प्रथम 6 मूर्ति-अंकन के दृश्य मध्य जावा के नवीं सदी के मंदिर प्राम्बनन में भी हैं। ये मूर्तियाँ शिल्पकला की दृष्टि से निःसंदेह श्रेष्ठतर हैं।

राजकीय संग्रहालय चेन्नई में सीता, श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान की कांस्य मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। ये मूर्तियाँ चोल कालीन (850-1100 ई. के मध्य की) हैं तथा इन्हें वडक्कुपणयूर (तंजौर) से प्राप्त किया गया था। इसी प्रकार भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में सीता एवं श्रीराम की कांस्य लघु मूर्ति प्रदर्शित है जो 18वीं सदी की है। यह मूर्ति 3.5 सेमी ऊंची और 1.8 सेमी चौड़ी है तथा स्वर्ण से निर्मित है। इस पर अत्यन्त कीमती पत्थर लगाकर इसे सजाया गया है। यह तंजौर कला का प्रसिद्ध उदाहरण है। वर्तमान में यह राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में प्रदर्शित है। इसी विभाग में पाषाण फलक पर पांचवीं सदी की श्रीराम के द्वारा अहिल्या उद्धार की मूर्ति भी प्रदर्शित है। वहीं देवगढ़ (झांसी) से प्राप्त इसी सदी का श्रीराम के समक्ष लक्ष्मण द्वारा शूर्पनखा के विरूपीकरण का पाषाण फलक भी प्रदर्शित है। इस मूर्ति का प्रदर्शन दिल्ली में जनवरी 2018 ई. में किया गया था।

सामान्य रामभक्त या रामकथा वाचक श्रीराम के ऐसे पुराशिल्प प्रमाणों से अभी पूर्णरुपेण अनभिज्ञ हैं। भारतीय इतिहास में मध्य युग के पूर्व भी छठी सदी ई. में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जन मानस में आराध्य के रूप में प्रतिष्ठित होकर मूर्ति पूजा की धार्मिक प्रवृत्तियों में समाविष्ट हो गये थे। इसकी चर्चा 11वीं सदी में भारत आये मुस्लिम इतिहासकार अलबरुनी ने भी की है। उसने स्पष्ट लिखा कि 'यदि आकृति दशरथ के पुत्र राम की प्रतिमा (बनाने) की है तो उसकी लम्बाई सामान्य 108 अंगुल की रखे। हिन्दू अपनी मूर्तियों का सम्मान उस सामग्री की वजह से नहीं करते जिससे वे बनाई गयी है, बल्कि उन लोगों के कारण करते है जिन्होंने उन्हें प्रतिष्ठित किया है।'

उसने आगे श्रीराम की मूर्ति के साथ-साथ उनके द्वारा स्थापित रामेश्वरम, सेतुबन्ध तथा वानरों की भी चर्चा करते हुए लिखा कि 'रामशेर (रामेश्वर) सरनदीप के सामने है। श्रीराम के रामशेर और सेतुबन्ध के बीच 2 फरसख की दूरी है। यह समुद्र पर बना पुल है जो दशरथ पुत्र राम की नहर है जिसे उसने महाद्वीप से लेकर लंका के दुर्ग तक बनवाया था। जो सेतुबन्ध से पूर्व की ओर सोलह फरसख की दूरी पर है। इस समय इसमें छितरे हुए पर्वत हैं जिनके बीच में समुद्र बहता है। किहकिद (किष्किन्धा) वानरों का पर्वत है। वहाँ वानरों का राजा जंगली व लड़ाकू भी है। हर रोज वह झाड़ी से निकलकर अपने वानर समूह के साथ आता है और वे सब अपने-अपने आसनों पर जो उनके लिए विशेष रूप से बनाए गए हैं, बैठ जाते हैं। लोक विश्वास है कि वे मानव जाति के ही थे लेकिन उन्होंने उस समय श्रीराम की सहायता की थी जब वे राक्षसों से युद्ध कर रहे थे तो उन्हें वानर जाति में बदल दिया गया था। मान्यता है कि श्रीराम ने उन्हें ये गांव जागीर में दिये थे। यदि कोई मनुष्य उन्हें रामायण सुनाता है और राम के मंत्रादि का उच्चारण करता है तो उसे वे शांतिपूर्वक सुनते है।'

9वीं-10वीं सदी के आसपास रामायण संस्कृति एवं साहित्य का विस्तार दक्षिण भारत में भी प्रारम्भ हुआ और (बड़े गोपुरम वाले) राम मंदिरों का निर्माण किया गया। विजयनगर की स्थापना और विस्तार से श्रीरामकथा की घटनाओं ने शिल्पांकन के क्षेत्र में नवीन आयाम स्थापित हुए और साथ में महाभारत के भी दृश्य उकेरे गये। गुप्तकाल की अवनति में विशेषकर कर्मकाण्डों का बड़ा योगदान रहा तथा इस कृत्य ने रामायण साहित्य में अंधविश्वासों का जंजाल रच डाला, जहाँ मूर्तिपूजा पर जरूरत से ज्यादा जोर देने के कारण जनता दिग्भ्रमित हो गयी। इस दिग्भ्रमित संक्रमण काल में श्रीराम के साहित्य की उपयोगिता से सभी को अवगत कराने वाले संतवर्ग का उत्कर्ष हुआ। संत रामानन्द, संत कबीर, संत पीपाजी जैसे अनेक सन्तों ने व्यक्तिपूजा के स्थान पर महापुरुषों के आदर्शों का विश्लेषण कर भारतीय समाज में उनकी उपादेयता से सम्बन्धित साहित्य, वाणियों का सृजन किया और इससे श्रीराम के साहित्य का लोकोपयोगी पक्ष उभर कर आया जिसमें जाति तथा ऊंच-नीच के बन्धन शिथिल हुए और श्रीराम के मर्यादित जीवन-आदर्श मानवीय समानता के आधार बने।

प्राचीन मुद्राओं में श्रीराम

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में अनेक देवी देवताओं को मुद्राओं, चित्रों एवं मूर्तियों में यहाँ के नरेशों ने अपने-अपने काल में खूब उत्कीर्ण कर प्रचारित किया परन्तु भगवान श्री राम का मुद्राओं में अंकन बहुत ही कम मिलता है। इसका कारण यह भी है कि श्रीकृष्ण की मूर्तियों के उत्कीर्णन उनकी लीलाओं के कारण एवं वैष्णवों में विष्णु व उनके विविध अवतारों की पूजा परम्परा के कारण राजमहलों से लेकर सामान्यजन तक काफी रहा। शैवमत में शिव के लिंग तथा देव मूर्ति में उनके गणों सहित अंकन देखने को मिलता है, वहीं शाक्तमत में भी विभिन्न देवी शक्ति का ऐसा ही प्रभाव देखने को मिलता है।

इन सभी में श्रीराम का व्यक्तित्व मूलतः मयार्दा, संस्कारों से बंधा रहने के कारण उनके कार्यों व कथाओं का विस्तार जन-जन में महात्मा तुलसीदास की रामचरितमानस से हुआ जो भारतीय भूमण्डल की ग्राम चौपालों तक पहुंची। वाल्मीकि रामायण को जन सामान्य में प्राचीनकाल से लेकर अब तक वह स्थान न मिल पाया जो कृष्णलीला या वैष्णव भागवत को मिला। श्रीराम की लीला में जहाँ आदर्श, संस्कार और मर्यादा के प्रतिमान स्थापित हैं वहाँ कृष्णलीला में रास, रंग, वैभव, शृंगार की अधिकता को जन सामान्य ने अधिक अपनाया। साहित्य के विद्वानों ने भी इस विषय पर विश्लेषण तो खूब किया परन्तु वे इस विषय में श्रीराम के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर अधिक कार्य नहीं कर पाये। प्रस्तुत अध्याय में हम भारतीय जन मानस में राष्ट्र के मंगलनायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के व्यक्तित्व को भारत की प्राचीन मुद्राओं में देखने का प्रयास करेंगे।

श्रीराम का भारतीय प्राचीन मुद्राओं में अधिकृत रूप से अंकन प्राचीन और मध्ययुगीन शासकों की प्रचलित मुद्राओं से मिलता है जो जनभेद भी समाप्त करता है और उदारवादी दृष्टिकोण का भी परिचय देता है। प्रख्यात मुद्रा विशेषज्ञ डॉ. शशिकान्त भट्ट (इन्दौर) और मुद्रा-विज्ञानी डॉ. ठाकुर प्रसाद वर्मा (वाराणसी) के शोध का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि मुगल सम्राट अकबर वह प्रथम शासक था जिसने अपने शासनकाल के (अपने राज्यारोहण के 50वें वर्ष) अन्तिम वर्षो में भगवान राम की 'रामसीय' प्रकार की स्वर्ण और रजत की न केवल मुद्राएँ चलवायीं अपितु उसने रामायण का फारसी में अनुवाद करवाकर उसे चित्रांकित रूप में भी उभार कर श्रीराम के महान जीवन आदर्शों को जन-जन में अनुकरणीय बनाने का स्तुत्य प्रयास किया।

प्रख्यात कला– इतिहासकार राय आनन्दकृष्ण के अनुसार मुगल सम्राट अकबर द्वारा पहली बार प्रचलित भगवान श्रीराम की ये मुद्राएँ उन्हें (श्रीराम को) विश्व वन्दनीय महापुरुष होने का, मुद्राशास्त्रीय अकाट्य प्रमाण है। अकबर द्वारा प्रचलित श्रीराम की ये मुद्राएँ इस बात का भी प्रमाण हैं कि इनके प्रचलन से अकबर ने हिन्दू मुस्लिम का भेद समाप्त कर अपनी उदारता का प्रामाणिक परिचय दिया था। अकबर ने सन 1604-05 ई. में अपनी गोल स्वर्ण व रजत धातु की मुद्राएँ जारी की जिनके अग्रभाग (Obverse) पर धनुर्धारी श्रीराम सीता के साथ खड़े हुए हैं। उसके शीर्ष भाग में नागरी लिपि में 'श्रीराम सीय' लेख का अंकन है तथा पृष्ठभाग (Reverse) में फारसी भाषा में 50वां 'इलाही' (अर्थात उसके राज्यारोहण का 50वां वर्ष) व 'अमरदाद' (अर्थात महिना) शब्द अंकित है। अकबर द्वारा जारी इस मुद्रा को 'रामसीय' प्रकार की मुद्रा नाम दिया गया और रामसीता को पुरोभाग पर प्रमुखता लिये अंकित किया गया जो सदैव मुगल शासकों के लिये केवल 'कलमा-शरीफ' अंकित किये जाने के लिये ही सुरक्षित समझा जाता रहा। रामसीय प्रकार की इस मुद्रा से यह धारणा फिर पुष्ट हो जाती है कि अकबर ने श्रीराम-सीता की आकृति को मुख्य पुरोभाग पर स्थान देकर उनकी महानतम ईश्वरीय महत्ता को स्वीकार किया था।

मुद्रा विशेषज्ञ ठाकुर प्रसाद वर्मा के अनुसार रामसीय प्रकार की मुद्राएँ 1994 ई. तक मात्र तीन ही प्रकाश में आ पायी थी। इनमें से प्रथम चांदी की अठन्नी मुद्रा लखनऊ के जे.के. अग्रवाल को प्राप्त हुयी थी और वर्तमान में यह मुद्रा भारत कला भवन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संग्रहालय में प्रदर्शित है। यह रजत मुद्रा 81 ग्रेन भार की है 0.75 पुरोभाग में बिन्दुयुक्त वृत्त के मध्य में एक पुरुष आकृति है जिसके बायें हाथ में धनुष है। इसके पीछे एक नारी आकृति है, दोनों ही चलते हुए हैं। धनुर्धर के

शीश पर राजमुकुट, घुटनों से नीचे तक जामा तथा पटका है जिसके दोनों सिरे आगे पीछे लटकते हुए हैं। उनकी पीठ पर बाणों से युक्त तरकश है। जबकि स्त्री के दाहिने कर में एक पुष्प गुच्छ का अंकन है। उनके बायें कर में भी पुष्प गुच्छ है। वह तंग चोली व ढीला लहंगा धारण किये हुए है जो पैरों के थोड़ा ऊपर तक है। दोनों आकृतियों के शीश के मध्य (ऊपर) नागरी लिपि में रामसी (य) अंकित है। इस मुद्रा के पृष्ठ भाग के एक वृत्त में लता वल्लरी युक्त पृष्ठभूमि में 'इलाही अमरदाद' उत्कीर्ण है।

सूत्रों के अनुसार रामसीय प्रकार की एक अन्य मुद्रा केबिन डे फ्रांस संग्रहालय में प्रदर्शित है। यह स्वर्ण धातु से निर्मित है, परन्तु इसके आकार का माप ज्ञात नहीं हो पाया। इसके पुरोभाग में बिन्दु युक्त घेरे में दो आकृतियों के ऊपर नागरी लिपि में 'रामसीय' शब्द स्पष्ट है। जबकि पृष्ठ भाग में अरबी भाषा में' 50 इलाही फरवरदीन को पुष्पलताओं के मध्य अलंकृत कर उत्कीर्ण किया गया है।

रामसीय प्रकार की एक अन्य स्वर्ण मुद्रा ब्रिटिश संग्रहालय लन्दन में प्रदर्शित है जिसका वजन 74.00 ग्रेन तथा आकार 0.8 है। इस वृत्ताकार मुद्रा के पुरोभाग में बिन्दु युक्त वृत्त में दो आकृतियाँ हैं। एक पुरुष तीन कंगूरे वाला मुकुट धारण किये है। वह अपने दो हाथों में क्रमशः धनुष और बाण धारण किये है जबकि उनके निकट एक स्त्री अपने मुख पर घूंघट डाले हुए खड़ी है। इतिहाकार इसे रामसीय प्रकार की मुद्रा निर्विवाद रूप में मान चुके है। इस मुद्रा के पृष्ठ भाग में अरबी में पूर्वोल्लेखित मुद्रा के पृष्ठ भाग की भांति '50 इलाही फरवरदीन' उत्कीर्ण है।

रामसीय प्रकार की उक्त मुद्राओं के सूक्ष्म अध्ययन द्वारा यह बात हमारे समक्ष आती है कि उक्त मुद्राओं में स्वर्ण मुद्रा के पुरोभाग पर राम को धोती, उत्तरीय तथा सीता को चोली व साड़ी पहने उत्कीर्ण किया है जो वह शुद्ध भारतीय पारम्परिक होती है परन्तु रजत मुद्रा में रामसीता के वस्त्र मध्ययुगीन भारतीय परम्परा के स्वरूप में हैं। इन मुद्राओं में सीता को चूड़ी पहने दर्शाया गया है। वहीं राम के शीश पर मुकुट इस काल के हिन्दू देवों के शीश पर उत्कीर्ण किये जाने वाले मुकुट की भांति है। इनमें लन्दन और फ्रांस में प्रदर्शित रामसीय मुद्राओं की पहचान सर्वप्रथम क्रमशः सन 1892 ई. में स्टेनली लेनपूल ने की तथा उसके पश्चात आर.बी. ह्वाइटहेड ने की। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने भारतकला भवन में चांदी की रामसीय अठन्नी मुद्रा को वर्णित किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा कि-'रामसीय' प्रकार की स्वर्ण मुद्रा वास्तव में अति विरल मुद्रा है लेकिन चांदी में यह मुद्रा तो अपनी तरह की अकेली ही है।' इस प्रकार अकबर द्वारा चलायी गई इन दुर्लभ मुद्राओं के बारे में लेनपूल ने सत्य ही लिखा कि-'यदि अकबर के बाद उसके कट्टर प्रतिक्रियावादी प्रपौत्र औरंगजेब ने उसकी नीति को न उलटा होता तो भारतीय संस्कृति का इतिहास और उसका स्वरूप ही कुछ और होता।

विगत वर्षो में श्रीराम विषयक कुछ अन्य मुद्राओं की खोज भी मुद्राशास्त्र के विद्वानों द्वारा की गई है, जिनसे यह प्रमाणित हुआ कि अकबर से भी पूर्व भारत में श्रीराम विषयक मुद्राएँ प्रचलित थी। एक विश्वसनीय रिपोर्ट के आधार पर ज्ञात हुआ है कि कोटा के मुद्रा विशेषज्ञ शैलेश जैन का कहना है कि कुषाण वंश के एक प्रसिद्ध शासक हुविष्क ने अपने काल में श्रीराम की ताम्र धातु की मुद्रा का प्रचलन किया था जिसमें उसने श्रीराम का अंकन करवाया था। इस मुद्रा में श्रीराम धनुष के अंकन के साथ है। इस मुद्रा के अग्र भाग पर गज एवं सवार तथा पृष्ठ भाग पर श्रीराम का अंकन है एवं वे अपने दोनों करों में क्रमशः तीर तथा धनुष धारण किये हैं। जैन के अनुसार मौर्य काल में पंचमार्क मुद्रा का प्रचलन था जिन पर शासक धातु के टुकड़े पर ही अपने शासन की छाप लगाकर मुद्रा का रूप देते थे। उनके अनुसार ऐसी मुद्राओं पर तीन आकृतियाँ भी दिखायी देती हैं जो श्रीराम, लक्ष्मण व सीता ही हैं। इसके पश्चात ताम्र और रजत की मुद्राओं पर भी श्रीराम का अंकन शासकों ने किया। वहीं अनेक शासकों ने तो स्वर्ण की मुद्रा पर भी श्रीराम का अंकन किया था। जैन के अनुसार मध्यकाल में 10वीं से 15वीं सदी के मध्य दक्षिण भारत के अनेक शासकों ने श्रीराम अंकित मुद्रा प्रचलित की थी। इनमें उत्तरी कर्नाटक के कदम्ब साम्राज्य, तंजौर के नायक, विजय नगर साम्राज्य, होयसल, शिवगंगा व मदुरई के नायकों ने भी श्रीराम अंकित मुद्रा प्रचलित की थी। इसी प्रकार 7वीं सदी के आस-पास बंगाल के शासक समताता और मैनामती ने भी श्रीराम

की धनुषधारी स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया था।

शैलेश जैन ने मालवा के देवास राज्य के सिक्कों पर शोध की थी जिन पर 'श्रीराम' का अंकन हुआ है। उनका कहना है कि राजस्थान में अजमेर के चौहानवंश के नरेश बीसलदेव ने भी अपनी स्वर्ण मुद्रा पर श्रीराम का चित्र अंकित करवाया था। यह मुद्रा 12वीं सदी के आस-पास प्रचलित हुई थी।

चन्द्रपुर महाराष्ट्र के इतिहास अनुसंधानकर्ता अशोक सिंह ठाकुर की रिपोर्ट के अनुसार उनके मुद्रा संग्रह में चौहान राजवंश के शासक विग्रहदेव चतुर्थ (12वीं सदी) की 4.02 ग्राम की दुर्लभ स्वर्ण मुद्रा है। इस मुद्रा में एक ओर श्रीराम का चित्र अंकित है जिसमें उनके एक कर में धनुष तो दूसरे कर में बाण का अंकन है। साथ ही इस पर 'श्रीराम' भी लिखा है। मुद्रा पर पुष्पों की सज्जा व कमल पुष्प का अंकन है। मुद्रा के दूसरे भाग पर देवनागरी में तीन पंक्तियाँ है जिनमें 'श्रीमद् विग्र/ह राजदे/व' अंकित है। ठाकुर के अनुसार उन्हें यह दुर्लभ मुद्रा राजस्थान से प्राप्त हुई थी।

इन्दौर के मुद्रा संग्रह करने वाले प्रो. डी.एल. मीणा का कहना है कि एक मुद्रा उनके संग्रह में है। यह अण्डाकार मुद्रा शुंगकाल की है जो 4.15 ग्राम की है तथा प्रोटीन धातु (लेड, टिन और कॉपर) की है। इस पर श्रीराम, लक्ष्मण व सीता का वनगमन का दृश्य है। यह अपने प्रकार की एक मात्र मुद्रा है। इस मुद्रा पर मुद्रा विशेषज्ञ डॉ. देवेन्द्र हाड़ा ने शोध पत्र भी लिखा है। उनके अनुसार यह मुद्रा ईसा पूर्व दूसरी सदी की है तथा इस पर वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड के दृश्य का अंकन है।

राजस्थान पुरातत्त्व विभाग के मुद्रा विशेषज्ञ जफरउल्ला खां की एक रिपोर्ट के अनुसार राजस्थान के सीकर जिले में पंचमार्क मुद्राएँ प्राप्त हुई थी। उत्खनन का स्थान उक्त जिले का गुरारा नामक स्थान था जहाँ 11 जून 1998 ई. को विभाग द्वारा उत्खनन कराया गया था उसमें प्राप्त मौर्यकालीन (ई. पू. तीसरी शताब्दी) पंचमार्क मुद्रा की संख्या 2744 थी इनमें से 61 मुद्राओं पर तीन मानव आकृतियों का अंकन है। इन मानव आकृतियों का सूक्ष्म अध्ययन करने के पश्चात मुद्राशास्त्रियों का यह मत रहा कि इन मुद्राओं पर बायीं ओर क्रमशः सीता, श्रीराम व लक्ष्मण का अंकन हुआ है। इस क्रम में ब्रिटिश पुरातत्त्वेत्ता सर जान एलन ने अपने एक शोध पत्र में इन्हें 'श्री मेन' लिखा डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्ता ने इन मुद्राओं की आकृतियों को माना है श्री मेन नहीं अपितु इनमें दो पुरुष व एक महिला है। प्रथम दो पुरुष की आकृतियों में शीश पर केवल एक-एक जूड़ा बंधा है जबकि तीसरी आकृति जो एक महिला की है उसके शीश पर दो चोटियाँ और तीन जूड़े बंधे हुए हैं। इन सभी 61 मुद्राओं पर तीसरी महिला आकृति का प्रत्येक मुद्रा पर बायीं ओर ही वाल्मीकि रामायण अंकन से पुष्टि है– 'दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा, पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम्।'

जफरउल्ला खां का मानना है कि विवेच्य स्थल से प्राप्त उक्त 61 मुद्राओं पर सूर्य का अंकन नहीं है, सूर्य के स्थान पर श्रीराम का अंकन है, क्योंकि श्रीराम स्वयं सूर्यवंशी थे इसलिये सूर्य का अंकन इन मुद्राओं पर नहीं किया गया। उन्होंने 'प्राचीन सिक्कों पर भारतीय धार्मिक प्रतीकों के चिह्न 'नाम से एक विस्तृत शोध-पत्र भारतीय मुद्रा परिषद् के 85वें वार्षिक अधिवेशन में जब प्रस्तुत किया तब देश-विदेश के मुद्राशास्त्रियों में हलचल मच गई थी और भारतीय मुद्रा विभाग की प्रमाणिक पुस्तक में उनके इस अभिनव शोध को स्थान भी मिला था।

भारत में विगत 200 वर्षो में कई प्रदेशों में श्रीराम व श्रीहनुमान के अंकन वाले कई सिक्के श्रद्धावश टंकित किये गये जिन्हें 'रामटका' नाम से जाना गया। भक्तों ने इन्हें अपने पूजागृहों में रखा। इनके अग्रभाग के मध्य में सिंहासन पर छत्र के नीचे श्रीराम व सीताजी बिराजे हुए हैं तथा उनके बायें लक्ष्मण व दायें भरत व शत्रुघ्न खड़े है। श्रीराम-सीता के सिंहासन के नीचे सेवारत श्री हनुमान बैठे हैं। एक टके के पृष्ठ भाग पर धनुर्धारी श्रीराम व सीता जी खड़े हुए हैं व वृत्ताकार नागरी लिपि में एक अस्पष्ट लेख व संवत 1940 (सन् 1883 ई.) टंकित है।

बिहार और बंगाल की 'रामटका' मुद्राओं में वहाँ की परम्परानुसार श्रीराम के साथ श्री जगन्नाथ को भी दर्शाया गया है। इस टके के अग्रभाग पर सिंहासन पर छत्र के नीचे श्रीराम व सीता जी विराजित है एवं उनके बायें लक्ष्मण व दायें भरत व शत्रुघ्न खड़े हुए हैं। सिंहासन के नीचे सेवारत बैठे हनुमान टंकित हैं। इस टके के पृष्ठ भाग पर

मंदिर में विराजित श्री जगन्नाथ, बहन सुभद्रा व श्री बलराम हैं तथा नागरी लिपि में 'श्री श्री जगन्नाथ स्वामी' टंकित है। ये रामटका अलग-अलग धातुओं में अलग-अलग धार्मिक स्थलों में टंकित होकर प्रसारित हुए। इनमें राम दरबार वाले टके अयोध्या के हैं तथा श्री जगन्नाथ जी वाले दक्षिण-पूर्व क्षेत्र के हैं। कुछ और रामटका भी मिले हैं जिन पर डॉ. मेजर महेश गुप्ता ने प्रकाश डाला है। चांदी के रामटका के अग्रभाग में पूर्व की भांति श्रीराम-सीता सिंहासनारूढ़ हैं परन्तु उनके पास लक्ष्मण भी विराजमान हैं। हनुमान ने अपने दोनों हाथों से छत्र को पकड़ रखा है। इसके चारों ओर देवनागरी में अस्पष्ट सा कुछ लिखा हुआ है। इसके पृष्ठ भाग में श्रीराम-लक्ष्मण सामने देखते हुए खड़े हैं। वे अपने बायें हाथ में तीर तथा दायें कन्धे पर कमान धारण किये हैं। परन्तु इन आयुधों के साथ ये दोनों भाई तलवार और ढाल भी धारण किये हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य होगा कि ये दोनों आयुध धारण किये हुए रामटके बहुत ही कम मात्रा में दिखायी दिये हैं। इसमें चारों ओर देवनागरी में अस्पष्ट अक्षरों में 'रामलक्ष्मण जनक जपलक हनमनक' टंकित किया हुआ है।

रजत के एक रामटके के अग्रभाग में श्रीराम-सीता सिंहासन पर विराजमान है। इसमें सीता हाथ जोड़े, गर्दन झुकाये श्रीराम को नमन कर रही हैं और श्रीराम अपने बायें हाथ को उठाते हुए उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। इस टके में लक्ष्मण छत्र को पकड़े हुए श्रीराम के बायीं ओर खड़े हैं तथा दायीं ओर हनुमान हाथ जोड़े खड़े हैं। नीचे 'राम सात (सीता)' टंकित किया हुआ है। पृष्ठ भाग में हवा में उड़ते हुए हनुमान जी को सूर्य को पकड़ते हुए दिखाया गया है। उनके नीचे पेड़ पौधे, और पहाड़ का अंकन है तथा उनके ऊपर 'हमान' (हनुमान) टंकित है। पीतल के एक अन्य रामटका के अग्रभाग में 9 खानों 9 अंक 1 से 9 तक अंकित हैं। इनका प्रत्येक कोण से जोड़ 15 आता है। इसके पृष्ठभाग में श्रीराम दरबार का पूर्ण अंकन है। इसमें श्रीराम सीता सिंहासन पर विराजमान हैं तथा उन पर छत्र है। इनके बायीं ओर लक्ष्मण तथा दायीं ओर भरत शत्रुघ्न हैं। हनुमान नीचे हाथ जोड़े बैठे हैं। एक अन्य पीतल एवं चांदी का पत्र चढ़ा रामटका भी उल्लेखनीय है। इसके अग्रभाग में पूर्व की भांति राम दरबार का चित्र है तथा पृष्ठ भाग में हनुमान जी को खड़ी अवस्था में हवा में खड़े दर्शाया है। उनके पांवों के नीचे वृक्ष दिख रहे हैं। उनके दायें हाथ में गदा व बायें हाथ में पर्वत खण्ड है। उनके शीश पर राजसी मुकुट है तथा उनके चारों और देवनागरी में 'राजा रामसत लछमनक हनमन ज' (राजा राम सीता लक्ष्मण हनुमान की जय) अंकित है।

पीतल का एक और रामटका भी इसलिये उल्लेखनीय है कि इसमें पूर्व में विवेचित जय जगन्नाथ की भांति महादेव शिव का भी अंकन है। इस टके के अग्रभाग में चतुर्भुज शिव बाघ के चर्म पर पालथी मार कर विराजित हैं। उनके दायें हाथ में त्रिशूल, बायें हाथ में डमरू तथा अन्य दो हाथ हृदय पर हैं। उनके शीश की जटा से गंगा निकल रही है। उनकी ग्रीवा में सर्प एवं मस्तक पर तृतीय नेत्र है। इस टंकन में नागरी भाषा में 'शिवाय नमः' जैसे अस्पष्ट शब्द हैं जबकि पृष्ठ भाग में पूर्व की भांति श्रीराम दरबार का चित्र अंकित है। ये रामटका आज भी अनेक आस्थावादी हिन्दू परिवारों के पूजा गृहों में रखे हुए मिलते हैं।

इतिहासकार एवं वरिष्ठ पत्रकार कुमार गुंजन अग्रवाल द्वारा दी गयी जानकारी के अनुसार भारतीय आध्यात्मिक गुरू महर्षि महेश योगी ने 7 अक्टूबर सन् 2000 ई. को अमेरिका के आयोवा नामक राज्य में महर्षि वैदिक सीटी राजधानी के रूप में स्थापित की थी। उन्होंने यहां के राष्ट्रगान के रूप में भगवद्गीता को प्रतिष्ठापित किया था। इस राज्य के शासक महाराजाधिराज राजा राम कहे जाते हैं और वर्तमान में प्रोफेसर टोनी अबू नाडेर यहां के प्रशासक हैं। यहां की रामराज्य मुद्रा राम को नीदरलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के आयोवा राज्य में कानूनी मान्यता प्राप्त है। इस मुद्रा में 1, 5 और 10 के नोट हैं। इस नोट मुद्राओं में एक ओर देवनागरी लिपि में विश्व शांति राष्ट्र सहित मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का सुन्दर आवक्ष चित्र और 18 लिपियों में राम मुद्रित हैं। उक्त चित्र के नीचे देवनागरी में राजा राम-राम ब्रह्म परमारथ रूपा छपा है। इस नोट के द्वितीय ओर कल्पवृक्ष, कामधेनु तथा 'विश्व शांति राष्ट्र' के ध्वज का चित्र हैं एवं देवनागरी में राम राज्य मुद्रा और महर्षि वैदिक प्रशासन रामराज्य का अंकन है। इन मुद्राओं को वहां के

केंद्रीय बैंक ने वर्ष 2001 ई. में जारी किया था। सूत्रों के अनुसार 35 अमेरिकी राज्यों में श्रीराम पर आधारित ब्राण्डस चलते हैं। महर्षि संस्था के वित्तमंत्री बेंजामिन फेल्डमैन ने बीबीसी से एक साक्षात्कार में कहा था कि इस 'राम' मुद्रा का उपयोग गरीब लोगों के लिए मकान, सड़कें और अस्पताल बनवाने के लिए होगा। राम मुद्रा की विनिमय दरें इस प्रकार हैं– 1 राम = 10 यूएस डॉलर्स, 1 राम = 11.0827 यूरो, 1 राम = 1278.30 येन, 1 राम = 479.29 रुपये, 1 राम = 15.080 लेबनीज पाउंड। प्राप्त जानकारी के अनुसार इस समय कोई एक लाख राम नोट प्रचलन में हैं। कागजी मुद्राओं की तरह राम की स्वर्णमुद्रा भी प्रचलन में हैं। इसमें एक ओर श्रीराम का अंकन है तथा दूसरी ओर कल्पवृक्ष तथा कामधेनु की चित्राकृति उत्कीर्ण है।

प्राचीन चित्रांकन परम्परा में श्रीराम

श्रीराम की कथा को वाल्मीकि ने सबसे पहले शब्दों में गूंथा और फिर यह कथा महाभारत के द्रोणपर्व था। अग्नि, गरुड़ और हरिवंश पुराण से होकर कालिदास के रघुवंश और भवभूति के उत्तररामचरित और दक्षिण के कंबन तक अनेक रूपों में गाई जाती रही। फिर तुलसी तक आते-आते रामकथा की सरिता, सागर में बदल गई। भवभूति के उत्तररामचरित में एक सुन्दर प्रसंग चित्रांकन पर केन्द्रित है जब श्रीराम और सीता को लक्ष्मण अयोध्या में उन भित्तिचित्रों को देखने के लिए आमंत्रित करते हैं जिनमें उनकी स्वयं की कहानी को तूलिका से उरेहा गया है। इस प्रसंग का आरंभ चित्रों से ही होता है। ऋषि अष्टावक्र श्रीराम के पास आए हैं। वे बातें कर रहे हैं कि लक्ष्मण आ जाते हैं और श्रीराम से कहते हैं, 'उस चित्रकार ने हमारे बताए अनुसार आपके चरित इस भीत के ऊपरी भाग में उरेहे हैं, उन्हें आर्य देखें।' इस पर देवी सीता और श्रीराम उन चित्रों को देखने लगते हैं। इनमें सीता की अग्निपरीक्षा तक की पूरी कथा अंकित है। पहले उन दिव्य अस्त्रों के सजीव चित्र हैं जो श्रीराम को ताड़का वध के लिए विश्वामित्र से प्राप्त हुए थे। श्रीराम उन्हें देखकर देवी सीता से उन्हें प्रणाम कराते हैं ताकि वे दिव्यास्त्र उनकी गर्भस्थ संतति को अनायास प्राप्त हो जाएं। फिर मिथिला के वृत्तांत हैं, जिन्हें देखकर मैथिली कहती हैं, 'अहो, यहाँ खिलते हुए नवनील कमल से साँवले, स्निग्ध, मसृण, मांसल, सुभग देह वाले आर्यपुत्र को बनाया है।' उन्होंने शंकर के शरासन को कुछ न समझकर तोड़ डाला है और विस्मयचकित मेरे पिता (जनक) एकटक उनके भोले मुँह को, जिसपर काक-पक्ष शोभित हैं, देख रहे हैं। उन्हें चित्र दिखाते हुए लक्ष्मण कहते हैं, 'यह तो देखिए, आपके पिता तथा पुरोहित शतानंद, वसिष्ठ आदि समधियों की अर्चा कर रहे हैं।' राम कहते हैं, 'यह देखने ही योग्य हैं, विदेहों और रघुओं का संबंध, जहाँ दोनों ओर विश्वामित्र ही समधी है, किसे न रुचेगा।' देवी सीता विवाह के दृश्य को देखकर कहने लगती हैं, 'यह, आप चारों भाई गोदान-मंगल करके विवाह-दीक्षित हुए हैं। अहो, ऐसा लगता है कि मैं उसी स्थान और उसी समय हूं।' श्रीराम को भी वैसा ही अनुभव होता है और वे सीता का ध्यान पाणिग्रहण के दृश्य की ओर आकृष्ट करते हैं। भवभूति ने इस स्थल पर सीता के हाथ का वर्णन बड़े सुंदर शब्दों में किया है।

लक्ष्मण इन चित्रों के संबंध में और विवरण देते हैं, वे भरत की वधू मांडवी और शत्रुघ्न की वधू श्रुतकीर्ति के चित्र दिखाते हैं। इस विवरण के बाद प्रसंग का सर्वश्रेष्ठ अंश आता है। उर्मिला (लक्ष्मण-पत्नी) के चित्र को इंगित करके सीता लक्ष्मण से पूछती हैं, 'वत्स, और यह कौन है?' लक्ष्मण लजा जाते हैं और मन-ही-मन मुसकराते हुए प्रसंग बदलने के लिए परशुराम कांड के चित्र दिखाने लगते हैं। इसी क्रम में वे लोग श्रीराम के किष्किंधा पहुंच जाने तक के चित्रों को देखते हैं और उनके हृदय में प्रसंगानुकूल भांति-भांति के भावों की क्रिया तथा प्रतिक्रिया होती है। इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी में निश्चय ही रामायण के प्रसंगों के आधार पर भित्तिचित्र बने होंगे, जिनका सजीव वर्णन भवभूति ने किया है, किंतु अब ये भित्तिचित्र या अन्य चित्र उपलब्ध नहीं हैं।

भारत में दसवीं शताब्दी से भोजपत्रों व ताड़पत्रों पर बनाए गए सचित्र ग्रंथ व चित्र मिलते हैं। ईस्वी सन 1020 में ताड़पत्रों पर लिखित रामायण प्राप्त हुई है। रामायण की लोकप्रियता के कारण उसकी अनेक अनुकृतियाँ तैयार की गईं। अभी तक हुए शोधों के आधार पर ऐसी

2000 हस्तलिखित पोथियों का पता चला है सचित्र पोथियाँ समूचे भारत में मध्यकाल में चित्रित हुई हैं फिर वे चाहे राजस्थान की या पहाड़ की रियासतें हों अथवा दक्षिण भारत के सुदूर क्षेत्र के अंचल। मुस्लिम प्रभाव के कारण सल्तनत काल या पूर्व मुगल काल की शैलियों में रामायण के अंकन नहीं मिलते हैं।

भारतीय चित्रकला परम्परा में विशेष चर्चा उन लघुचित्रों की है जो मध्यकाल में पूरे भारत की चित्रशैलियों में बनाए गए। सबसे पहले मुगल बादशाह अकबर ने रामायण का अनुवाद अब्दुल कादर बदायूनी से करवाया तथा इसे सचित्र भी बनवाया। इसमें 136 चित्र हैं तथा यह सन 1588 में पूर्ण हुई। एक और सचित्र रामायण अब्दुल रहीम खानखाना ने सन 1598-1599 में बनवाई। ये दोनों क्रमशः जयपुर पोथीखाने और फ्रीर गैलरी वाशिंगटन में हैं। मेवाड़ में राणा जगतसिंह के समय साहिबदीन नामक एक कुशल चितेरे ने रामायण के अनेक काण्ड सचित्र रूप से सन 1649 से 1653 के बीच तैयार किये। मनोहर नामक चितेरे ने बालकाण्ड के चित्र बनाए। ये अंकन ब्रिटिश संग्रहालय लंदन तथा छत्रपति वास्तु संग्रहालय मुंबई (पूर्व नाम- प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय) में संरक्षित हैं तथा ख्यात कला इतिहासकार जे.पी. लॉस्टी ने इन पर विस्तृत शोध की है। जे. पी. लॉस्टी के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मेवाड़ की उस सचित्र रामायण को प्रतिष्ठा दिलाने का था जो मेवाड़ के राणा जगतसिंह (1628 से 1652) के समय में उनके अप्रतिम कलाकार साहिबदीन और मनोहर तथा एक अनाम चितेरे ने बनाई थी। वाल्मीकि रामायण की अनुकृति महात्मा हीरानंद ने की। इसमें रामायण के सातों कांड चित्रित किए गए। इनमें से क्रमशः 2, 4, 6 के सचित्र कांड महाराणा भीमसिंह (1778 से 1828) ने कर्नल जेम्स टॉड को भेंट कर दिए जिन्हें वे लंदन ले गए तथा उन्होंने ड्यूक ऑफ ससेक्स को भेंट किया और जो आज ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन में हैं। जो शेष तीन कांड भारत में रहे उनमें से एक अभी प्राच्य संस्थान जोधपुर में है और शेष छत्रपति शिवाजी महाराज संग्रहालय मुम्बई (पूर्व प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय) तथा एक व्यक्तिगत संग्रह और बड़ौदा संग्रहालय में हैं। महाराणा जगतसिंह के संरक्षण में रामायण के विभिन्न कांडों पर 400 चित्र तीन चित्रशालाओं में बने।

जेरी लॉस्टी ने रामायण के इन सभी अंकनों को सहेजा और इनका अध्ययन किया। उन्होंने बताया था कि वर्ष 1971 में जब वे ऑक्सफोर्ड से सीधे ब्रिटिश संग्रहालय आए तो एक युवक के रूप में उनमें भारतीय सचित्र ग्रंथों का अध्ययन करने की तीव्र जिज्ञासा थी। तब तक रामायण के ये खंड ब्रिटिश लाइब्रेरी में स्थानांतरित नहीं हुए थे। रामायण के इतने बड़े आकार के अंकनों को देखकर वे विस्मित हो गए। इन्हें अभी तक कहीं प्रदर्शित भी नहीं किया गया था। इन उपेक्षित से सचित्र ग्रंथों की उन्होंने सुध ली। इनके तमाम संदर्भ खोजे, शैलीगत मिलान किया, निरंतर भारत आकर इनकी कड़ियाँ जोड़ीं, कलाकारों के इतिहास को खोजा और सम्पूर्ण रामायण की प्रदर्शनी वर्ष 2008 में लंदन में आयोजित की। इस अवसर पर उनकी इन अंकनों पर केंद्रित कृति इंग्लैंड और भारत दोनों देशों से एक साथ प्रकाशित हुई। इसी के साथ उनका एक अपनी तरह का इकलौता अभियान आरंभ हुआ और वह था इन चित्रों और इनके पाठ को एक साथ डिजिटल रूप में लाने का, ताकि सामान्य पाठक और विशेषज्ञ दोनों पाठ के साथ इन चित्रों को देखकर रामायण की कथा और उसके मर्म से एकात्म हो सकें। उनका सपना साकार हुआ 21 मार्च 2014 को जब छत्रपति शिवाजी महाराज वास्तु संग्रहालय मुंबई तथा जमशेदजी टाटा ट्रस्ट के सहयोग से लगभग एक सौ पचास वर्ष बाद हमारे देश की यह अनमोल धरोहर अपनी संपूर्णता से जगत के सामने आ सकी। इस अवसर पर आयोजित समारोह में संग्रहालय के निदेशक डॉक्टर सव्यसाची मुखर्जी सहित ब्रिटिश उप उच्चायुक्त तथा विशेष रूप से मेवाड़ के पूर्व महाराणा अरविंदसिंह उपस्थित थे। आज इस संग्रहालय की वेब साइट पर जाकर एक क्लिक में हमारी इस महान विरासत को हम देख सकते हैं।

रामायण के चित्रों पर ऐतिहासिक कार्य फ्रांस के राष्ट्रीय संग्रहालय म्यूजी गियूमे की प्रमुख डॉक्टर अमीना ताहा हुसैन ओकाडा ने किया है। उन्होंने निरन्तर 10 वर्षो तक पूरे विश्व में घूमकर सभी प्रमुख संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों से रामायण के 10 हजार चित्रों में से 660 चित्रों को चुनकर 5 खण्डों में उन्हें फ्रेंच में प्रकाशित किया है।

मुगल शैली के बाद के काल में राजस्थान और हिमाचल प्रदेश तथा मालवा और बुन्देलखण्ड सहित पूरे भारत के विभिन्न अंचलों में रामकथा के प्रसंगों के शानदार रूपायन हुए। कांगड़ा, गुलेर, बाहु और बसोहली सहित पहाड़ की विभिन्न शैलियों में और जयपुर, कोटा, बूंदी तथा मेवाड़ सहित राजस्थान की अनेक रियासतों और ठिकाणों में रामकथा चित्रित की गई। पहाड़ की शांग्री रामायण के भावप्रवण अंकन, जो विश्व में विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित हैं, हमारी विशिष्ट धरोहर हैं।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है 'औतारचरित' अर्थात अवतारचरित। यह ग्रंथ हाड़ौती के झालावाड़ अंचल का प्रतिनिधि सचित्र ग्रंथ है। इस ग्रंथ के रचयिता बारहठ नरहरदास अर्थात नरहरिदास हैं। इस सचित्र ग्रंथ से तुलनीय कोई अन्य सचित्र ग्रंथ राजस्थानी शैलियों में शायद ही हो। अद्‌भुत रंग संयोजन, रेखाओं की लयात्मकता, आनुपातिक आकृतियाँ तथा अत्यन्त कौशल के साथ उरेही गई नैसर्गिक दृश्यावलियाँ इस ग्रंथ की विशेषता हैं। राजस्थानी शैलियों में निर्मित किए गए सचित्र ग्रंथों में यह ऐसा इकलौता सचित्र ग्रंथ प्रतीत होता है जो परवर्तीकाल में अर्थात 19वीं सदी में तैयार किया गया और जिसमें कलम की इतनी बारीकी है। अन्यथा 18वीं सदी के उत्तरार्ध तथा 19वीं सदी में कलम स्थूल होने लगती है, रंग बिखरने लगते हैं तथा ब्रिटिश प्रभाव के कारण स्थानीयता विलुप्त होने लगती है। संभवतः यह एकमात्र ऐसा सचित्र ग्रंथ है जिसमें रामचरितमानस के प्रसंगों को चित्रित किया गया है तथा चितेरे ने अपनी कल्पना का प्रयोग करते हुए भी चित्र बनाए हैं।

औतारचरित पांच भागों में सजिल्द रूप में राजकीय संग्रहालय झालावाड़ में संग्रहीत है। इन पांच भागों में दो भाग सचित्र हैं। यह ग्रंथ अपूर्ण है। केवल दो जिल्द सचित्र हैं। पहली जिल्द जो पृष्ठ क्रमांक 1 से 133 तक है उसमें 132 चित्र हैं तथा दूसरी जिल्द में 157 पूर्ण चित्र व 34 अपूर्ण चित्र हैं। पहली जिल्द में अवतारों का विवरण है। औतारचरित के पहले अंकन में भगवान गणेश के सामने सरस्वती विराजी हैं तथा उनके पीछे एक सेविका अपने हाथ में चंवर लिए खड़ी है। इस ग्रंथ में सर्वाधिक दृश्य नृसिंह अवतार पर केन्द्रित हैं। हिरण्यकश्यपु तथा प्रहलाद की कथा को विस्तार से चित्रित किया गया है। ग्रंथ के अंत में निम्नानुसार पुष्पिका है-।। इतिश्री वेदव्यास अवतार चरित्रंबारहठनरहरदासनेन विरचितं संपूर्ण।। ।।5000।। दोहा ।।16।। छंद 44।। कवित्त।।श्री।। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है औतारचरित का यह प्रथम खण्ड दशावतारों से जुड़ी हुई कथाओं पर केन्द्रित हैं। ग्रंथ का दूसरा सचित्र भाग पृष्ठ 134 से 325 तक है जिसमें रामकथा चित्रित की गई है।

14वीं सदी में दक्षिण भारत के विजयनगर राज्य की स्थापना के साथ ही वहाँ के वीरभद्र मंदिर लेपाक्षी तथा विठ्ठल मंदिर हम्पी में रामायण की प्रमुख घटनाओं का मण्डप की छत पर चित्रांकन किया गया था। 16वीं सदी में सम्राट अकबर के नवरत्न टोडरमल ने 75 हजार श्लोकों वाले 'टोडरनन्द' काव्य ग्रन्थ का 23 जिल्द में प्रथम बार सम्पादन करवाया था। इस ग्रन्थ में उन्होंने 'रामावतार' का सचित्र वर्णन किया है। इसी समय अकबर के एक और नवरत्न अब्दुर्रहीम खानखाना ने सम्राट के आदेश पर वाल्मीकि रामायण का संस्कृत से फारसी में अनुवाद और श्रीराम के जीवन की प्रमुख घटनाओं को आकर्षक रूप में मुगल शैली में चित्रांकित करवाया था। इस चित्रांकन में भरत का वन में आगमन तथा श्रीराम से मिलन और अयोध्या चल कर राजपाट संभालने के अनुरोध का विशिष्ट चित्र है। इसमें भरत के सैनिक एवं सेवक मुगलकालीन वस्त्र पहने प्रदर्शित किये गये हैं जो विविध रंगों के हैं। इसमें पगड़ियों पर भी मुगल प्रभाव दर्शित है। कुछ व्यक्ति हाथी के महावतों के रूप में हैं। हाथियों का शृंगार व शारीरिक सौष्ठव उत्तम है। सैनिकों के हाथों में ढ़ाल, तलवार, खड़ग हैं तथा वे सभी सफेद रंग का पट्टा कमर में बांधे हैं। उनकी अंगरखी के विन्यास काफी आकर्षक हैं। सारे सैनिक सघन वन से घिरे क्षेत्र में दर्शाये हैं जिसके एक छोर पर चट्टानों के ऊपर स्वयं हिन्दू शाही वेश में मुकुटधारी भरत नीलवर्णीय श्रीराम के समक्ष अयोध्या पधारने का निवेदन कर रहे हैं। भरत के पीछे बैठे एक अन्य विशिष्ट जन की मुद्रा भी अनुग्रह भाव की है। श्रीराम शान्त भाव से पीतवस्त्र पहने बैठे हैं। उनके हाथ में धनुष व पीठ पर तरकश बंधा हुआ है। वे शान्त भाव से भरत के अनुग्रह को स्वीकार न करने की विवशता को दर्शा रहे हैं।

मुद्रा विशेषज्ञ डॉ. शशिकान्त भट्ट के निजी संग्रह में श्रीराम का एक विशिष्ट चित्र मुगलकाल का है जिसमें श्रीराम और दूतकर्म के बाद लंका से लौटे अंगद का मिलाप निहारते हुए भगवान ब्रह्मा, शिव, विष्णु और वायुदेव चित्रित हैं। इस दुर्लभ चित्र में आकाश में तीनों बड़े देवता एवं वायुदेव पद्मासन में बैठे एक दूसरे से राम-अंगद मिलन को निहारते वार्ता करते विराजे हुए हैं। इनमें ब्रह्मा तथा वायु को गौरवर्णीय ओपरना तथा धोती एवं माला पहने दर्शाया है, जबकि विष्णु को गहरे श्याम रंग व पीत वस्त्र में एवं शिव को आसमानी व पीतवस्त्र धारण किये दर्शाया है। उनके गले में गहरे नीले रंग का सर्प भी दर्शाया गया है। इनके ठीक नीचे धरती पर एक घने वन में श्याम वर्णीय श्रीराम को राजसी मुकुट (जिस पर मध्य युगीन तीन पंखुड़ियाँ जड़ी है) पहने, ग्रीवा में मोतियों की लटकन वाली श्वेतमाला तथा हरे रंग का ओपरना व पीत रंग की धोती पहने दर्शाया है। वे अपने दायें हाथ की तर्जनी से समक्ष खड़े वानरराज-पुत्र अंगद को आवश्यक नीति निर्देश देते हुए दर्शित हैं। उनके पीछे उन्हीं की भांति मुकुट पहने सेवक भाव से लक्ष्मण खड़े हैं। श्रीराम के समक्ष-ऋक्ष यूथपति मुकुटधारी जाम्बवन्त नील वर्णीय हैं वे अपने दोनों हाथों की मुद्रा से श्रीराम को सलाह देते हुए दर्शित हैं। उनकी धोती, ओपरना भी दर्शनीय हैं। उनके पास ही श्वेत पगड़ी व श्वेत ओपरना पहने एक धोती धारित सेवक के हाथों में 2 तलवारें तथा लम्बा भाला है। संभवतः यह दृश्य श्रीराम व जाम्बवन्त के मध्य वार्ता तथा दिशा एंव अस्त्र शस्त्र के उपयोग को लेकर दर्शाया गया है। श्रीराम, अंगद, लक्ष्मण तथा अन्य सेवक वानरों के शीश के मुकुट मध्य युगीन हिन्दू देवों के शीश पर उत्कीर्ण किये जाने वाले मुकटों की भांति हैं। सभी की वेशभूषा भी पारम्परिक भारतीय है। उनके पीछे वीर वेश, ढाल, तलवार थामे एक अन्य वानर सेवक भी खड़ा है। अंगद के समक्ष ही युद्ध के अस्त्रशस्त्र सिरटोप, भाला, वक्ष कवच, तलवार तथा कमर कटार भी रखी हैं जो मध्ययुगीन शैली के हैं। प्रतीत होता है सारे वानरयूथपति श्रीराम के समक्ष अस्त्रशस्त्रों के संग्रहण की सूचना देने तथा दूत-नीति पर मार्गदर्शन लेने आये हैं, जो अंगद के साथ हैं।

श्रीराम का एक अन्य विशिष्ट चित्र भी इसी काल का है जिसमें वे वन में स्वर्ण मृग का पीछा करते हुए उकेरे गए हैं। चित्र में वृक्ष-वनस्पति तथा पाषाण खण्डों को सुन्दरता से अंकित किया गया है। श्रीराम यहाँ मुकुट पहने उकेरे गये हैं। वे अपने हाथों से धनुष पर बाण चढ़ाये स्वर्णमृग पर संधान करने को तत्पर हैं। उनकी इस मृगया मुद्रा से भयभीत स्वर्णमृग वन में कुलाचें भरते हुए भाग रहा है। उसके सींग तथा शरीर पर स्वर्ण रंग व उन पर गोलाकार हरी-लाल एवं सफेद बिन्दिया व नीचे का श्वेत भाग एवं मुख अत्यन्त प्राणवान हैं।

एक अन्य विशिष्ट चित्र श्रीराम और परशुराम की भेंट है। राजस्थानी शैली का यह चित्र उदयपुर से प्राप्त हुआ है और वर्तमान में मुम्बई के छत्रपति शिवाजी वास्तु संग्रहालय की चित्रकला विथिका में क्रमांक 54.1/19 पर प्रदर्शित है। चित्रकार मनोहर द्वारा उकेरा यह चित्र ईस्वी सन 1649 का है। यह पूरा चित्र 38 सेमी लम्बे एवं 31.18 सेमी चौड़े पत्र पर है। इसे मेवाड़ महाराणा जगतसिंह के राज्याश्रय में बनाया गया था। यह मूलतः रामायण के बिखरे चित्रों में से एक है। इस कथाचित्र में परशुराम श्रीराम के विवाह की बारात को रोकते हुए हैं। वे श्रीराम को उनकी योग्यता प्रामाणित करने हेतु विशाल शिव धनुष को झुका कर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने की चुनौती देते हैं। श्रीराम आसानी से धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा लेते हैं और एक बाण निकालते हैं। परशुराम इससे अवाक रह जाते हैं और तत्काल उन्हें यह आभास हो जाता है कि श्रीराम कोई असाधारण मनुष्य हैं। चित्रकार ने इस घटना को पूरी सूक्ष्मता और मनोयोग से उकेरा है और इस हेतु उसने संकेतों, कथा कहने की तकनीक के साथ-साथ बड़े चटक रंगों का भी सुन्दर इस्तेमाल किया है। प्रस्तुत चित्रांकन में तीन अलग-अलग जगह हैं जो अलग-अलग रंग की पृष्ठभूमि में हैं, आगे के हिस्से में पंच ऋषि यज्ञ कर रहे हैं। बारात में श्रीराम और उनके अनुज रथों पर सवार हैं तथा उनके पीछे सीता तथा दूसरी महिलायें दो हाथियों पर रखे हौदों में बैठी पीछे आ रही हैं।

परशुराम देवलोक से उतर कर आये हैं, जिन्हें हल्के बैगनी रंग में दर्शाया गया है। गुस्से में भरे हुए परशुराम काफी बड़े आकार में दर्शाये गये हैं जिससे उनका व्यक्तित्व इस चित्र में बड़े प्रभावी रूप से उभर कर आया है। प्रस्तुत चित्र में भगवान विष्णु के दो अवतारों के मिलने के इस

पल को निहारने के लिए आकाश में देवता एकत्रित हुए दर्शाये हैं। घटनाओं के क्रम में श्रीराम तथा परशुराम बार-बार दिखाए गए हैं। श्रीराम के अतुलनीय पराक्रम तथा चमत्कार से शांत और विनम्र हुए परशुराम सामान्य मनुष्य के आकार में आ गए हैं और फिर उनके हाथ में धनुष के स्थान पर पुष्प है जो अब सन्धि तथा श्रीराम के प्रति भक्तिभाव का प्रतीक है। सांवले सलोने श्रीराम के हाथ में भी एक पुष्प है जो परशुराम के प्रति आदर समभाव का सूचक है। इस चित्र के अन्तिम कोने में इस घटना का अन्तिम रूप चित्रित है जिसमें परशुराम महेन्द्र पर्वत की ओर तपस्या करने जाते दिखायी देते हैं।

एक विशिष्ट चित्र कला विशेषज्ञ नर्मदा प्रसाद उपाध्याय (इन्दौर) के व्यक्तिगत संग्रह में है जिसे उन्होंने अनुग्रहपूर्वक इस अकिंचन लेखक को भेजा है। यह चित्र 'राम दरबार' का है जो 19वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में झालावाड़ कलम की विशेषता का प्रतिनिधित्व करता है। इस चित्र में श्रीराम सीता सहित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं तथा उनके एक हाथ में कमल पुष्प है। दोनों के शीश पृष्ठ में प्रभामण्डल का अंकन व उसके ऊपर अयोध्या नगरी का वैभव प्रकृतिप्रदत्त हरियाली के मध्य उकेर कर प्राणवान बनाया है। यहाँ श्रीराम एवं सीता ने परम्परागत वस्त्राभूषण धारण किये हैं। श्रीराम का एक पैर नीचे बैठे भक्त हनुमान के घुटने पर रखे उनके हाथ पर है। पीछे दो परिचारक मोरछल लिये हैं, भरत भी इसमें दर्शाये गये हैं।

उल्लेखनीय है कि भारतीय चित्रांकन परम्परा में श्रीराम का अंकन विशिष्ट गरिमा के साथ मध्यकालीन व उत्तर मध्यकालीन चित्रकला में दिखायी देता है।

❑❑

'अनहद', जैकी स्टूडियो,
15-मंगलपुरा, झालावाड़ 326001 (राज.)
मो. 9829896368.

'वैचारिकी' पत्रिका के स्वामित्व आदि की घोषणा
(प्रपत्र 4 - नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	भारतीय विद्या मंदिर 12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
2.	प्रकाशन की आवृत्ति	:	द्वैमासिक
3.	मुद्रक-प्रकाशक	:	नाम- शंकरलाल सोमानी, राष्ट्रीयता- भारतीय पता- सचिव, भारतीय विद्या मंदिर 12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी, कोलकाता-700087
4.	संपादक	:	नाम- डॉ. बाबूलाल शर्मा, राष्ट्रीयता– भारतीय
5.	उन व्यक्तियों, संस्थाओं आदि के नाम जो पत्र के स्वामी और साझेदार हैं अथवा कुल पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के अंशधारक हैं	:	भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता

मैं शंकरलाल सोमानी एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर दिया गया विवरण मेरी जानकारी व विश्वास के अनुसार सही है।

ह. शंकरलाल सोमानी
सचिव- भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी,
कोलकाता-700087

31 मार्च 2023

रामकथा के दो पात्रों की निन्दनीयता

देवदत्त शर्मा

विदुषी वीरांगना कैकेयी

जिस रूप में रामकथा प्रचलित है, उसके आधार पर तो आम मनुष्य यही मानता है कि अयोध्या नरेश दशरथ की प्रिय रानी कैकेयी ने भरत को राजा बनाना चाहा था, अतः दो वचनों के माध्यम से उसने भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास मांग लिया। वस्तुतः रामकथा का प्रचलित स्वरूप रामकथा का अधूरा ज्ञान है। जन साधारण उतनी ही जानकारी प्राप्त कर सकता है जितनी उस तक पहुंचती है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि रामकथा का सही एवं संपूर्ण स्वरूप जनता के सामने नहीं आ पाया है। इसका कारण यह है कि वाल्मीकि कृत रामायण और पौराणिक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में हैं जो विद्वत वर्ग तक सीमित हैं। इन ग्रन्थों का सामान्य व्यक्ति अध्ययन नहीं कर पाता है। अतः इन ग्रन्थों में वर्णित रहस्य कम उजागर हो पाये हैं। चूंकि राम को अवतार समझकर लोग आराध्य के रूप में उनके प्रति श्रद्धा रखते हैं अतः इसी रूप में राम पूज्य हैं। यही कारण है कि रामकथा का ऐतिहासिक एवं राजनैतिक स्वरूप गौण रह गया है।

जितनी भी रामकथाएँ प्राचीनकाल से लेकर आज तक प्रचलित हैं उनका मूल आधार आदि कवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण महाकाव्य रहा है। विविध रामकथा रचनाकारों ने भी इस महाकाव्य के केवल आध्यात्मिक पक्ष को ही अधिक प्रचारित-प्रसारित किया है। अधिकांश महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को छोड़ दिया गया है। यदि वाल्मीकि रामायण का गहनता से अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट समझ में आयेगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम एक ऐतिहासिक महापुरुष थे तथा उनका जीवन राजनैतिक संघर्ष का जीवन था। आदि कवि की रामायण को सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसका अध्ययन करने पर मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि राजनैतिक परिस्थितियों के कारण राम के जीवन में जो भी घटित हुआ, वही संपूर्ण रामकथा है। उसी परिप्रेक्ष्य में मंथन अपेक्षित है। तदनुसार कैकेयी की इच्छा भरत को राज्य दिलाने की कदापि नहीं थी। न ही कैकेई राम को राज्यच्युत करना चाहती थी। फिर भी जो कुछ हुआ, वे परिस्थितियां ही थी। कैकेई का कृत्य तो उसे गरिमामयी नारी ही साबित करता है। सर्वप्रथम तो मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि दशरथ के बाद राज्य के उत्तराधिकारी भरत ही थे न कि राम। इसका आधार यह है कि कैकेई की प्रतिभा से प्रभावित राजा दशरथ ने जब कैकेई के पिता कैकेय राज्य के नरेश 'अश्वपति' के समक्ष कैकेई से विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो अश्वपति ने यह सोचकर कि राजा दशरथ के पूर्व में दो रानियाँ हैं, ऐसे में कैकेयी जैसी प्रतिभाशाली पुत्री की स्थिति दयनीय न बने, दशरथ से यह वचन ले लिया था कि कैकेयी की संतान ही दशरथ के बाद उत्तराधिकारी बने। उस समय तक दशरथ के कोई संतान नहीं थी तथा वे संतान के न होने से दुःखी भी थे। अतः उन्होने निःसंकोच कैकेई के पिता को यह वचन दे दिया था कि

कैकेई की संतान ही अयोध्या की उत्तराधिकारी होगी। इस प्रकार अपने जन्म से पूर्व ही भरत राज्य के उत्तराधिकारी बन चुके थे। रघुकुल के बारे में प्रसिद्ध है कि- **रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाई पर वचन न जाई।।**

इस प्रकार वचन से आबद्ध होने के कारण दशरथ के बाद राजतिलक तो भरत का होना था। स्वयं राम को भी इस तथ्य की पूर्ण जानकारी थी। यही कारण था कि कैकेई ने जब दशरथ से भरत के राजतिलक का वचन मांगा तो राम ने तनिक भी विरोध नहीं किया। भरत जब राम को मनाने के लिए चित्रकूट गये थे तब स्वयं राम ने भरत को इस तथ्य से अवगत कराया था– **पुरा भ्रातः पिता नः समातर ते समुद्र वहन। मातामहे समात्रोषी द्राज्य।** (वाल्मीकि-अयोध्याकांड- सर्ग 107)[1] अर्थात (जब पिताजी ने तुम्हारी माता से विवाह किया था तभी तुम्हारे नाना के समक्ष यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि 'तुम्हारी कन्या से जो पुत्र होगा वह राज्य का उत्तराधिकारी होगा।'

परन्तु पश्चातवर्ती घटनाएँ बताती हैं कि पटरानी कौशल्या के गर्भ से 'राम' का जन्म होने तथा सबसे बड़े होने के कारण पारम्परिक रूप से राम राज्य के उत्तराधिकारी होने चाहिए। इसी आधार पर दशरथ ने राम को युवराज घोषित करके राम का अभिषेक करने की घोषणा कर दी। दशरथ ने कैकेई के पिता को दिए वचन का ध्यान न रखकर अपने ही वचन को तोड़ दिया था। कैकेई गरिमामयी एवं रघुकुल की प्रतिष्ठित रानी थी। अपने पति की प्रतिष्ठा की उसे चिन्ता थी। वह जानती थी कि यदि दशरथ ने राम का राज्याभिषेक कर दिया तो लोक में दशरथ वचन भंग के दोषी माने जाकर अपनी एवं रघुकुल की प्रतिष्ठा खो देंगे। रघुकुल की वचन प्रियता को आंच आएगी। अतः उसने एक वरदान द्वारा भरत के राजतिलक की मांग रख दी ताकि दशरथ द्वारा उसके पिता अश्वपति को दिए वचन का पालन हो तथा रघुकुल के वचन पालन की प्रतिष्ठा बनी रहे।

लेकिन कैकेई राम से अति स्नेह रखती थी। वह यह जानती थी कि बड़ा पुत्र होने के कारण पारम्परिक रूप से राम ही राज्य के उत्तराधिकारी होते, यदि भरत को उत्तराधिकारी बनाने का दशरथ ने अश्वपति को वचन न दिया होता। उसके मन में राम के प्रति कोई विद्वेष नहीं

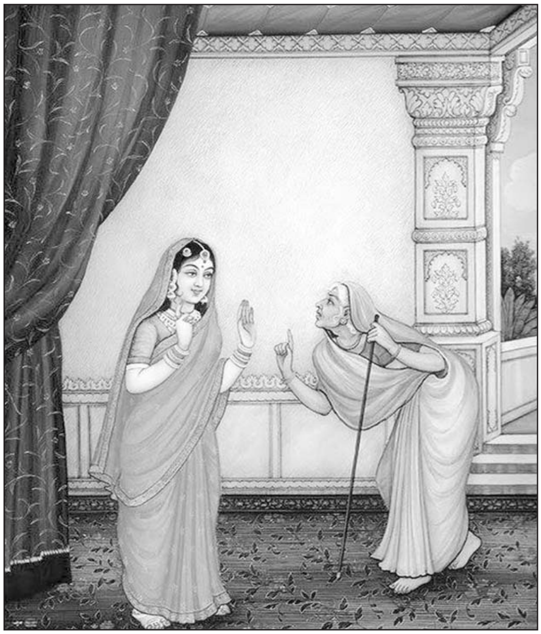

था। हकीकत तो यह है कि वह राम से स्नेह करती थी तथा उन पर विश्वास भी करती थी। यही कारण था कि जब अपनी दासी मंथरा के मुख से उसे यह ज्ञात हुआ कि राम का राजतिलक होने जा रहा है तो अतिरेक में उसकी स्वाभाविक स्नेह भावना उमड़ पड़ी तथा उसने मंथरा को उपहार में आभूषण दिया–

अतीव सा तु सुहृदयाष्ठा कैकेई विस्मियान्विता।
एक मा भरण तस्ये कुब्जाये प्रददी शुभम् ।।
दत्वात्वा भरण तस्ये कुब्जाये प्रमदोत्समा ।
कैकेयी मन्थरा दृष्टवा पुनरेक बुवीदिदम।।
इदम तु मन्थरे महयमाख्याव स परम प्रियम
एतन्मे प्रियमाख्यातम मयः कि वा करो मिले।
रामेवा भरतेवाहं ह्शेष नोप लक्षये।
तस्मातुमाशिम यद्राजा राम राज्ये अभिषेदयति।।

(वाल्मीकि अयोध्याकाण्ड-सर्ग-7 श्लोक 32 से 35)

अर्थात– कैकेयी ने प्रसन्नचित भाव से एक आभूषण निकालकर मन्थरा को दिया। यह आभरण देने के अनन्तर कैकेई ने हर्षित होकर कहा मन्थरे! तुमने यह बहुत अच्छा समाचार सुनाया है! तूने इतनी प्रिय बात कही है कि मैं निहाल हो गई हूँ! बता, मैं तेरे लिए और क्या करूं, देख राम और भरत में भेद नहीं मानती हूँ! यह सुनकर बहुत

प्रसन्न हूँ कि राम का राज्याभिषेक होगा। परन्तु दशरथ ने अश्वपति को जो वचन दिया था, उसकी रक्षा के लिए कैकेयी ने स्वयं को कठोर बनाकर भरत के लिए राजतिलक का वर मांग लिया। कैकेयी विदुषी थी। उसमें आत्म निर्णय की शक्ति थी। भरत के लिए राजतिलक मांगने का स्वयं का निर्णय था। उसे (कैकेयी को) मंथरा की सलाह की आवश्यकता नहीं थी। वह दशरथ से प्रेम करती थी अतः दशरथ की प्रतिष्ठा की रक्षा करना अपना धर्म समझती थी। अगर वह ऐसा नहीं करती तो निश्चित रूप से दशरथ की लोक में निंदा होती। जिस कैकेयी ने युद्ध में दशरथ की रक्षा की हो, जो राजनीतिक रूप से सुदृढ हो, उस रानी के लिए यह कहना कि वह एक दासी से प्रेरित थी, उसके प्रति उसकी योग्यता के प्रति अन्याय है।

कैकेयी चूंकि राजनीतिज्ञ थी, विदुषी थी, अतः उसने हर कदम गरिमामय उठाया। वह जानती थी कि एक मात्र उसके पिता को दिए वचन के कारण ही पारम्परिक रूप से प्राप्त राज्य राम के हाथ से चला जायेगा। अतः उसने राम के अधिकारों की भी रक्षा की। भरत को राजतिलक की मांग के साथ उसने राम को 'चौदह' वर्षो की अवधि के लिए वन में भेजने की बात रखकर यह साबित कर दिया कि पारम्परिक रूप से राम ही अयोध्या के राजा हों। भरत को भी यह अहसास करा दिया कि उसे राजतिलक देने का कारण केवल यही है कि दशरथ ने उसके नाना को ऐसा वचन दिया था।

इस प्रकार एक निर्धारित अवधि तक भरत को राम के राज्य का अस्थायी राजा होने की भूमिका निभाने का संकेत दिया। अगर उसे भरत को हमेशा के लिए राजा बनाना होता तो राम को सदैव के लिए अयोध्या से निष्कासित करने का वचन मांग लेती, जबकि 14 वर्ष की अवधि तय करके उसने राम को वापस अयोध्या लौटने की शर्त भी रख दी। इससे राम का पारम्परिक अधिकार सुरक्षित हो गया।

रामकथा में प्रायः यह आता है कि राम को वनवास दे दिया। विद्वान वर्ग यदि वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का गहन अध्ययन करेंगे तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि राम को वन में जाने के आदेश का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में कैकेई ने राम को वनवास दिया ही नहीं था। कैकेयी एक राजनीतिज्ञ थी, उसने राम की शक्ति का सदुपयोग किया। वह राम की शक्ति से परिचित थी तथा उन पर विश्वास करती थी। उस समय आसुरी शक्तियां सिर उठा रही थी। उनके विनाश हेतु विष्णु द्वारा राम के रूप में अवतार लेने की बात सर्वविदित है। कैकेयी भी आसुरी शक्तियों का विनाश चाहती थी। इन शक्तियों का नेतृत्व लंकाधिपति रावण कर रहा था। रावण को पराभूत कराना चाहती थी। कैकेयी को ज्ञात था कि रावण ने अयोध्या पर आक्रमण करके राम के पूर्वज राजा 'अनरण्य' का वध किया था। तभी से कौशल साम्राज्य (अयोध्या) ने रावण के विनाश का संकल्प कर लिया था। 'अनरण्य' द्वारा मरते समय रावण को दिए गए शाप के अनुसार राम द्वारा ही रावण का अन्त होना था।

उपस्त्यते कुलेहास्मिन्निस्वा कूणां महात्मनाम्।
रामौ दाशरथिनाम स ते प्राणान् हरिम्यन्ति ।।

(वाल्मीकि उत्तरकाण्ड सर्ग-19) अर्थात-महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेशों के इस वंश के ही दशरथ नन्दन श्री राम प्रकट होंगे, जो तेरे प्राणों का अपहरण करेंगे। यह शाप अनरण्य ने रावण को दिया था। रावण द्वारा अयोध्या पर विजय का वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में विस्तृत वर्णन है। कैकेई ने इस संकल्प को पूरा करने के लिए राम को सीधा 'दण्डकारण्य' में पहुंचने का निर्देश दिया था। वस्तुतः 'दण्डकारण्य' ही वह स्थान था जहां पर रावण ने अपनी सैनिक छावनी स्थापित कर रखी थी। शूर्पणखा और खर-दूषण रावण के प्रतिनिधि थे। अतः दण्डकारण्य से ही रावण की शक्ति से लोहा लेना था। अतः राम को दण्डकारण्य में भेजा-

नव पञ्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीर जिन धरौ धीरो रामो भवतु तापसः।।

(वाल्मीकि-अयोध्याकाण्ड सर्ग-11)

धीर स्वभाव वाले श्रीराम तपस्वी के वेष में वल्कल तथा मृग चर्म धारण करके चौदह वर्षो तक 'दण्डकारण्य' में जाकर रहें, यह आदेश कैकेयी ने स्वयं ने श्री राम को दिया था। इस आदेश में कैकई ने राम को धीर स्वभाव वाला बताकर राम के प्रति अपना स्नेह ही व्यक्त किया है। कैकेयी को राम पर इतना स्नेह एवं विश्वास था कि उसे यह संभावना ही नहीं थी कि राम आज्ञा का उल्लंघन

करेंगे। तभी तो उसने अपनत्व भरा आदेश राम को दिया था–**"सप्त सप्त च वर्षाणि दण्डकारण्य माक्षितः। अभिषेक मिदं त्यक्त्वा जटा धीर-धरो भवः।।"** (वाल्मीकि-अयोध्याकाण्ड सर्ग-18) 'और तुम इस अभिषेक को त्याग कर चौदह वर्षो तक 'दण्डकारण्य' में रहते हुए जटा और चीर धारण करो।'

यहाँ यह स्पष्ट है कि कैकेयी ने राम को वनवास नहीं देकर सौद्देश्य 'दण्डकारण्य' जाने की बात कही है। इसका कारण स्पष्ट है कि दण्डकवन से ही राक्षसों के विरुद्ध अभियान प्रारंभ करना था। रावण ने अपनी बहिन शूर्पणखा के नेतृत्व में दण्डकारण्य में अपनी सैनिक छावनी स्थापित कर ली थी। खर-दूषण उसके सहायक थे-

एवमुक्तवा दशग्रीवः सैन्यमस्यादिदेशह।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसा वीर्य शालिनाम।।
स तैः परिवृत सर्वो राक्षसैर्धोदश्निः।
आगच्छत खरः शीघ्र दण्डकान कुतो मयः।।
स तत्र कारयामास राज्य निहित का..कम्।
सा च शूर्पणखा तत्र न्यवसद् दण्ड के वने ।।

(वाल्मीकि-उत्तरकाण्ड-सर्ग-25) अर्थात दशग्रीव ने चौदह हजार पराक्रमी राक्षसो की सेना को खर के साथ जाने की आज्ञा दी। उन भंयकर राक्षसों से घिरा हुआ खर शीघ्र ही दण्डकारण्य में आया और निर्भय होकर वहां का अकण्टक राज्य भोगने लगा। दण्डकारण्य में रहते हुए उन राक्षसों ने ऋषि-मुनियों एवं वहां की प्रजा पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिए। राम ने ऋषि-मुनियों को उनके अत्याचारों से मुक्त कराने का प्रण किया। अतः उन्हें दण्डक वन में जाना ही था। इन सभी कारणों से कैकेई ने राम को सीधे दण्डकवन में जाने का आदेश दिया था। रामकथा के जानकार भली-भांति परिचित हैं कि रावण के विनाश के साथ ही चौदह वर्षो की अवधि समाप्त होते ही राम अयोध्या लौट आए तथा उनका पारम्परिक अधिकार प्राप्त हो गया। दशरथ द्वारा कैकेई के पिता को दिए गए वचन की रक्षा भी हो गई तथा राम के अधिकारों पर भी कोई आँच नहीं आई। राक्षसों का विनाश हुआ तथा मानव मूल्यों की रक्षा हो गई।

भरत को राज्य दिलाने एवं राम को दण्डकारण्य में भेजने के संभावित परिणामों, स्वयं की आलोचना एवं कलंक इत्यादि का उसे सामना करना पड़ेगा, यह भी

वह जानती थी। परन्तु उसने लोकहित एवं रघुकुल की प्रतिष्ठा को ही महत्व दिया। स्वयं की महत्वाकांक्षाओं को न्यौछावर करके अनुपम त्याग किया, लांछन सहे।

वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट है कि रामकथा मर्मज्ञों ने सदा ही कैकेई की आलोचना की, आज भी उसे लांछित किया जाता है। मैथिलीशरण गुप्त जी को कैकेई से सहानुभूति अवश्य हुई परन्तु उन्होंने भी अपनी प्रसिद्ध रचना 'साकेत' में कैकेयी से प्रायश्चित करवा कर उसके प्रति सहानुभूति दशार्यी है। प्रायश्चित वही करता है जो अपराधी हो। इस दृष्टि से गुप्त जी ने भी कैकेई को दोषी तो माना ही है जबकि वह निर्दोष थी।

विश्व में कई महान महिलाएं हुई हैं। भारत में कई श्रेष्ठ महिलाओं के प्रमाण हैं। परन्तु रामकथा की कथित लांछित नारी कैकेई का त्याग एवं उसकी लोकहित की भावना यह सिद्ध करती है कि महान नारियों में उसका स्थान शिखर पर रहेगा। रामकथा के प्रचार प्रसार में कैकेई को श्रेष्ठतम महिला के रूप में स्थान देना ही उसकी गरिमा का आकलन होगा। वाल्मीकि रामायण इसका पुष्ट प्रमाण है। साहित्य एवं इससे संबद्ध विद्वान वर्ग को कैकेई के बारे में प्रचलित धारणा बदलनी चाहिए तथा कैकेई को 'लोकपाल' की श्रेणी में गिनना चाहिए।

कर्तव्यनिष्ठ मंथरा

राम वनवास के प्रसंग में अयोध्या नरेश दशरथ की प्रिय रानी कैकयी तथा उसकी दासी मंथरा को जितना राम के समय कोसा गया था, उतना ही आज भी कोसा जाता है। वस्तुस्थिति यह थी कि राम-वनवास के अनेक कारण थे। वाल्मीकि रामायण रामकथा का प्रमाणिक ग्रंथ है। उनके बाद एक मात्र गोस्वामी तुलसी हुए जिन्होंने वेद-पुराण एवं अन्य कई ग्रंथों का अध्ययन करके 'मानस' की रचना की थी। अतः इन दोनों कवियों के आधार पर कुछ तथ्यात्मक बातें विचारणीय हैं।

वाल्मीकि ने तो अयोध्याकाण्ड के सर्ग 107 (श्लोक 3) में स्वयं राम से कहलवाया है कि महाराज दशरथ द्वारा कैकेयी से विवाह के समय से ही कैकयी के पिता को यह वचन दे दिया था कि कैकेयी की संतान ही दशरथ की उत्तराधिकारी होगी। यानि राम भी यह मानते थे कि राज्य पर भरत का अधिकार है। तुलसी ने भी अयोध्याकाण्ड में भरद्वाज मुनि से इस बात की पुष्टि कराई है। मुनि प्रयागराज में राम को मनाने जाते समय भरतजी को कहते हैं– **लोक वेद संमत सबु कहहि। जोहि पितु देई राजु सो लहई।। राउ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरम बड़ाई।।**

यानि सत्यव्रत राजा (दशरथ) को चाहिए था कि तुम्हें बुलाकर राज्य देते। परन्तु राजा ने वचन भंग किया। इस दृष्टि से चिन्तन किया जाए तो यह बात सिद्ध होती है कि राम को वनवास (दण्डकारण्य) के लिए स्वयं कैकेयी भी दोषी नहीं थी। फिर भला उसकी दासी 'मंथरा' को राम के वनवास का दोष देना उचित है ही नहीं है।

जहां तक मंथरा का प्रसंग है, मंथरा कैकेयराज अश्वपति की निष्ठावान दासी थी। एक प्रकार से कैकेयी की धाय जैसी थी। अतः एक पिता होने के नाते अश्वपति ने कैकेयी की संरक्षक के रूप में निष्ठावान मंथरा को कैकेयी के साथ विशेष निर्देश देकर भेजा था। मंथरा कैकेयी से उम्र में बहुत बड़ी थी, राजनीतिकारों के बीच रहती थी। अतः रीति-नीति जानती थी। अतः दासी होते हुए भी कैकेयी का हित सोचने की योग्यता रखती थी।

अश्वपति को आशंका थी कि राजनीति के उलट-फेर में कहीं दशरथ कैकेयी को राजनैतिक अधिकारों से वंचित न कर दें। जैसा कि अश्वपति को दशरथ ने वचन दिया था कि कैकेयी की संतान ही उनकी उत्तराधिकारी होगी, परन्तु भावी का क्या भरोसा? उस समय तक दशरथ के कोई संतान नहीं थी, अतः उन्होंने वचन दे दिया था। अन्य रानियों से संतान होने की आशा नहीं थी। परन्तु परवर्ती घटनाएं बताती हैं कि पटरानी कौशल्या के 'राम' हो जाने के कारण सारी परिस्थितियां बदल गई। वंश परम्परानुसार बड़े पुत्र को राजगद्दी देने के नियम के कारण कैकेयी का राजनीतिक अधिकार मारा गया। मंथरा को सारी राजनीतिक परिस्थितियों की जानकारी थी, राजनीतिक गतिविधियों के वातावरण में रही हुई निष्ठावान दासी जो थी। उसकी निष्ठा अश्वपति के प्रति होने के कारण उसका इतना अधिकार नहीं था कि वह अयोध्या की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप करती। अतः उसने कैकेयी को उसके हित की बात कही तो अवश्य उसके पीछे कैकेयराज का आदेश था। कैकेयी देश की राजनैतिक शक्ति का उसे संरक्षण था। इसीलिए एक संरक्षक के रूप में मंथरा ने स्वामीभक्ति के कारण कैकेयी के हित को साधने का प्रयास मात्र किया था।

कैकेयी स्वयं प्रबुद्ध एवं कुशल राजनीतिज्ञ थी तथा स्वयं निर्णय लेने में सक्षम थी। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि मंथरा उसे बहका सकती थी! मंथरा ने कुछ भी कहा हो, निर्णय मंथरा की सलाह से नहीं उसने स्वयं ने सोच-समझकर किया था। कैकेयी ने मंथरा की बात कहां मानी? उसने तो राम को सीमित अवधि के लिए दण्डकारण्य भेजकर राम को उत्तराधिकारी बनाने के अधिकार को सुरक्षित कर दिया तथा भरत को उस अवधि तक के लिए राज्य का न्यासी बनाकर यह संकेत दे दिया कि राज्य राम का ही है। ऐसा कर के उसने दशरथ के वचन का पालन कराकर रघुकुल की वचन प्रियता की भी रक्षा कर ली थी। फिर हम कैसे कह सकते है कि मंथरा ने कैकेयी को बहकाया था? कैकेयी को मंथरा की सलाह की आवश्यकता ही नहीं थी, मंथरा इस बात को भी भलि-भांति जानती थी। यही कारण था कि मंथरा ने कैकेयी के हित की जो भी बात कही वह अश्वपति के प्रति स्वामीभक्ति के कारण, कैकेयी के अधिकारों की रक्षा के लिए कही थी। अन्यथा उसका तो कोई स्वार्थ नहीं था। उसने तो स्वयं कहा था– **कोउ नृप होहहिं हमहिं**

का हानि। चेरि छांड़ि अब होब कि रानी।। उसको तो जिस उद्देश्य के लिए अश्वपति ने भेजा, उसने उस कर्तव्य का निर्वाह मात्र किया था। अगर वह कैकेयी के हित की बात नहीं करती तो उसकी स्वामीभक्ति पर संदेह किया जाता। अश्वपति का उस पर कोप होता।

यदि अश्वपति को कैकेयी से विवाह के समय दशरथ ने यह वचन नहीं दिया होता कि कैकेयी की संतान उसकी भावी उत्तराधिकारी होगी तो कदाचित मंथरा को ऐसा करने का अवसर ही नहीं मिलता। कोई यह भी नहीं जान पाता कि कैकेयी की मंथरा नामक कोई दासी थी। राम से तो मंथरा भी स्नेह करती थी। वनवास प्रसंग से पूर्व ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं है जो यह सिद्ध करती हो कि मंथरा के मन में राम के प्रति स्नेह नहीं था।

जब तक दशरथ ने अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं कर दिया तब तक मंथरा को रघुकुल की वचन प्रियता का विश्वास था। परन्तु दशरथ द्वारा उक्त वचन भंग करने पर इस विश्वास को झटका लगा। राम के राजतिलक की घोषणा करने के लिए आमंत्रित राजाओं में सत्यवादी महाराज जनक तथा कैकेयी के पिता अश्वपति को आमंत्रित नहीं किया गया। क्योंकि जनक को भी दशरथ द्वारा अश्वपति को दिये वचन का पता था अतः वे भी सत्यवादी होने के कारण राम का पक्ष नहीं लेते, यद्यपि राम उनके जामाता थे। अवश्वपति तो विरोध करते ही। ऐसी परिस्थिति में मंथरा को कैकेयी का भविष्य अंधकारमय लगा। ये सम्भावनाएं राजनीतिक दृष्टि से गलत नहीं थी। दशरथ जैसे वचनप्रिय राजा यदि वचन भंग कर सकते हैं तो भविष्य में कैकेयी के साथ भी अन्याय हो सकता है, इसी संशय ने मंथरा को अपनी स्वामीभक्ति का कर्तव्य पूर्ण करने की प्रेरणा उसके मन ने दी थी तो गलत नहीं थी। उसने तो मात्र 'सेवक धर्म' का पालन किया था। यह बात अलग है कि कैकेयी ने राम को विश्वास में लेकर भरत को मात्र दशरथ द्वारा दिए वचन के पालनार्थ राज्य का अस्थायी राजा बनाया तथा रावण के विरुद्ध अभियान हेतु राम को दण्डकारण्य में भेजा। इसीलिए राम ने भी मंथरा को कभी कोई दोष नहीं दिया। निर्णय कैकेयी का स्वयं का था न कि मंथरा के बहकाने से। सेवक का दायित्व स्वामी के हित की बात सोचना अनुचित नहीं है। यदि सेवक स्वामी का हित नहीं करेगा तो कौन व्यक्ति अपने सेवक पर विश्वास करेगा? इस सेवक धर्म के संदर्भ में मंथरा ने स्वामीभक्ति का परिचय देकर मयार्दा का ही पालन किया था, फिर हम उसे दोष क्यों दें?

❑❑

ई-140, ॠतुचक्र, शास्त्री नगर,
अजमेर (राज.) 305001 मो. 7597526079

[श्री देवदत्त शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि वाल्मीकि रामायण और बाद में रचित रामायणों में कैकेयी और उसकी दासी मंथरा की खूब भर्त्सना की गई है। निश्चित ही वह अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। राजा दशरथ ने परंपरानुसार बड़े पुत्र राम के राज्याभिषेक का निश्चय किया। किंतु राजा को अपना वचन स्मरण था जिसके अनुसार कैकेयी-पुत्र भरत इस कार्य में बाधा उत्पन्न कर सकता था। अतः राजा दशरथ और गुरु वसिष्ठ ने षड्यंत्रपूर्वक भरत और शत्रुघ्न को ननिहाल (कैकेय) भेज दिया और उनके चले जाने के बाद राजा ने राम के राज्याभिषेक की घोषणा कर दी और यह भी कि इस घोषणा के समय अन्य राजाओं को निमंत्रित किया परंतु कैकेयी के पिता अश्वपति और राजा जनक (जो सत्यव्रति होने से बखेड़ा खड़ा कर सकते थे) को नहीं। अपने हक की मांग करने वाली कैकेयी और इसके लिए, अपने कर्त्तव्य या निर्वाह करते हुए अभिप्रेरित करनेवाली मंथरा निंदनीय क्यों और रघुकुल की रीत का निर्वाह न करने वाले वचन-भंग के दोषी षड्यंत्रकारी राजा दशरथ क्यों नहीं? विमाता कैकेयी की इच्छा से राम ने सहज रूप से वन के लिए प्रस्थान कर गये। वनवास के कारण राम के जिस महान चारित्र्य की अभिव्यक्ति हुई उसने पूरे भारत के जन-मानस को आप्लावित कर दिया, वस्तुतः मंथरा और कैकेयी ने तो बड़ा स्तुत्य उपकार किया। शर्माजी ने दशरथ के पूर्वज अरण्यक को रावण द्वारा मारे जाने और इसलिए रावण-वध के लिए कैकेयी द्वारा राम को दण्डकारण्य में भेजने के अविश्वसनीय प्रसंग का उल्लेख, वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के आधार पर किया है, परंतु बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड तो क्षेपक हैं –सम्पादक।]

राम-सीता के विवाह की आयु

डॉ. आनन्द शर्मा

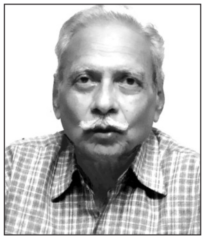

वाल्मीकि रामायण में राम और सीता विवाह के समय उन दोनों की उम्र कितनी थी, यह स्पष्ट नहीं होता। विभिन्न अवसरों पर आये उनकी आयु के उल्लेख काफी भ्रमित करते हैं। राम की आयु का प्रथम उल्लेख बालकाण्ड में मिलता है। अपने यज्ञ की रक्षा के लिये विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को मांगने पर व्याकुल दशरथ, राम की आयु का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः। न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः।।

(वा.रा./बाल.का./20/2)

(महर्षे! मेरा कमलनयन राम अभी पूरे सोलह वर्ष का भी नहीं हुआ है। मैं इसमें राक्षसों से युद्ध करने की योग्यता नहीं देखता।) दशरथ स्वयं धनुष-बाण लेकर चलने की बात कहते हैं। तत्पश्चात विश्वामित्र का उन्हें फटकारना और राम-लक्ष्मण का साथ जाना और राक्षसों से विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करना तो सर्वविदित कथा है।

वनवास के तेरह वर्षो की समाप्ति और चौदहवें वर्ष के आरम्भ में सूर्पनखा का नाक काटने और खर-दूषण सहित चौदह हजार राक्षसों का वध कर देने के बाद, रावण द्वारा सीताहरण की योजना बनाकर मारीच को स्वर्ण-मृग बनाकर भेजना और रावण का परिव्राजक (सन्यासी) वेश में आना भी सर्वविदित है। राम लक्ष्मणविहीन कुटिया में रावण आकर सीता का परिचय पूछता है। उसे अपना परिचय देते हुए सीता राम के साथ विवाह की बात बताते हुए कहती है-

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने। भुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी।।
तत्र त्रयोदशे वर्षे राजामन्त्रयत प्रभुः। अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः।।

(वा.रा./अरण्य.का./47/4-5)

(विवाह के बाद बारह वर्षो तक इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ के महल में रह कर मैंने अपने पति के साथ सभी मानवोचित भोग भोगे हैं। मैं वहां सदा मनोवांछित सुख सुविधाओं से सम्पन्न रही हूँ। तेरहवें वर्ष के आरम्भ में सामर्थ्यशाली महाराज दशरथ ने राजमन्त्रियों से मिल कर सलाह की और रामचन्द्रजी का युवराज पद पर अभिषेक करने का निश्चय किया)।

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः। अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते।।

(वा.रा./अ.का./47/10)

(उस समय मेरे महातेजस्वी पति की अवस्था पचीस साल से ऊपर की थी और मेरे जन्मकाल से लेकर वनगमन काल तक मेरी अवस्था वर्ष गणना के अनुसार अठारह साल की हो गयी थी)। इस हिसाब से वनवास के समय राम की आयु, पचीस वर्ष में वनवास काल के तेरह वर्ष जोड़ने पर अड़तीस वर्ष निकलती है। विवाह के बाद अयोध्या में बारह वर्ष व्यतीत करने से तो विवाह के समय सीता की आयु तेरह वर्ष निकलती है। मारीच भी रावण को,

विश्वामित्र की यज्ञरक्षा करते हुए उसे बाण मारने के समय राम की आयु बारह वर्ष ही बताता है–

ऊनदशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्च राघवः।
कामं तु मम तत् सैन्यं मया सह गमिष्यति।।

(वा.रा./अरण्य.का./38/6)

(रघुनन्दन राम की अवस्था अभी बारह वर्ष से भी कम है)। यह मारीच का अनुमान ही था। राम की सुकुमारता के कारण उसे उनकी आयु बारह वर्ष प्रतीत हुई थी। पिता होने के कारण दशरथ ही राम की सही आयु बता सकते थे और उन्होंने विश्वामित्र को सोलह वर्ष से कम बताई थी)।

अवजानन्नहं मोहाद् बालोऽयमिति राघवम्।
विश्वामित्रस्य तां वेदिमभ्यधावं कृतत्वरः।।
तेन मुक्तस्ततो बाणः शितः शत्रुनिबर्हणः।
तेनाहं ताडितः क्षिप्तः समुद्रे शतयोजने।।

(वा.रा./अरण्य.का./38/18-19)

(मैं रामचन्द्र को बालक समझ कर उनकी अवहेलना करते हुए विश्वामित्र की यज्ञवेदी की ओर दौड़ा। लेकिन राम ने ऐसा बाण छोड़ा, जिसकी चोट खाकर मैं सौ योजन दूर समुद्र-पार आकर गिर पड़ा)।

मारीच द्वारा राम की आयु तेरह वर्ष बताने और सीता का विवाह के बाद बारह वर्षों तक महल में रहने और वनवास के समय उनकी आयु पचीस वर्ष बताना, सीता हरण के समय राम की आयु अड़तीस वर्ष अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। लेकिन सीता की आयु पर विचार करने पर बड़ा बखेड़ा हो जाता है। वनवास के समय सीता अपनी आयु अठारह वर्ष बताती है। इसमें विवाह के बाद के बारह वर्ष निकालने पर तो विवाह के समय सीता की आयु कुल छह वर्ष की निकलती है। इतनी कम आयु में जनक उनके विवाह की सोच भी नहीं सकते थे। लेकिन हरण के समय उनकी आयु इकतीस वर्ष होती है।

अब मारीच ने तो राम की आयु अनुमान से ही बताई थी, परन्तु पिता होने के कारण दशरथ द्वारा बताई 16 वर्ष की आयु ही प्रामाणिक मानी जा सकती है। उस 16 वर्ष से गणना करने पर, राम की वनगमन के समय आयु 28 वर्ष होती है। वनवास के 13 वर्ष जोड़ने पर, सीताहरण के समय राम 41 वर्ष के हो जाते हैं। विवाह की बात करें तो 16 वर्ष के राम, 6 वर्ष की बालिका के साथ विवाह के लिए कैसे तैयार हो सकते थे? लेकिन सीता की 13 वर्ष आयु मान लेने से, वनवास के समय 25 और हरण के समय 38 वर्ष की होती हैं। यह कुछ विश्वसनीय भी प्रतीत होती है। तेरह वर्ष की उम्र में कन्या का विवाह तमाम सरकारी पाबन्दियों के बावजूद अब भी हो जाते हैं। चार दशक पूर्व तक तो रजस्वला होने से पूर्व कन्या का विवाह कर देना, बड़े पुण्य का कार्य माना जाता था। देहातों में तमाम सरकारी प्रतिबन्धों के बावजूद आज भी बाल विवाह होते ही हैं। 38 वर्ष की नारी का सौन्दर्य आज भी आकर्षक ही होता है। जिस काल में लोगों की आयु सैकड़ों वर्ष होती थी, उस काल में यह आयु तो यौवनारम्भ जैसी प्रतीत होती है, पूर्ण विकसित यौवन की आयु होगी वह। विवाह के समय राम 16 और सीता की आयु 13 वर्ष अधिक प्रामाणिक और युक्तिसंगत प्रतीत होती हैं। वनवास के तेरह वर्ष सकुशल निकाल देने के बाद चौदहवें वर्ष के आरम्भ में सीता का हरण हुआ था। अशोक वाटिका में हनुमान से भेंट होने तक सीताहरण को दस मास हो चुके थे। वे कहती हैं–

स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम।।
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंङ्गम।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम।।

(सु.का./37/7-8)

(तुम उनसे जाकर कहना, वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जब तक पूरा नहीं हो जाता, तभी तक मेरा जीवन शेष है। यह दसवां महीना चल रहा है। अब वर्ष पूरा होने में दो ही मास शेष हैं। निर्दयी रावण ने मेरे जीवन के लिये जो अवधि निश्चित की है, उसमें इतना ही समय बाकी रह गया है)।

स्पष्ट है दस माह हो जाने के बाद हनुमान ने राम को सीता के बारे में बताया। उसके बाद वे समुद्र पर पुल बनवा कर लंका पहुँचे। कोई साक्ष्य न मिलने पर भी ऐसा माना जाता है कि राम-रावण युद्ध चौरासी दिन चला था। इस हिसाब से सीता लंका में एक वर्ष से अधिक समय तक रही थीं। ❑❑

645 किशोर कुँज,
किशनपोल बाजार जयपुर-302001
मो.-9462312222

रामकथा में उत्तर-दक्षिण के सेतु ऋषि अगस्त्य

डॉ. एम. शेषन्

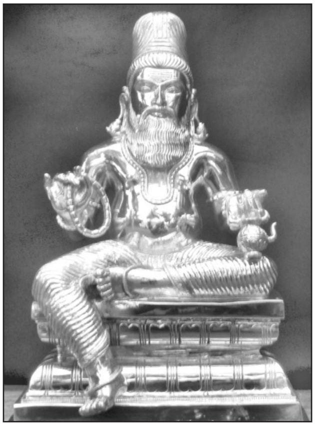

ऋषि अगस्त्य को तमिल साहित्यकार तमिल भाषा के आदि कवि के रूप में मानते हैं। तमिल साहित्य की परंपरा में यह मान्यता है कि ऋषि अगस्त्य ने ही तमिल भाषा का सर्वप्रथम व्याकरणशास्त्र रचा था। तमिल काव्य के तीन संगम कालों में प्रथम संगमयुगीन कवि के रूप में वे समादृत हैं। संप्रति उपलब्ध तमिल के प्रथम लक्षण ग्रंथ तौलकाप्पियम् के रचयिता तौलकाप्पियर के आप गुरू माने जाते हैं। तौलकाप्पियम् की रचना का समय लगभग 2500 पूर्व माना जाता है। तमिल साहित्य-परंपरा के अनुसार बौद्धधर्म के संस्थापक अवलोहित के नाम से प्रसिद्ध बोधिसत्व से आपने तमिल भाषा के व्याकरणशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था तथा भगवान शंकर और उनके पुत्र कार्तिकेय (मुरुगन्) से भी आपने तमिल भाषा एवं साहित्य का ज्ञान अर्जित किया था। इसका विस्तृत विवरण तमिल में रचित 'कन्द पुराणम्' नामक ग्रंथ में उपलब्ध है।

रामायण काव्य में इस बात का उल्लेख है कि भगवान श्रीराम ने ऋषि अगस्त्य का वन्दन और अभिनन्दन किया था। तमिल काव्यशास्त्र के सुविख्यात मर्मज्ञ एवं समीक्षक 'नच्चिनार्-क्-किनियर' ने अपनी समीक्षा में इस बात का उल्लेख किया है कि अगस्त्य मुनि ने महाभारत के भगवान कृष्ण से भेंट की थी और द्वारिकापुरी से 'पदिणेन् कुडिवेळिर' नामक लोगों को तमिलनाडु लाकर बसाया था। श्रमणग्रंथों में भी अगस्त्य का उल्लेख प्राप्त होता है। यह किंवदन्ती है कि वे दक्षिण-पूर्वी एशिया के सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों में जाकर तमिल शैव-धर्म को स्थापित करने वाले शैवगुरु एवं आचार्य माने जाते हैं। तमिल साहित्य के पुराकालीन प्रबन्धकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' तथा मणि मेखलै' तथा प्राचीन संगम काव्य के 'परिपाडल' में भी अगस्त्य मुनि का उल्लेख प्राप्त होता है। सुदूर तमिलनाडु के पाण्ड्य प्रदेश के चिन्नमन्नूर में प्राप्त वेळविक्कुडि ताम्रपट्टय' में यह उल्लेख प्राप्त है कि पाण्ड्य नरेश के आप राजगुरु और पुरोहित भी रहे। यह भी बताया जाता है कि तमिल के प्रसिद्ध शैवपुराण 'पेरियपुराणम्' की भांति अगस्त्य ने संस्कृत भाषा में 'भक्त विलासम्' नामक ग्रंथ की रचना की थी। तमिल साहित्य की परम्परा के अनुसार 'अगत्तियम' नामक तमिल के प्रथम व्याकरण-शास्त्र ग्रंथ के साथ ही 'सिरुकत्तियम्' तथा पेरुकत्तियम नामक और दो ग्रंथ भी रचे हैं। तमिल में यह कथा प्रचलित है कि भगवान शंकर तथा माता पार्वती का पाणिग्रहण विवाहोत्सव उत्तर में कैलाशपर्वत पर हुआ था। उस विवाह महोत्सव में भाग लेने वालों की अतिशय भीड़ के कारण हिमालय पर्वत नीचे धँसने लगा और दक्षिण भारत का भूभाग ऊँचा उठने लगा था। अतः उत्तर और दक्षिण दोनों भूभागों में समतुल्यता स्थापित करने के उद्देश्य से

भगवान शंकर ने ऋषि अगस्त्य को दक्षिण प्रदेश भेजा था। दक्षिण दिशा की ओर यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय अगस्त्य मुनि अपने साथ गंगा जल ले आये थे वही कावेरी नदी के रूप में प्रवाहित होने लगा।

वैष्णवों में यह मान्यता प्रचलित है कि द्वादश आलवारों के पाशुरम् (दिव्य स्रोत) गीतों का संपादन करने वाले नाथमुनि ने भी अगस्त्य से आज्ञा और अनुमति प्राप्त कर नालायिर दिव्य प्रबन्धम् (चार सहस्र पदावली) का संपादन किया था। आज भी तमिल लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि सुदूर तिरुनेलवेली जिला के 'पोदियमलै' (पोदिय पर्वत) में अगस्त्य वास करते हैं। ग्रीष्मकाल में लोग अगस्त्य के दर्शनार्थ 'पोदियमलै' की यात्रा करते हैं। यह पर्वत तिरुनेलवेली जिला के पापविनाशम् नामक झरने के ऊपर स्थित पुण्यतीर्थ माना जाता है। उसके भी ऊपर 'कल्याण तीर्थ' और 'बाणतीर्थ' आदि हैं। लोग तीन-चार दिन की यात्रा के उपरान्त पर्वतारोहण करते हुए अगस्त्य के दर्शन कर आनन्द लाभ प्राप्त करते हैं। तमिलों में यह विश्वास प्रचलित हैं कि तमिल भूमि न केवल तमिलभाषा की बल्कि 'सिद्ध वैद्यशास्त्र' की जन्मभूमि है। सिद्ध वैद्यशास्त्र के अनेक ग्रंथ तमिल भाषा में उपलब्ध हैं। सिद्ध वैद्यशास्त्र में महर्षि अगस्त्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यही नहीं अठारह सिद्धपुरुषों की परंपरा में भी महर्षि अगस्त्य का नामोल्लेख है।

इस प्रकार साहित्य, व्याकरण शास्त्र, भक्ति, वैद्यशास्त्र, धर्म आदि विभिन्न क्षेत्रों में बहुमुखी प्रतिभासंपन्न महर्षि अगस्त्य तमिल-संस्कृत, शैव-वैष्णव, श्रमणधर्म-बौद्धधर्म, रामायण-महाभारत, उत्तर-दक्षिण, हिमालय-कन्याकुमारी, गंगा-कावेरी, उत्तर भारतवासी-दक्षिण भारत वासियों के बीच सद्भावना, और सौहार्द भाव स्थापित करने वाले महर्षि के रूप में भारतीय संस्कृति में अत्यंत समादृत पुरुष हैं। विशेष रूप से, प्राचीन तमिल भाषा, द्रविड़ जाति, धर्म और इन सबसे ऊपर उठकर भारतीय संस्कृति के इतिहास में एक शलाका पुरुष के रूप में समादृत हैं। भारतीय भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता के प्रतीक के रूप में महर्षि अगस्त्य का शीर्ष स्थानीय महत्व है। ❑❑

'गुरु कुरुपा' 790, डॉ. ए. रामास्वामी सलाई
के. के. नगर (पश्चिम), चेन्नै-600078

[वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में गोदावरी नदी के तट पर दण्डकारण्य में स्थित पंचवटी (नासिक) का मनोहर वर्णन है जहां कुटी बनाकर वनवास के दौरान राम ने सीता व लक्ष्मण सहित निवास किया था। यहीं से रामकथा घटनात्मक विस्तार प्राप्त करती है जहां लंकेश रावण द्वारा नियुक्त दण्डकारण्य की प्रशासक रावण की बहिन शूर्पनखा का लक्ष्मण ने नाक काटा और राम ने उसके सहायकों खर-दूषण का वध किया। पश्चात रावण ने सीता-हरण किया जिसमें सहायक रहे मारीच का वध राम के हाथों हुआ। सीता को बलात ले जा रहे रावण से ग्रिध्रराज जटायु ने युद्ध कर प्राणोत्सर्ग किया। दण्डकारण्य में राम विभिन्न ऋषियों के आश्रमों में गये। इनमें सर्वाधिक पूज्य सप्तर्षियों में परिगणित अगस्त्य के आश्रम में जाकर राम ने उनसे आशीर्वाद, धनुष और मंत्र प्राप्त किया। पुराणों में इन्हें ब्रह्मा का या मित्रावरुणी का पुत्र बताकर महर्षि वशिष्ठ का भाई बताया गया है। दूसरी मान्यता है कि ये ब्रह्मा-पुत्र महर्षि पुलस्त्य के पुत्र थे और विश्रवा के भाई थे जो रावण का पिता थे। महर्षि अगस्त्य मंत्रद्रष्टा थे, ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 165 से 191 के सूक्तों की रचना इन्होंने की थी। विदर्भ-नरेश ने अपनी विदुषी पुत्री लोपामुद्रा का विवाह महर्षि अगस्त्य से किया था। दक्षिण भारत में मान्यता है कि तमिल प्रदेश के पांड्य-राजा मलयध्वज ने अपनी पुत्री कृष्णेक्षणा का विवाह इनसे किया था। इनके पुत्र दृढ़च्युत और उसके पुत्र इध्मवाहन भी ऋग्वेद के नवम् मंडल के क्रमशः 25वें तथा 26वें सूक्त के द्रष्टा ऋषि हैं। ऋषि अगस्त्य ने ही इन्द्र और मरुतों में संधि कराई थी। अगस्त्य उत्तर भारत से विंध्याचल को लांघकर दक्षिण भारत जाने वाले प्रथम आर्य ऋषि थे। इनके समय में श्रुतर्वा, बृहदस्थ और त्रसदस्यु नामक सूर्यवंशी राजा हुए जिन्होंने इनके नेतृत्व में महाबली दैत्यराज इल्वल और वातापी को शक्तिहीन कर दिया था। दक्षिण भारत में, विशेषतः तमिल प्रदेश में ऋषि अगस्त्य सर्वाधिक पूज्य हैं। इनके वंशजों को यहां आगस्त्य या अगस्त्य-वंशी कहा जाता है। अगस्त्य की 'अगस्त्य संहिता' में आश्चर्यजनक रूप से विद्युत उत्पादन, पानी को प्राणवायु तथा उदानवायु में परिवर्तित करने, कृत्रिम स्वर्ण, शतकुंभ नौकाचालन और विद्युत वहन तथा संदेशवहन के लिए धातु-रज्जु, आकाश में उड़ने वाले गर्म गुब्बारे, वायुपरण वस्त्र बनाने जैसे सूत्र मिलते हैं। - सम्पादक]

राम के जीवन में वनवासी

प्रमोद भार्गव

प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रंथों में रामायण जनमानस में सबसे ज्यादा लोकप्रिय ग्रंथ है। भारत के सामंत और वर्तमान संवैधानिक भारतीय लोकतंत्र में राम के आदर्श मूल्य और रामराज्य की परिकल्पना प्रकट अथवा अप्रगट रूप में हमेशा मौजूद रही है। अतएव रामायण कालीन मुल्यों ने भारतीय जन-मानस को सबसे ज्यादा उद्वेलित किया है। इस जन समुदाय में रामकथाओं में उल्लेखित वे सब वनवासी जातियां भी शामिल हैं जिन्हें वानर, भालू, गिद्ध, गरुड़, भील, कोल, नाग इत्यादि कहा गया है। यह सौ प्रतिशत सच्चाई है कि ये लोग वन-पशु नहीं थे। इसके उलट वन प्रांतों में रहने वाले ऐसे विलक्षण समुदाय थे, जिनकी निर्भरता प्रकृति पर अवलंबित थी। उस कालखंड में इनमें से अधिकांश समूह वृक्षों की शाखाओं, पर्वतों की गुफाओं या फिर पर्वत शिखरों की कंदराओं में रहते थे। ये अर्धनग्न अवस्था में रहते थे और रक्षा के लिए पत्थर और लकड़ियों का प्रयोग करते थे। इसलिए इन्हें जंगली प्राणी का संबोधन कथित सभ्य समाज करने लगा। अलबत्ता सच्चाई यह है कि राम को मिले चैदह वर्षीय वनवास के कठिन समय में ये जंगली मान लिए गए आदिवासी समूह राम-सीता एवं लक्ष्मण के जीवन में नहीं आए होते तो राम की आज जो पहचान है, वह संभव नहीं थी। राम ने लंका पर विजय इन्हीं वनवासियों के बूते पाई। जिन वन्य-प्राणियों के नाम से इन वनवासियों को रामायण काल में चिह्नित किया गया है, संभव है, ये लोग अपने समूहों या कबीलों की पहचान के लिए उपरोक्त प्राणियों के मुख के मुखौटे धारण करते हों। रांगेय राघव ने अपनी पुस्तक 'महागाथा' में यही अवधारणा दी है।

रामायण में आदिवासियों की महिमा का प्रदर्शन बालकांड से ही आरंभ हो जाता है। राजा दशरथ के साढू अंगदेश के राजा लोमपाद हैं। उनके संतान नहीं होने पर दशरथ, पत्नी कौशल्या से जन्मी पुत्री शांता को बाल्यावस्था में ही लोमपाद को गोद दे देते हैं। अंगदेश में जब भयंकर सूखा पड़ा, तब आदिवासी ऋषि ऋष्यशृंग को बुलाया जाता है। ऋषि विभाण्डक के पुत्र शृंगी अंगदेश में पहुँचकर यज्ञ के माध्यम से वर्षा के उपाय करते हैं। अंततः मूसलधार बारिश हो भी जाती है। उनकी इस अनुकंपा से प्रसन्न होकर लोमपाद अपनी दत्तक पुत्री शांता का विवाह शृंगी से कर देते हैं। कालांतर में जब दशरथ को अपनी तीनों रानियों कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा से कोई संतान नहीं हुई, तब बूढ़े दशरथ चिंतित हुए। मंत्री सुमन्त्र से ज्ञात हुआ कि शृंगी पुत्रेष्ठि यज्ञ में दक्ष हैं। तब मुनि वशिष्ठ से सलाह के बाद शृंगी ऋषि को अयोध्या आमंत्रित किया गया। ऋष्यशृंग ने यज्ञ के प्रतिफल स्वरूप जो खीर तैयार की उसे तीनों रानियों को खिलाया। तत्पश्चात कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा की कोख से लक्ष्मण व शत्रुघ्न का जन्म हुआ। इस प्रसंग से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि वनवासियों में महातपस्वी ऐसे ऋषि भी थे, जो कृत्रिम वर्षा और गर्भधारण चिकित्सा विधियों के जानकार थे। रामायण काल की अवधि

में किसी आदिवासी की प्रतिभा की यह अति महत्वपूर्ण आरंभिक सार्थक उपस्थिति है। वनवास में राम जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे पग-पग पर वनवासी उनके सहयोग के लिए तत्पर खड़े हैं। हालांकि राम का प्रत्यक्ष दिशा-निर्देश वनों में रहने वाले ऋषि करते हैं, लेकिन जब उन्हें सीता-हरण के बाद सीता की खोज और फिर रावण से युद्ध के लिए योद्धाओं की जरूरत पड़ती है तो यही संगठित वनवासी आदिवासी समुदाय राम का साथ देते हैं।

राम को वनगमन के बाद पहला साथ निषादराज गुह का मिलता है। इलाहाबाद के पास स्थित शृंगवेरपुर से निषाद राज्य की सीमा शुरू होती है। निषाद को जब राम के आगमन की खबर मिलती है तो वे स्वयं राम की अगवनी के लिए पहुँचते हैं। हालांकि निषाद वनवासी नहीं हैं, लेकिन वे शूद्र मानी जाने वाली जातियों के समूह में हैं जिन्हें ढीमर, ढीबर, मछुआरा और बाथम कहा गया है। निषाद लोग शिल्पकार थे। उत्कृष्ट नावें और जहाजों के निर्माण में ये निपुण थे। निषाद के पास पांच सौ

नौकाओं का बेड़ा उपलब्ध होने के साथ यथेष्ट सैन्य शक्ति भी मौजूद थी। जब राम को वापस अयोध्या ले जाने की भरत की इच्छा पर संदेह होता है तो निषाद राम-लक्ष्मण की रक्षा का भरोसा अपनी सेना के बूते जताते हैं। किंतु राम अपने भ्राता पर अटूट विश्वास करते हुए कुशंकाओं का पटाक्षेप कर देते हैं। भरत-मिलन के बाद निषाद ही अपनी नौका पर राम, लक्ष्मण और सीता को बिठाकर गंगा पार कराते हैं। शूद्रों में निषाद राज गुह ऐसे पहले व्यक्ति थे, जो राम को कौशल राज्य की सीमाओं के बाहर सुरक्षा का भरोसा देते हैं।

राम के वन में आगे बढ़ते जाने के साथ उनसे अत्रि,

वाल्मीकी, भरद्वाज, अगस्त्य, शरभंग, सुतीक्ष्ण, माण्डकणि और मतंग ऋषि मिले। निसंदेह वनवासियों के बीच वन-खंडों में रहने वाले इन ऋषियों ने ही राम का मार्ग प्रशस्त किया। ऋषियों की जो वेधशालाएं, अग्निशालाएं और आश्रम थे, उन पर राक्षस तो आक्रमण करते हैं, लेकिन वनवासियों ने किसी ऋषि को कष्ट पहुँचाया हो, ऐसा वाल्मीकी रामयण में ही नहीं अन्य रामायणों में भी उल्लेख नहीं मिलता। यहां प्रश्न खड़ा होता है कि ऋषि जब वन-खंडों में अपनी गतिविधियों को संचालित रखे हुए थे, तो उनका सरंक्षण और सहयोग कौन कर रहे थे? उनकी वेधशालाओं में अस्त्र-शस्त्रों के शोध व निर्माण में सहयोगी कौन थे? वे उन आश्रमों में किसे शिक्षित कर रहे थे? जबकि उन आश्रमों के आस-पास ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य जातियां तो रह ही नहीं रही थीं? स्पष्ट है, ऋषि अनार्यों अर्थात राक्षसों से लुक-छिपकर एक तो वनवासियों के एकत्रीकरण में लगे थे, दूसरे वनवासियों को ही शिक्षित व दीक्षित कर रहे थे। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि रामायण में राम और ऋषियें के बीच जो भी संवाद हैं, उनमें ऋषियों ने कभी नहीं कहा कि वनवासी हमारी गतिविधियों में हस्तक्षेप करते हैं। बल्कि ऋषियों और वनवासियों के बीच इतना अतरंग मैत्री भाव था कि जब बाली और सुग्रीव के बीच संग्राम छिड़ता है तो वे मतंग ऋषि ही थे, जो दोनों भाइयों के बीच सुलह कराते हैं और सुग्रीव को ऋष्यमूक पर्वत पर रहने की आज्ञा देते हैं। बाद में यही सुग्रीव सीता की खोज और रावण से हुए युद्ध में किष्किंधा की सेना को झोंक देते हैं।

राम से पहले ही दक्षिण के वनांचलों में रह रहे ऋषियों का वनवासियों से संघर्ष नहीं है, इससे यह संदेश स्पष्ट है कि ऋषि इन जंगलों में इन जातियों के बीच रहकर उन्हें आर्य धर्म के सूत्र में पिरोने और उनके कल्याण

में संलग्न थे। यह दृष्टिकोण इसलिए भी सीमाचीन है, क्योंकि इस ओर लंकाधीश रावण की निगाहें थीं और वह इन जातियों को शूर्पनखा, खर व दूषण के माध्यम से रक्ष अर्थात अनार्य संस्कृति में ढालने में लगा था।

राम अनार्य संस्कृति के विस्तार में बाधा बनें, इस दृष्टि से ही अगस्त्य राम को पंचवटी में भेजते हैं और पर्ण-कुटी बनाकर वहीं रहने की सलाह देते हैं। यहीं से राम के वनगमन में ऐतिहासिक मोड़ आता है। राम को जब पता चलता है कि शूर्पनखा का पुत्र शंबूक 'सूर्यहास खंग' नामक विध्वंसक शस्त्र का निर्माण कर रहा है तो राम, लक्ष्मण को भेजकर शंबूक को मरवा देते हैं। शंबूक इसलिए दानव कहा गया है, क्योंकि शूर्पनखा का विवाह दानव कालिका के पुत्र विद्युतजिव्ह से हुआ था। रावण जब दिग्विजय पर निकला था, तब उसने कालकेय दानवों के राजा अश्मनार पर हमला बोला था। विद्युतजिव्ह कालकेयों के पक्ष से लड़ा। रावण ने रणोन्मत्त होकर कालकेयों को तो परास्त किया ही विद्युतजिव्ह का भी वध कर दिया।

इस समय शूर्पनखा गर्भवती थी। रावण को अपने किए पर पश्चाताप हुआ। शूर्पनखा भी उसे भला-बुरा कहती है। अंततोगत्वा रावण शूर्पनखा को त्रिशिरा के साथ भेजकर दण्डकवन की अधिष्ठात्री बना देता है। इस क्षेत्र में खर और दूषण पहले से ही तैनात थे। इसी दण्डकवन क्षेत्र में राम ने पंचवटी का निर्माण किया था। पंचवटी के निर्माण पर शूर्पनखा को आपत्ति थी। इसी विरोध का परिणाम शंबूक-वध और शूर्पनखा के अंग-भंग के रूप में सामने आया। बाद में जब रावण को इन घटनाओं की खबर लगी तो वह छद्म-भेष में सीता का हरण कर ले जाता है। जटायु ने जब एक स्त्री को बलात रावण द्वारा ले जाते हुए देखा तो उसने पुष्पक विमान पर सवार रावण पर हमला बोल दिया। हालांकि जटायु मारा गया। लेकिन जटायु ऐसा पहला वनवासी था, जिसने एक अनजान अनभिज्ञ स्त्री सीता की प्राण रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया। राम ने भी कृतज्ञता दिखाई, वे उसके समाज के लोगों के साथ अपने हाथों उसकी विधिपूर्वक अंत्येष्टि करके ही आगे बढ़ते हैं। मरने से पूर्व जटायु ने राम को बता दिया था कि सीता का हरण रावण ने किया है। *(प्रश्न है कि जब जटायु ने राम को बता दिया था कि सीता को रावण ले गया है, तो राम क्या नहीं जानते थे कि रावण कौन है और कहाँ का राजा है? - सम्पादक)* संभवतः यह पहला अवसर था, जहां से राम और वनवासी जातियों के बीच परस्पर सहयोग का व्यवहार पनपा।

जटायु के बाद वनवासी महिला शबरी ने सीता हरण के प्रसंग में राम को सुग्रीव के पास भेजा। यहीं राम शबरी की भावना का आदर करते हुए कृतज्ञता से उसके जूठे बेर भी चाव से खाते हैं। (वाल्मीकि रामायण से इतर रामायणों में तो यहां तक जानकारी मिलती है कि शबरी लंका की गुप्तचर होने के साथ विभीषण की विश्वसनीय थी। इस मुलाकत के दौरान वह राम को विभीषण का एक संदेश भी देती है। इस संदेश से सीता के लंका में होने की पुष्टि होती है।)

उक्त घटनाक्रमों के बाद राम और सुग्रीव की वह मित्रता है, जो राम को रावण से युद्ध का धरातल देती है। सुग्रीव वनवासियों की एक प्रजाति वानर से है। बाली सुग्रीव का सगा भाई है, जो किष्किंधा राज्य का राजा है। बाली ने सुग्रीव को किष्किंधा से निष्कासित कर उसकी पत्नी रूमा को भी अपनी पत्नी बना लिया है। बाली इतना शक्तिशाली है कि रावण भी उससे पराजित हो चुका है, इसके बाद दोनों में मित्रता कायम हुई और एक-दूसरे

के सहयोगी बन गए। हालांकि रावण से बाली की मित्रता एक विवशता थी, क्योंकि बाली रावण पर भारी पड़ा था। राम बाली की ताकत से परिचित थे। तत्पश्चात भी उन्होंने अपेक्षाकृत कमजोर सुग्रीव से मित्रता की, क्योंकि बाली शक्ति का भय दिखाकर शासन चला रहा था। इस कारण अनेक वानर किष्किंधा से पलायन कर गए थे। राम ने

उदारता दिखाते हुए पहले बाली को मारा और फिर सुग्रीव को किष्किंधा के राज-सिंहासन पर बिठाया। *(बाली को मारना राम की कूटनीति थी क्योंकि रावण के मित्र बन चुके और बलवान बाली से सहयोग की अपेक्षा नहीं थी। कमजोर और बाली से पीड़ित सुग्रीव से ही मित्रता संभव व फलदायी थी और इसके लिए बाली-वध कूटनीतिक था जो छद्म से ही संभव था जैसा कि राम ने किया। -सम्पादक)।* तत्पश्चात अपने हित, यानी सीता की खोज में जुट जाने की बात कही। बाली की मृत्यु और राम व सुग्रीव की मित्रता की जानकारी फैलने के बाद वे वानर किष्किंधा लौट गए, जो बाली के भय से भाग गए थे। यहीं से राम को एक और वनवासी ऋक्ष जाति के ऋक्षराज जाम्बवंत और अन्य वानरगणों हनुमान, नल, नील, अंगद, तार और सुषेण का साथ मिला। इनमें हनुमान तीक्ष्ण बुद्धि होने के साथ दुभाषिए भी थे। सीता की खोज में वानरों की मदद स्वयंप्रभा नाम की एक वनवासी तपस्विनी और गंधमादन पर्वत पर रहने वाला संपाती और उसका पुत्र सुपार्श्व भी करते हैं।

मध्य-प्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ वनवासी समुदायों द्वारा रावण की पूजा के कारण यह धारणा कुछ विद्वानों ने स्थापित करने की कोशिश की है कि रावण और उसकी लंका छत्तीसगढ़ में थी। डॉ. हसमुख संकलिया ने छत्तीसगढ़ के कुछ आदिवासी समूहों से बातचीत के आधार पर यह कल्पना कर डाली कि रावण की लंका, वर्तमान सिंहल द्वीप में मौजूद लंका नहीं है, बल्कि बस्तर के क्षेत्र में थी। दरअसल बस्तर के माड़िया गोंड आदिवासी समूह रावण को आदर की दृष्टि से देखते हैं। गोंडों की एक बड़ी आबादी आज भी रावण की पूजा अर्चना करती है। गोया, वे अपने को रावणवंशी कहते हैं। मध्यप्रदेश के मंडला और बालाघाट जिलों में रावणवंशी गोंडों की संख्या बहुत अधिक है। सांकलिया के इस मत का समर्थन रामायणों पर महत्वपूर्ण काम करने वाले डॉ. फादर कामिल बुल्के भी करते हैं। रावण की पूजा और उसे अपने वंश का बताने की बात गोंडों के अलावा भैना, उराओं, बिर्हिर आदिवासी भी करते हैं। इन समुदायों के वनवासियों में गीध गौत्र पाया जाता है। एक धारणा यह भी है कि रावण का संबंध गीध जाति से था। उरा, असुर, खिरिया आदि जातियों की भाषा में 'रावना' शब्द गीध अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। रांची जिले के कटकया गांव में वर्तमान में एक रावना परिवार है। ये सब अपनी उत्पत्ति रावण से मानते हैं। मध्यप्रदेश के जिला मुख्यालय मंदसौर में रावण की एक बृहद दसमुखी मूर्ति प्रतिष्ठित है। इसे यहां के सेन (नाऊ) समाज ने स्थापित किया किया है। यह समाज भी अपनी उत्पत्ति रावण के वंश से जोड़कर देखता है। नीलगिरि में शूर्पनखा की अब तक पूजा होती है। मलयाली नामक जाति की स्त्रियां, शूर्पनखा की संतान मानी जाती हैं। भोपा नामक जाति में आज भी 'रावण-हत्था' नामक वाद्य यंत्र प्रचलन में है। रावण संगीत का विशेषज्ञ था। ऐसा भी माना जाता है कि वीणा का आविष्कार रावण ने ही किया था। इस वाद्य यंत्र की सचित्र जानकारी महाराष्ट्र में पुणे के पास स्थित लोनी में बने राजकपूर संग्रहालय के संगीत कला केंद्र में मौजूद है।

हम सब भली-भांति जानते हैं कि भृगवंशी ऋषि पुलस्त्य का विवाह तृणबिंदु की पुत्री इलविला से हुआ था। *(पुलस्त्य का विवाह तृणबिन्दु की पुत्री इलविला से हुआ था जिससे विश्रवा का जन्म हुआ। विश्रवा का विवाह भरद्वाज की पुत्री से हुआ। -सम्पादक),* किंतु इन्होंने एक अन्य विवाह दैत्य कन्या कैकसी से भी किया था। इसी कैकसी ने रावण, कुंभकरण, विभीभिषण और शूर्पनखा को जन्म दिया। साफ है, रावण एक वर्णसंकर ब्राह्मण-दैत्य संतान था। लेकिन जो वनवासी समुदाय स्वयं को रावण का वंशज मानते हैं, उनमें भी सच्चाई है। दरअसल, रावण की लंका का साम्राज्य उत्तर भारत तक विस्तृत था। शूर्पनखा, खर और दूषण इन राज्यों के अधिपति थे। यहां यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि रावण की अनेक रानियां थीं। इनमें दक्षिण भारत की भी थीं। ऐसे में इन जातियों द्वारा स्वयं को रावण को वंशज मानना, अजरज नहीं एक सच्चाई है।

❑❑

शब्दार्थ, 49 श्रीराम कॉलोनी

शिवपुरी म.प्र.

मोबाइल 09425488224, 09981061100

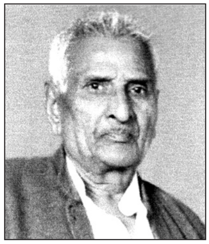

गृध्रराज जटायु

रामशरण युयुत्सु

रामकथा में वानर, ऋक्ष (रीछ), गृध्र (गीध) आदि का राम से मिलना और उनकी सेना बन जाना वर्णित है। परंतु यहां हमें इस विषय पर यह विचार करना होगा कि ये सभी पराक्रमी पशु-पक्षी ही थे या मानव? जटायु को मानव-श्रेणी में मानने में सभी पुराण झूठलाते हैं। कुछ प्रसंग ऐसे लगते हैं, जो मानवीय शक्ति ही नहीं उससे परे प्रतीत होते हैं। जटायु आदि के भी पूर्वज कश्यप ऋषि ही रहे हैं। उन्हीं के वंश में विनता गरुड़ की मां और उसके नाते-गोते में जटायु और संपाती (दोनों भाई) पैदा हुए।

इनकी माता का नाम श्येनी था तथा पिता अरुण और बड़े भाई का नाम संपाति था (महाभारत आदि 66/69-70) जटायु कश्यप संतति का था। वह गरुड़ का बंधु था।[1] गरुड़ को साधारणतः पक्षी योनि में माना जाता है। गरुड़ के परिचय में उसे विष्णु का वाहन और पक्षीराज कहा गया है जिसे भारतीय मूर्तिकला में आधे पक्षी और आधे मानव के रूप में मूर्त किया गया है। गरुड़ को कश्यप तथा दक्ष कन्या विनता का पुत्र माना जाता है।[2] जटायु का प्रसंग राम कथा से संबंधित है। उसका संपूर्ण व्यवहार मानव जैसा लगता है। जटायु ज्योतिष शास्त्र जानता हुआ दिखाई देता है, क्योंकि उसने कहा था जिस मुहूर्त में रावण ने सीता का हरण किया है, उसमें खोई हुई वस्तु वापिस मिलेगी।[3]

बलवान, इच्छारूपी, माया जानने वाले, वायु के समान गतिशील, बुद्धिमान, अजेय, नीतिज्ञ, विविध उपायों के जानकार, अस्त्र विद्या संपन्न तथा दिव्य शरीरधारी गुणों से युक्त 'वानर' शब्द से वाल्मीकि का क्या तात्पर्य हो सकता है, यह समझने में कठिनाई नहीं होगी। वे लोग वनवासी थे, अतः वननर कहलाते होंगे।[4] यहां तक कि रीछ गोलांगुल भी मनुष्य ही थे। वाल्मीकि ने लिखा है - जो देवता गोलांगूल के रूप में आये थे, वे देवतावस्था से भी अधिक पराक्रमी थे। वे दांतों तथा नखों से लड़ने के साथ सभी अस्त्र विद्याएं भी जानते थे– नखदंष्ट्रायुधा सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः। (1.17.26)।

रामायण काल में भारत के पश्चिमी समुद्र तट और उसकी समीपवर्ती पर्वत-श्रेणियों पर एक जाति निवास करती थी। यह बड़ी शक्तिशाली और यायावरी प्रवृति की जाति थी। यह गृध्रों और सुपर्णों की जाति थी। इस जाति के नेता संपाति और जटायु थे। ये दोनों सगे भाई थे। इन दोनों भाइयों के मरने के बाद गृध्रों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।[5] भ्रमणशीलता इनका स्वभाव था। इनके नेता जटायु तथा संपाति भ्रमण करते हुए एक बार सूर्य लोक तक जा पहुंचे थे, पर सूर्य के तेज को सहन न कर सकने के कारण जटायु तो बीच से ही वापस लौट आया और दूसरा संपाति अपने अभिमान में सूर्य तक पहुंच गया था। वह वहां अधिक समय तक टिक नहीं सका और सूर्य के तेज से आहत हो दक्षिण दिशा में समुद्र तट पर गिरा

और वहीं पर्वत कंदराओं में रहने लगा। जटायु ने अपना स्थायी निवास पंचवटी क्षेत्र में बना लिया था।

पंचवटी जाते समय राम जटायु से मिले। राम द्वारा परिचय पूछने पर इन्होंने अपने को श्रीराम के पिता (दशरथ) का मित्र बताया (वा.रा. 3.14.1-3)। राम द्वारा इनका नाम और वंश परिचय पूछने पर इन्होंने अपना विस्तृत परिचय देते हुए श्रीराम को सृष्टि का भी इतिहास बताया (वा.रा. 3.14, 5-32)। श्रीराम और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में इन्होंने सीता की रक्षा करने का भार लिया, जिसका इन्होंने अंतिम सांसों तक एक पिता तुल्य निर्वहन किया। शक्ति, शौर्य और पराक्रम संपन्न इस गृध्र जाति को वाल्मीकि और तुलसी ने पक्षी बतलाया है, पर यथार्थतः ये पक्षी नहीं मनुष्य थे। इस संबंध में श्री अविनाश चन्द्र दास का स्पष्ट मत है कि प्राचीन भारत की कुछ घुमन्तू जातियां अपने पर्यटनशील स्वभाव के कारण पक्षियों-गृध्रों या सुपर्णो के नाम से संबोधित की जाती थी।[6] वाल्मीकि रामायण और तुलसी के रामचरित मानस में इस जाति का विस्तृत परिचय नहीं मिलता तथा संकेत रूप में जितना भी उल्लेख है, वह भी बड़ी विचित्रताओं से भरा हुआ है। विचित्रता यह कि इन कृतियों में प्राप्त उल्लेख एक और जहां इस जाति को पक्षी सिद्ध करता है, तो दूसरी ओर इनके आचार-विचार, क्रिया-कलाप और स्वभाव में मानवीय संस्कृति का दिग्दर्शन करता है। निस्संदेह यह जाति शक्तिशाली और दूरदर्शी थी। इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता अपार-दृष्टि और तीव्रगामिता व आकाश-संचरण थी। जटायु ने राम के प्रति प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया था (वा.रा. 3/14/6-33) और संपाति ने वानरों को पक्षियों के विविध भेद बताये थे (वा.रा. 4/58/24-27)। रामायण के ऐसे वर्णनों के अध्ययन से प्रतीकवाद (टोटेमिज्म) तथा उसके भेदों के संबंध में बहुत कुछ संकेत मिल जाते हैं। इस प्रकार का मार्गदर्शन तो कोई बुद्धिमान और अनुभवी व्यक्ति ही दे सकता है। किसी पक्षी का इस स्तर पर पहुंच जाना कुछ संभव-सा नहीं लगता।

इनकी प्रकृति, प्रवृति, स्वभाव, आचार-विचार, रीति-नीति के विश्लेषण से यह निस्संदेह निरूपित किया जा सकता है कि रामकालीन अनार्य जातियों में गृध्र जाति एक ऐसी मानव जाति थी, जिसके घनिष्ठ और आत्मीय संबंध तत्कालीन आर्य जाति से थे। जटायु अवध नरेश महाराज दशरथ के सखा थे- उवाच वत्स मां विद्धि वसस्यं पितुरात्मनः (वा.रा. 3/14/3)। दशरथ शनि की दृष्टि से भस्म होकर नीचे गिरने ही वाले थे कि जटायु ने उन्हें बचा लिया। पद्म पुराण में यह कथा विस्तार से दी गई है।[7] पंचवटी में राम-लक्ष्मण के मृगयार्थ चले जाने पर एक पिता की तरह जटायु सीता की रखवाली करता था। रावण के बंधन में सभीत मृगी की तरह विलाप करती सीता को सांत्वना देते हुए जटायु उनके लिए पुत्रि संबोधन प्रयुक्त करता है-सीते पुत्रि! करसि जनि त्रासा। करिहहु जातुधान कर नासा।। (मानस 3/29/9)। रावण के बंधन से सीता को मुक्त कराने के प्रयास में ही जटायु की मृत्यु हुई, जिसका दाह-संस्कार स्वयं राम ने स्वबंधुवत अपने हाथों से किया था-ददाह रामो धर्मात्मा स्वबंधुमिव दुःखितः (वा.रा.3/68/2)। दक्षिण दिशा में सीतान्वेषण हेतु गया हुआ वानर दल जब हताश हो समुद्र तट पर बैठा हुआ था। तब संपाति ने पर्वत गुफा से निकलकर जटायु के भाई के रूप में अपना परिचय दिया था। संपाति ने अपने दिवंगत भाई को जलांजलि भी अर्पित की थी-ततः कृतोदर्क स्रातं तं गृध हरियूथपाः (वा.स. 4/60/1)।

सीता हरण कर जा रहे रावण के साथ युद्ध करते हुए जटायु की शक्ति का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उसने रावण के बाल पकड़कर रथ से नीचे उतार लिया था और रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा

था।[8] रावण को अपना परिचय देते हुए कहा -'मैं प्राचीन धर्म में स्थित, सत्यप्रतिज्ञ और महाबलवान गृध्रराज जटायु हूं। ..... अपने पूर्वजों से प्राप्त इस पक्षियों के राज्य का

विधिवत् पालन करते हुये मेरे जन्म से लेकर अब तक साठ हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। तुम सीता को लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकोगे।' ऐसा कहकर इन्होंने रावण को द्वंद्व युद्ध के लिये ललकारा (वा.रा. 3.50, 3-28)। तदन्तर क्रोध में आकर रावण ने तलवार से इनके दोनों पंख, पैर तथा पार्श्व भाग काट दिये जिससे रक्त रंजित हो धरती पर गिर पड़े (वा.रा. 3.51.1-44)। 'इनके शरीर की कांति नील-मेघ के समान और छाती का रंग श्वेत था। ये अत्यंत पराक्रमी थे (वा.रा. 3.51, 45)।' इस प्रसंग पर चिंतन करके तो सहज ही कहा जा सकता है कि इस प्रकार का घमासान युद्ध तो कोई पराक्रमी, वीर योद्धा ही कर सकता है, कोई पक्षी नहीं।

राम कथा से संबंधित ग्रंथों में अलोकिकताओं और अतिरंजनापूर्ण वर्णनों को यदि आधुनिक संदर्भों में ग्रहण किया जाए, तो निष्कर्ष यही निकलता है कि जटायु और संपाति मानवीय मूल्यों के संरक्षक श्रेष्ठ मानव ही थे। जहां तक इनकी नभचारिता और पंख संयुक्तता का प्रश्न

जटायु नेचर पार्क कोल्लम, केरल

है उसे हमें लाक्षणिक अर्थ में स्वीकार करना चाहिए। पंख युक्तता प्रतीकवाद के कारण है।

संदर्भ :

1. डॉ. शेख मौला अली, कविता ऐनम्पूडी, वाल्मीकि रामायण के पात्र, प्रथम भाग, लक्ष्मी हिंदी विद्यालय, गुण्टूर, पृ.-199।
2. भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय व्यक्ति कोष, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, पृ.-67।
3. विश्वनाथ मिये, वाल्मीकि के ऐतिहासिक राम, सरस्वती विहार दिल्ली, पृ.-205।
4. उपरोक्त पृ.- 65-66।
5. डॉ. श्याम स्नेही लाल शर्मा, अंगिरापुरत्र मासिक जीन्द, अक्तूबर 1997, पृ.-7, महाभारत वन. 285/49-50।
6. अविनाशचन्द्र दास, ऋग्वैदिक इंडिया, पृ.-148।
7. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय व्यक्ति कोष, आर्यबुक डिपो, नई दिल्ली-पृ.-79।

❑❑

श्री अंगिरा शोध संस्थान,
390/5 शांतिनगर, पटियाला चौक,
जीन्द-126102 (हरियाणा)

जटायु तीर्थ, गोकर्ण, कर्नाटक

रामकथा में वर्णित वानर-रींछ पशु नहीं, मनुष्य थे

डॉ. आर. के. पोहिया

रामकथा में वनवास के दौरान रावण-विजय के लिए गठित सेना में वानर थे और रींछ या भालू जाम्बवान थे। वानर का एक अर्थ बन्दर होता है तथा दूसरा अर्थ वन में विचरण करने वाला बाली वानर-सुग्रीव दो भाई थे। बाली इन्द्र के पुत्र थे तथा सुग्रीव सूर्य के पुत्र थे। बाली की पत्नी का नाम तारा था तथा सुग्रीव की पत्नी का नाम रूमा था। वैद्य सुषेण इनके ससुर थे। वानर बाली-सुग्रीप व हनुमान और भालू या रींछ (ऋक्ष) जाम्बवन्त योद्धा थे। रामकथा में वर्णित ये सब मनुष्य थे पशु नहीं। जाम्बवन्त जी की पुत्री का नाम जाम्बवती था, जो श्रीकृष्ण भगवान को व्याही थी। वह मनुष्य थी तभी तो मनुष्य श्रीकृष्ण को व्याही थी। जाम्बवन्त भालू नहीं, मनुष्य थे। अज्ञानी एवं अंध परम्परा भक्त अब भी रामायणों और टीवी सीरियलों में जाम्बवन्त को भालू ही दिखा रहे हैं। वानरराज बाली की पत्नी तारा को पंच कन्याओं में भी माना जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि तारा मनुष्य थी, न कि वानरी। वाल्मीकीय रामायण में कहीं भी जाम्बवन्त जी को भालू नहीं माना है। हनुमान जी को अष्ट सिद्धियां एवं नव-निधियाँ प्राप्त होने के कारण यथा-अवसर कुछ भी रूप धारण कर सकते थे। हनुमान जी के गुरु सूर्य भगवान थे। सूर्य भगवान ने अपने पुत्र सुग्रीव की सहायता करने का आदेश शिष्य हनुमान जी को दे रखा था। इस कारण बजरंगबली सुग्रीव जी का सहयोग करते थे। बाली को ब्रह्मा जी का वरदान प्राप्त था– 'कोई भी योद्धा तुम्हारे सामने आयेगा तो उसकी आधी ताकत तुम्हारे अन्दर आ जायेगी।' इस कारण बाली से प्रभु रामचन्द्र जी सामने आकर नहीं लड़े थे, छिपकर बाली को मारना पड़ा था। ऋषियों के शाप से हनुमान जी अपनी शक्तियों को भूले हुये थे, इस कारण बाली से युद्ध नहीं किया था।

जम्मु की जाम्बवंत गुफा जिसे पीर की खो कहा जाता है।

बाली, सुग्रीवादि के जो चित्र देखने में आते हैं, उनमें उनके पूंछ लगी दिखाई जाती है, परन्तु उनकी स्त्रियों के पूँछ नहीं होती। नर-मादा में इस प्रकार का भेद अन्य किसी वर्ग में देखने में नहीं आता। इसलिए पूँछ के कारण हनुमान, सुग्रीव, बाली को बन्दर नहीं कहा जा सकता। हनुमान जी से रामचन्द्र जी की पहली भेंट ऋष्यमूक पर्वत पर हुयी थी। दोनों में परस्पर बातचीत के बाद श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले–

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।

नासामवेद विदुषः शक्यमेवं प्रभाषितम।।
नूनं व्याकरणं कृत्समनेन बहुधा श्रुतम।
बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।
संस्कार क्रम संपन्नामद्रुताम विलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाच हृदय हारिणीम्।।

(वा.रा.कि./3/28, 29,32)

अर्थात् ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ और यजुर्वेद का जिसको बोध नहीं है तथा जिसने सामवेद का अध्ययन नहीं किया है वह व्यक्ति इस प्रकार परिष्कृत बातें नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण का अनेक बार अभ्यास किया है। संस्कार सम्पन्न, शास्त्रीय पद्धति से उच्चारण की हुयी इनकी कल्याणी वाणी हृदय को हर्षित कर रही है। वस्तुतः हनुमान जी अनेक भाषाविद् थे। वे अवसर के अनुकूल भाषा का व्यवहार करते थे, इसका संकेत हमें सुन्दरकाण्ड में मिलता है। लंका में पहुँचकर हनुमान जी ने सीता को अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच बैठे देखा। वृक्षों की शाखाओं के बीच छुप कर बैठे हनुमान सोचने लगे–

यदि वाच प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।।
सेयमालोक्य में रूपं जानकी भाषितं तथा।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति।।
ततो जात परित्रासा शब्दं कर्यान्मनि स्विनि।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम्।।

(सुन्दरम् 30/18,20)

यदि द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) के समान परिमार्जित संस्कृत भाषा का प्रयोग करूंगा तो सीता मुझे रावण समझकर भय से संत्रस्त हो जायेगी। मेरे इस वनवासी रूप को देखकर तथा नागरिक संस्कृत को सुनकर पहले ही राक्षसों से डरी हुयी यह सीता और भयभीत हो जायेगी। मुझको कामरूपी रावण समझकर भयातुर विशालाक्षी सीता कोलाहल प्रारंभ कर देगी। इसलिए–

अहं त्वतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वांच चोदहरिव्यामी मानुषीभिह संस्कृताम।।

मैं सामान्य नागरिक के समान परिमार्जित भाषा का प्रयोग करूंगा। इससे प्रतीत होता है कि लंका की सामान्य भाषा संस्कृत थी, जबकि जन साधारण संस्कृत से भिन्न किन्तु तत्सम तद्भव शब्दों का व्यवहार करते थे। कुछ टीकाकारों के अनुसार हनुमान जी ने अयोध्या के आसपास की भाषा से काम लिया था। बालीपुत्र अंगद के विषय में वाल्मीकि ने लिखा है–

बुद्धया हृष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बल समन्वितम्।
चर्तुदशगुणंमेने हनुमान बालिनः सुतम्।। (कि. 54/2)

हनुमान जी बालिपुत्र अंगद को अष्टाङ्ग बुद्धि से सम्पन्न चार प्रकार के बल से युक्त और राजनीति के चौदह गुणों से युक्त मानते थे।

अष्टांग बुद्धि–

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊपापोहार्थ विज्ञानं तत्वज्ञानं च धीगुणाः।।

सुनने की इच्छा, सुनना, सुनकर धारण करना, ऊहापोह करना, तात्पर्य को ठीक ठीक समझना, विज्ञान व तत्वज्ञान बुद्धि के आठ अंग हैं।

शाम, दाम, भेद, दण्ड से शत्रु को वश में करने के लिए नीतिशास्त्र में चार उपाय बताये गये हैं, उन्हीं को यहाँ चार प्रकार का बल कहा गया है। किन्हीं किन्हीं के मत से बाहुबल, मनोबल, उपायबल और बन्धुबल ये चार बल हैं।

चतुर्दश गुण–

देशकालज्ञता दार्ढ्यं सर्वक्लश सहिष्णुता,
सर्व विज्ञानता दाक्ष्यमूर्जः संवृत्तमंजता।
अविसंवादिता शौर्यं भक्तिज्ञात्व कृतज्ञता,
शरणागत वात्सल्यम मर्षित्वम चापलम्।।

1. देशकाल का ज्ञान, 2. दृढ़ता,
3. कष्ट सहिष्णुता, 4. सर्व विज्ञानता,
5. दक्षता, 6. उत्साह,
7. मंत्रमुप्ति, 8. एकवाक्यता,
9. शूरता, 10. भक्तिज्ञान,
11. कृतज्ञता, 12. शरणागत वत्सलता,
13. अमर्षित्व उ अधर्म के प्रति क्रोध और
14. अचपलता।

बाली की पत्नी एवं अंगद की माता तारा को वाल्मीकि ने मंत्रवित् बताया है (कि. 16/12)। मरते समय बाली ने तारा की योग्यता का बखान करते हुए सुग्रीव को परामर्श दिया-

सुषेण दुहिता चेयमर्थ सूक्ष्म विनिश्चये।

औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता।।
यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्त संशयम्।
न हि तारामतं किंचिंदन्यथा परिवर्तते।। (कि. 23/13-4)

सुषेण की पुत्री यह तारा सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिह्नों को समझाने में सर्वथा निपुण है। जिस कार्य को यह अच्छा बताए, उसको निःसंग होकर करना। तारा की किसी सम्मति का परिणाम अन्यथा नहीं होता। बाली की अन्त्येष्टि के समय सुग्रीव ने आज्ञा दी 'और्ध्वदेहिक मार्यस्य क्रियताम अनुकूलतः' (कि. 25/30) मेरे ज्येष्ठ बन्धु आर्य का संस्कार राजकीय नियम के अनुसार शास्त्रानुकूल किया जाए।' सुग्रीव के राजतिलक के समय सोलह सुन्दर कन्याएं अक्षत, अंगराज, गौरोचन, मधु, घृत आदि लेकर आईं और वेदी पर प्रज्वलित अग्नि में- 'मंत्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदोजनाः (26/10) मंत्रोच्चारण पूर्वक हविष्य के द्वारा मंत्रविद् विद्वानों ने हवन किया। इससे पूर्व ऋष्यमूक पर्वत पर हनुमान जी ने सुग्रीव का परिचय देते हुये कहा था–

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद् वानर पुङ्गवः।
वीरो विनिकृतो भ्रात्राजमद् भ्रमति दुःखितः।।
(कि. तृतीय सर्ग, 20)

वीरो! यहाँ सुग्रीव नामक एक श्रेष्ठ वानर रहते हैं जो वड़े धर्मात्मा और वीर हैं। उनके भाई बाली ने उन्हें घर से निकाल दिया है इसलिये वे अत्यंत दुःखी होकर मारे-मारे फिरते हैं।

प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना।
राज्ञा वानर मुख्यानां हनुमान नाम वानरः।। 21।।

उन्हीं वानर शिरोमणियों के राजा महात्मा सुग्रीव के भेजने से मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान है। मैं भी वानर हूँ।

युवाभ्यांसहि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यात्मामिच्छति।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्।। 22।।
भिक्षुरूप प्रतिच्छन्नं सुग्रीव प्रिय कारणात्।
ऋष्यमूकादित्व प्राप्तं कामगं कामचारिणम्।। 23।।

धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों से मित्रता करना चाहते हैं। मुझे आप लोग उन्हीं का मंत्री समझो मैं वायुदेवता का वानर जातीय पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो जा सकता हूँ और जैसा चाहूँ, रूप धारण कर सकता हूँ। इस समय सुग्रीव का प्रिय करने के लिए भिक्षु के रूप में अपने को छिपाकर मैं ऋष्यमूक पर्वत से यहाँ आया हूँ। दोनों ओर से विश्वास होने पर कपिवर हनुमान ने भिक्षुरूप को त्यागकर वानररूप धारण कर लिया। वे उन दोनों को पीठ पर बिठाकर चल दिये।।

भिक्षुरूपं परित्यज्य वानरं रूपामास्थितः।
पृष्ठमारोप्य तौ वीरौजमाम कपिकुञ्जरः।। 34।।

स्वेच्छा से अत्यन्त दर्शनीय रूप धारण करने वाले सुग्रीव का भी उदाहरण मिला है–

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम्।। 8।।

(पंचम सर्ग) हनुमान जी का यह वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव स्वेच्छा से अत्यन्त दर्शनीय रूप धारण करके श्री रघुनाथ जी के पास आये और बड़े प्रेम से बोले- - प्रभो! आप धर्म के विषय में भलीभांति सुशिक्षित, परम तपस्वी और सब पर दया करने वाले हैं। पवनकुमार हनुमान जी ने मुझसे आपके यथार्थ गुणों का वर्णन किया है।

हनुमान जी और सुग्रीव के लिए कहीं-कहीं कपि और कपिश्रेष्ठ शब्द भी आये हैं किन्तु वे पेड़ों की डालियों पर उछल-कूद करने वाले बन्दर नहीं थे, अपितु योद्धा मनुष्य थे।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में ऋक्षराज जाम्बवान (जाम्बवन्त) को ब्रह्मा का पुत्र माना गया है। परंतु रामलीला या रामायण से संबंधित टीवी सीरियलों में जाम्बवान को पशु भालू रीछ रूप में दिखाया जाता है और यह लोक प्रचलित अवधारणा भी है जो बिलकुल सत्य नहीं है। ऋक्ष शब्द का तात्पर्य-भालू या रीछ नहीं a star, lunar mansion a constallation अर्थात एक तारा, 2. एक पर्वत का नाम 3. ईश (मनु.12/67) है।

ऋक्षपति या ऋक्षराज का अर्थ हुआ– चन्द्रमा, हरीश्वर, विष्णु, जाम्बवान, रीछों और लंगूरों का स्वामी (रघुवंश13/72)। जाम्बवान् नपु. का अर्थ हुआ जम्बाःफलम् अण तस्य, नलुप-तारा) 1. सोना 2. जम्बू वृक्ष का फल जामन। जाम्बवत् (पु.) जाम्ब अ मतुप अर्थात् रीछों का राजा जिसने लंका पर आक्रमण के समय राम की सहायता की। ये अपनी चिकित्सा सम्बन्धी कुशलता के लिए भी प्रसिद्ध थे।

आदिकाव्य वाल्मीकीय रामायण में जाम्बवान (जाम्बन्त) के लिये ऋक्ष शब्द रीछ-भालू के लिए कहीं भी प्रयुक्त नहीं है। न ही ऋक्षराज शब्द का प्रयोग है। जाम्बवन्त के लिये दूसरा शब्द केवल हरिश्रेष्ठ आया है।

जाम्बवान् स हरिश्रेष्ठः प्रीति सहष्टमानस।
उपामन्जय हरीन सर्व निदं वचनमब्रनीत।। 22।।

(सुन्दरकाण्ड, 57 सर्ग)

अर्थात् हरिश्रेष्ठ जाम्बवान के मन में बड़ी प्रसन्नता हुयी। वे हर्ष से खिल उठे और सभी हरियों को निकट बुलाकर इस प्रकार बोले– उक्त श्लोक में हरिश्रेष्ठ का अर्थ वानर-भालूओं में श्रेष्ठ अर्थ लगाना उचित नहीं है। जाम्बन्त जी हनुमान, अंगादि से अपनी शक्ति के बारे में बोले-

ताश्च सर्वान् हरिश्रेष्ठ ज्जम्बवान निदम ब्रवीत्।
न खल्वेताव देवासीद गमने मे पराक्रमः।।14।।
मया वैरोचने यज्ञे प्रभविष्णुः सनातनः।
प्रदक्षिणीकृतः पूर्व क्रममानस्त्रिविक्रम्।।15।।

अर्थात् पूर्वकाल में इतनी ही दूर तक चलने की शक्ति नहीं थी। पहले राजा बलि के यज्ञ में सर्वव्यापी एवं सबके कारणभूत सनातन भगवान विष्णु जब तीन पग भूमि नापने के लिए अपने पैर बढ़ा रहे थे, उस समय मैंने उनके उस विराट स्वरूप की थोड़े ही समय में परिक्रमा कर ली थी।

त्रिविक्रमे मयातात सशैल वनकानना।
त्रि सप्तकृत्वा पृथ्वी परिक्रान्ता प्रदक्षिणम।।32।।

तात भगवान वामन ने त्रिलोकी को नापने के लिए जब पैर बढ़ाया था, उस समय मैंने पर्वत, वन और काननों सहित समूची पृथ्वी की इक्कीस वार प्रदक्षिणा की थी।

तथा चौषधयोऽस्माभिः संचिता देव शासनात्।
निर्मवृयअमृतं याभिस्तदानीनो महब्दलम् ।।33।।

समुन्द्र मन्थन के समय देवताओं की आज्ञा से हमने उन औषधियों का संचय किया था, जिनके द्वारा अमृत को मथकर निकालना था। उन दिनों मुझमें महान बल था।।33।।

श्रीमदभागवतपुराण में रामकथा के प्रसंग में नवम स्कन्ध, अध्याय10 श्लोक सं.44 में जाम्बन्त जी के लिए 'नृप' शब्द आया है–

धनुर्निषंगाज्छत्रुघ्नः सीता तीर्थ कमण्डलुम्।
अबिभ्रदंगदः खडगं है मं चर्मक्षराण नृप।

शत्रुघ्न ने धनुष और तरकस, सीताजी ने तीर्थों से भरा कमण्डल, अंगद ने सोने का खड्ग और नृप ने ढाल ले ली।।44।। वायु पुराण अ. 96 में जाम्बवान का नाम ऋक्षराज आया है। इसका तात्पर्य है-रीछों के राजा। मनुस्मृति में रिक्ष का अर्थ रीछ भालू कर दिया गया है। वाल्मीकीय रामायण और वायु पुराण प्राचीन ग्रन्थ हैं तथा मनु स्मृति बाद का ग्रन्थ है। उदयपुर के विद्वान डॉ. श्रीकृष्ण जुगनु के अनुसार मनुस्मृति ईसा पूर्व दूसरी सदी में ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुंग ने अपनी इच्छानुसार सुमति भार्गव से लिखवाई थी।

यक्षगान नृत्य नाटिका में जाम्बवंत पात्र

जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती थी, जो श्रीकृष्ण भगवान को व्याही थी। कृष्ण भगवान मनुष्य थे तथा जाम्बवती मनुष्य थी तो उसके पिताश्री जाम्बवन्त रीछ-भालू कैसे हो सकते हैं? अर्थात जाम्बवन्त जी भी बलवान मनुष्य थे। मूर्खों ने उनको जानवर बना दिया है। और यह परम्परा लोक में धड़ल्ले से चल पड़ी जो घोर गलत और अंधी परम्परा है।

वायु पुराण में लिखा है– एक बार स्यामन्तक मणि से विभूषित होकर (द्वारका से यादववीर) प्रसेनजित शिकार करने के लिए वन को गये। वहाँ सिंह ने उसको मार डाला। ऋक्ष राज जाम्बवान ने सिंह को मार डाला और स्यामन्तक को लेकर अपने बिल (गुफा) में प्रवेश किया। यादवों ने इस हत्याकर्म की शंका कृष्ण के ऊपर की। भगवान कृष्ण इस मिथ्या अपवाद को सुनकर तुरन्त वन को प्रस्थित हुए।।31-36।। प्रसेनजित शिकार खेलने जिस स्थान पर गये थे, उसी स्थान को प्रसेन के चिह्नों का अनुशरण करते हुए कृष्ण चले। वहाँ पर प्रसेन को मरा हुआ पाया, पर मणि को नहीं पाया। उसी प्रसेन के शव से थोड़ी दूर सिंह को भी मरा हुआ पाया। वहाँ पर

रीछ के पदचिह्नों चिन्हों से रीछ की गुफा का पता लगाया। कृष्ण शीघ्रता पूर्वक उस बिल (गुफा) में प्रविष्ट हो गये। भगवान कृष्ण ने ऋक्षराज जाम्बवान को देखा। उसी बिल में जाम्बवान के साथ वासुदेव का युद्ध प्रारम्भ हो गया। इधर वासुदेव ने महाबलशाली ऋक्षराज जाम्बवान को पराजित किया। तेजो बल से अभिभूत जाम्बवान ने अपनी कन्या जाम्बवती और स्यमन्तक मणि को भगवान कृष्ण को समर्पित कर दिया। इस प्रकार स्यमन्तक मणि को प्राप्त कर अपना अपयश दूर किया और शक्रजित को समर्पित किया। तदनन्तर भगवान मधुसूदन कृष्ण ने जाम्बवती से अपना विवाह किया। अर्थात जाम्बवती नारी के पिता भालू नहीं मनुष्य थे।

वाल्मीकीय रामायण के युद्ध काण्ड के 30वें सर्ग में दूत शार्दूल रावण से कहता है– राजन् उस वानर सेना में जाम्बवान नाम से प्रसिद्ध एक वीर है, जिसको युद्ध में परास्त करना बहुत ही कठिन है। वह ऋक्षराज गदगद का पुत्र है। गदगद का एक दूसरा पुत्र भी है जिसका नाम धूम्र है। इन्द्र के गुरु वृहस्पति का पुत्र केसरी है, जिसके पुत्र हनुमान ने अकेले ही यहाँ आकर पहले बहुत से राक्षसों का संहार कर डाला था।।21।। धर्मात्मा और पराक्रमी सुषेण धर्म का पुत्र है। दधि मुख नामक सौम्यवानर चन्द्रमा का पुत्र है।।22।। उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जाम्बवन्त रीछ भालू नहीं थे, मनुष्य थे। ऋक्षराज के पुत्र होने के कारण उनको रीछ-भालू समझ लिया गया है।

सहायक स्त्रोत

1. वाल्मीकीय रामायण गीता प्रेस, गोरखपुर वि.सं.2062।
2. वायु पुराण– प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. श्रीमदभागवत पुराण गीता प्रेस गोरखपुर-273005 वि.सं. 2076।
4. संस्कृत-हिन्दी शब्द कोष-वामन आप्टे। जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।
5. डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू से उदयपुर में किया गया व्यक्तिगत साक्षात्कार।

❑❑

152, दीनदयालनगर,
आर.बी.एम., अस्पताल के पीछे,
भरतपुर-321001 (राज.)
मो. 9694102047

[प्राचीन काल में आदिवासी मनुष्यों के विभिन्न कबीलों के अपने-अपने टोटम (प्रतीक चिह्न) थे, जो उनकी पहचान या जाति थी और इनको उनके टोटम के नाम से सम्बोधित किया जाता था जैसे- मत्स्य, नाग, गरुड़, जटायु, ऋक्ष, वानर आदि। ऋक्ष या भालू तथा वानर भी टोटम थे। आश्चर्य है कि राम की सेना में एकमात्र रींछ (ऋक्ष) जाम्बवंत ही थे, शेष सभी वानर थे। -संपादक]

भ्रमों से भरा है रावण का व्यक्तित्व

प्रो. योगेशचन्द्र शर्मा

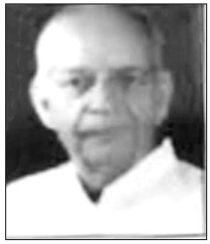

सामान्य जनधारणा के अनुसार रावण अत्यन्त नृशंस, भयानक, वीभत्स और अत्याचारी राजा था। उसके दस सिर और बीस भुजाएं थीं तथा वह कामुक, हिंसक और धूर्त था। उसके नाम से ही लोग आतंकित हो जाते थे। वह आर्यजाति का शत्रु और ऋषि मुनियों के लिए कालस्वरूप था। वास्तविकता में ये सब मान्यताएं या तो निराधार हैं या अतिशयोक्ति से भरपूर।

यह सत्य है कि रावण राक्षस संस्कृति का नायक था, परन्तु राक्षस संस्कृति के साथ किसी प्रकार की कोई ऐसी बुराई जुड़ी हुई नहीं थी, जिसकी निन्दा की जाए। एक मान्यता के अनुसार रावण ने 'रक्षो अहम्' कहकर अपने को सम्पूर्ण दक्षिणी भाग का रक्षक घोषित किया था और इसी से वह तथा उसके समर्थक राक्षस कहलाए। मूलतः लंका में यक्ष जाति के ही लोग रहते थे, किन्तु रावण के नेतृत्व में वे सब राक्षस कहलाए जाने लगे। एक अन्य मान्यता के अनुसार जब तारकासुर का वध करने के लिए, शिव-पुत्र कार्तिकेय के नेतृत्व में यक्ष-सेना आगे बढ़ी तो उसने 'वयं रक्षामः' कहकर अपने को देवताओं का रक्षक घोषित किया। यह भी मान्यता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ही जिन्होंने मनुष्यों के धर्म और कर्म की रक्षा का दायित्व लिया, वही लोग राक्षस कहलाये। मूलत राक्षस शब्द में उन सब व्यक्तियों की रक्षा का भाव निहित था जो सदाचारी, कर्तव्यनिष्ठ और नीतियुक्त हों। रावण, राक्षस-संस्कृति का केवल समर्थक ही नहीं, अपितु उसका प्रबल प्रचारक भी था। अन्य अनेक जातियों को राक्षस-संस्कृति में सम्मिलित करके वह समन्वय की भावना का सूत्रधार भी बना। 'रावण' शब्द तमिल भाषा के 'इरैवण' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है राजा। इससे रावण के उपरान्त भी अन्य अनेक राजाओं को 'रावण' कहा गया। सम्भव है उन रावणों के साथ जुड़ी किसी बुराई को भी नाम की समानता के आधार पर रावण के सिर मढ़ दिया गया हो। राक्षसों में रावण के उपरान्त भी अनेक अत्याचारी व्यक्ति हुए, जिससे राक्षस जाति बदनाम हुई।

रावण के दादा महर्षि पुलस्त्य विद्वान और प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे। वे युवावस्था में ही मुख्य भारत भूमि को छोड़कर आन्ध्रालय (वर्तमान आस्ट्रेलिया) में जा बसे थे। वहीं के राजा तृणबिन्दु की पुत्री के साथ उनका विवाह हुआ, जिससे उन्हें विश्रवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। विश्रवा के दो विवाह हुए उनकी पहली पत्नी महर्षि भरद्वाज की पुत्री थी, जिससे वैश्रमण नामक पुत्र प्राप्त हुआ और दूसरा विवाह सुमाली दैत्य की पुत्री कैकसी से हुआ, जिससे उन्हें रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण के नाम से तीन पुत्र तथा चंद्रनखा (शूर्पनखा) नाम से एक पुत्री प्राप्त हुई। इस प्रकार पिता की तरफ से रावण पूरी तरह से न केवल आर्य ही अपितु शुद्ध ब्राह्मण भी था। मां की तरफ से उसमें दैत्यों का अंश भी मिश्रित था। रावण के पिता विश्रवा अत्यन्त तेजस्वी तपोमूर्ति विद्वान और प्रतिभाशाली थे और उनका पूरा प्रभाव रावण पर पड़ा।

लंका पर प्रारम्भ में ब्रह्मा के पुत्र मरिचि का शासन था। कालान्तर में यह दैत्य सुमाली के नियंत्रण में आ गयी, परन्तु देवताओं से पराजित हो जाने के कारण सुमाली को वहां से भागकर किसी सुदूर स्थान पर छुपना पड़ा। बादमें रावण के सौतेले भाई वैश्रमण ने लंका को नए ढंग से बसाकर उसे अपने अधिकार में ले लिया। कुछ समय बाद जब सुमाली अपने छुपने के स्थान से लौटकर आया तो लंका पर वैश्रमण का अधिकार देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने एक लम्बी योजना बनायी और उसीके अनुसार अपनी पुत्री कैकसी का विवाह विश्रवा के साथ कर दिया। अपने नाती रावण को सुमाली ने प्रारम्भ से ही अपने नियंत्रण में रखा और उसे सौतेले भाई वैश्रमण के विरुद्ध उभारकर लंका पर आक्रमण करवा दिया। रावण अत्यधिक शक्तिसंपन्न योद्धा था। इसलिए उसने सरलता से लंका को जीत लिया और वह लंकाधीश बन गया।

रावण न वीभत्स था और न भयानक। इसके विपरीत वह अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर आकृति वाला था। युवतियां सहज ही उसके प्रति आकर्षित हो जातीं थीं। मय दानव की पुत्री मन्दोदरी भी उसके प्रति मोहित हो गयी थी और उसने विवाह का प्रस्ताव किया था, जिसे रावण ने सहज रूप से स्वीकार कर लिया। इस तरह रावण का विवाह एक प्रकार से प्रेम विवाह ही था। अपने आकर्षक व्यक्तित्व के बावजूद रावण ने कभी उसका अनुचित लाभ नहीं उठाया। कहा जाता है कि एक बार नलकुबेर की पत्नी उस पर मोहित हो गयी थी। उसने जब रावण के सम्मुख प्रणय निवेदन किया तो रावण का सपाट उत्तर था 'हे सन्नारी! पति के रहते हुए भी किसी पराये पुरुष की कामना करना सती नारी के लिए पाप है।'

रावण के दस सिर होने की बात पूर्णतः मिथ्या है। सामान्य व्यक्तियों की तरह रावण के भी एक सिर तथा दो भुजाएं थीं। रावण को 'दशमुख', 'दशानन' या 'दशशीश' कहने के पीछे कई प्रकार की मान्यताएं हैं। प्रथम, रावण की बाल्यावस्था की एक घटना है। उसने एक ऐसी दर्पण माला पहनी हुई थी, जिसमें नौ दर्पण लगे हुए थे। उनमें रावण का चेहरा साफ नजर आता था और इससे वह बहुत सुन्दर लग रहा था। रावण के पिता विश्रवा ने उसकी ये आकृतियां देखीं तो उन्होंने भावाभिभूत होकर रावण को दशशीश संबोधन से पुकारा। तभी से रावण को दशानन या दशमुख कहा जाने लगा। दूसरे, रावण ने अपने राज्य को दस भागों में बांटा हुआ था और इनमें से प्रत्येक भाग की जनता को वह समान रूप से स्नेह करता था। ये दसों भाग रावण के दस मुखों के समान थे। इसीसे रावण को दशमुख कहा जाने लगा। तीसरे, जैन पद्मपुराण के अनुसार रावण के गले में सदैव एक ऐसा हार रहता था, जिसमें नौ मणियां लगी हुई थीं। चूंकि इन सभी में रावण की आकृति झलकती थी, इसीलिए उसे दशानन कहा जाता था।

इनमें से कौनसी मान्यता सही है, कहना कठिन है। परन्तु यह निश्चित है कि रावण के सिर एक ही था, दस नहीं और भुजाएं भी दो ही थीं, बीस नहीं। जब रावण को दशानन कहा जाने लगा तो उसके साथ बीस भुजाओं की कल्पना भी सहज रूप में चल निकली।

रावण वेद-मर्मज्ञ, शिव का परम भक्त तथा नीतिवान व्यक्ति था। जब हनुमान लंका में गए थे तो वहां उन्होंने सभी घरों से वेद मंत्रों की ध्वनि सुनी थी। रावण पर एक ही मुख्य आरोप है और वह आरोप है सीता-हरण का।

रावण के व्यक्तित्व के साथ जुड़ी अन्य बुराइयां इसी आरोप की उपज हैं। जबकि सीता-हरण के लिए रावण मजबूर था। लक्ष्मण ने रावण की बहिन शूर्पनखा का अपमान किया था। इसलिए उसके प्रतिकार के रूप में रावण को यह कार्यवाही करनी पड़ी। सीता हरण के बावजूद रावण ने सीता के साथ कभी किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया। उन्हें अपने महलों से दूर अनेक दासियों के साथ अशोक वाटिका में रखा। सीता को नगर

से दूर रखने का एक प्रयोजन यह भी था कि राम और सीता के इस व्रत-पालन में कोई विघ्न उपस्थित न हो कि वे चौदह वर्षों तक वनवास करेंगे। रावण ने अपने मंत्री माल्यवान से कहा भी था-'मैंने सीता का अपहरण करके राम को चुनौती दी है। शूर्पनखा की नासिका काटे जाने का प्रतिकार किया है। राम के व्रत-पितृवचन के पालन से मुझे वैर नहीं है। मैं उनके व्रत-पालन में बाधा नहीं डालूंगा। सीता, राम की अर्धांगिनी है। यदि उसे नगर में रखा गया तो राम का वनवास व्रत खंडित होगा। सीता को अशोक वाटिका में रखने का निर्णय मैंने इसीलिए किया है।

सामान्य जनधारणा के अनुसार रावण की मृत्यु विजयदशमी को हुई थी और दीपावली पर राम वापिस अयोध्या लौटे थे। इसी संदर्भ से विजयदशमी और दीपावली के त्योहार मनाए भी जाते हैं। परन्तु यदि हम रामकथा के तथ्यों को सिलसिलेवार रखें तो ये दोनों ही बातें गलत प्रतीत होती हैं। प्रचलित परंपरा के अनुसार विजयदशमी का पर्व आश्विन शुक्ल दशमी को तथा दीपावली का पर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या को सम्पन्न होता है। जबकि इसके विपरीत तथ्यों के संकेत के अनुसार रावण-वध तथा राम की अयोध्या वापसी दोनों ही घटनाएं चैत्र मास में सम्पन्न हुई थीं।

पद्म पुराण (पाताल खंड) के अनुसार चैत्र कृष्ण द्वादशी से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी तक राम और रावण के बीच युद्ध हुआ तथा चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को ही रावण का वध हुआ। इसके उपरान्त वैशाख कृष्ण दूज को विभीषण का राजतिलक हुआ और इसके अगले दिन लंका से चलकर राम, वैशाख कृष्ण पंचमी को महर्षि भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। इसके दो दिन पश्चात वैशाख कृष्ण सप्तमी को राम का राज्याभिषेक हुआ। ठीक यही बात स्कन्द पुराण में भी कही गयी है।

वाल्मीकि रामायण में इन घटनाओं की निश्चित तिथि तो अंकित नहीं है, लेकिन दिए गए विवरण के अनुसार इन घटनाओं का समय लगभग यही बैठता है। अयोध्याकांड के सर्ग तीन में महाराज दशरथ कहते हैं कि 'यह चैत्र का शुभ मास है और इसलिए इसी मास में राम का राज्याभिषेक हो जाना चाहिए।' महर्षि वशिष्ठ भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि इस समय पुष्य नक्षत्र का भी योग है। इसलिए राज्याभिषेक हेतु यह समय उत्तम है। इसके बाद घटनाक्रम तेजी से आगे बढ़ता है और राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास जाना पड़ता है। इसके उपरान्त वनवास की अवधि समाप्त होने पर राम जब वापिस महर्षि भारद्वाज के आश्रम में लौटे तो वह पंचमी का ही दिन था और उसी दिन चौदह वर्ष पूरे होने को थे। उस दिन पुष्य नक्षत्र का भी योग था। स्पष्ट ही वह दिन चैत्र या वैशाख की पंचमी रहा होगा। इस विवरण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि विजय दशमी के दिन रावण वध की बात और दीपावली के दिन राम के अयोध्या लौटने की बात, दोनों ही गलत और भ्रम पर आधारित हैं।

विजयदशमी को रावण के वध का दिन मानकर उस दिन रावण का पुतला जलाने की परंपरा लगभग सर्वत्र है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार भी रावण का अन्तिम संस्कार उसके भाई विभीषण ने राजकीय सम्मान के साथ किया था और स्वयं उसकी चिता में अग्नि दी थी। परन्तु महाभारत में दी गयी संक्षिप्त रामकथा के अनुसार राम ने रावण पर जो ब्रह्मास्त्र छोड़ा था, उससे वह इतना अधिक जल गया कि उसकी राख भी नहीं बची। थाइलैंड और इंडोनेशिया में प्रचलित रामकथा के अनुसार रावण का कोई अन्तिम संस्कार नहीं किया गया। इन देशों की रामकथा के अनुसार रावण की मृत्यु के बाद उसके शव को एक पहाड़ी पर दर्शनों के लिए रखा गया। दूर दूर से यात्री दर्शनों के लिए आए। इनमें मिस्र देश के नरेश भी थे। वे अपने उन विशेषज्ञों को भी साथ लाए थे जो शवों पर रासायनिक लेप लगाकर उन्हें सुरक्षित रखने में माहिर थे। इन विशेषज्ञों ने रावण के शव पर रासायनिक लेप लगाकर किसी सुरक्षित स्थान पर रख दिया।

बौद्ध भिक्षु अंबान एल धम्मानंद अनुनायक थेरा, डॉक्टर देरानियगल, श्री नेविल, श्री स्टीवर्ट वेवेल तथा डॉ. मधुसूदन चांसकर आदि शोधकर्ताओं ने इस संबंध में काफी खोज और अनेक यात्राएं कीं। इनका कहना है कि लंका में भयानक जंगल के रागल नामक पर्वत शिखर की एक अगम्य गुफा में रावण के शव को रखा गया था, जहां वह आज भी सुरक्षित है। बौद्ध भिक्षु का दावा है कि उसने स्वयं उस गुफा में झांककर शव को देखा है। लेकिन अन्य कोई व्यक्ति अब तक ऐसा नहीं कर पाया है। मान्यता यह भी है कि यक्षों ने उस गुफा के दरवाजे को अपने मंत्रों द्वारा किसी बड़े शिलाखंड से इस तरह बन्द कर दिया है कि अब किसी को उसके बारे में जानकारी मिल ही नहीं सकती। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन है कि रावण के दाहसंस्कार में कोई भ्रम है या उसके शव के सुरक्षित होने में?

❑❑

10/611, कावेरी पथ, मानसरोवर
जयपुर-302020 (राज.)
मो. 9828662214

विजयदशमी अर्थात आश्विन शुक्ल दशमी को रावण-वध हुआ मानकर प्रतिवर्ष विजयदशमी को देश के अधिकांश भागों में इस प्रकाण्ड वेदज्ञ विद्वान, कवि, वैज्ञानिक, महाबली और परम शिवभक्त रावण के पुतले जलाये जाते हैं। परन्तु कई जगहों पर ऐसा नहीं होता, अपितु रावण की पूजा होती है। कर्नाटक में कोलार और मालवल्ली शहरों में रावण के मंदिर हैं। राज्य में एक मछुआरा समुदाय लंका के राजा की पूजा करने के लिए जाना जाता है। राजस्थान में जोधपुर के पास स्थित प्राचीन मंडोर को रावण की ससुराल माना जाता है, जहां उसके मंदोदरी के साथ विवाह की रस्में हुई थी। अतः यहां की एक ब्राह्मण-शाखा रावण को अपना दामाद मानकर उसका श्राद्ध-पिंडदान करते हैं। एक जाति विशेष के लोग अपना सरनेम 'रावण' लिखते हैं। मंदसोर (मध्यप्रदेश) को भी मंदोदरी का पीहर माना जाता है और वहां रावण का पुतला नहीं जलाया जाता है। कांगड़ा (उत्तराखंड) के बैजनाथ में शिवभक्त रावण का पुतला नहीं जलाया जाता। उत्तर प्रदेश में विशरख नामक गांव को रावण का जन्मस्थान माना जाता है। यहां के लोग रावण को महान ब्राह्मण मानते हैं और उसकी मृत्यु का शोक मनाते हैं। परसवाड़ी, गढ़चिरौली (महाराष्ट्र) में रहने वाले लोग रावण को एक गोंड राजा मानते हैं और स्वयं को रावणवंशी बताते हैं। कानपुर (उत्तर प्रदेश) के शिवला कस्बे में भगवान शिव के एक मंदिर में रावण का मंदिर भी है, जिसे दशानन मंदिर कहा जाता है, वहां रावण की पूजा आराधना की जाती है। -संपादक

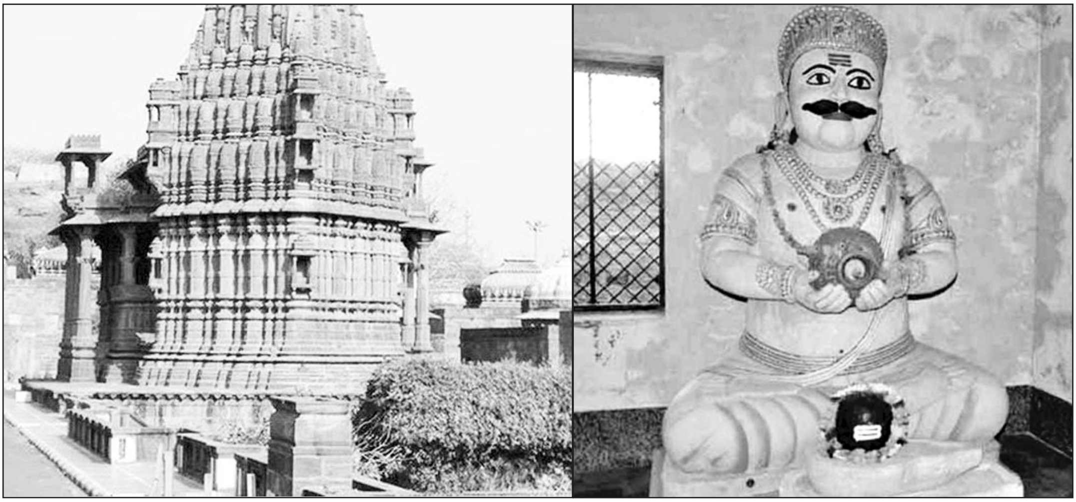

राजस्थान के जोधपुर में स्थित रावण मंदिर एवं मूर्ति। इसके साथ मंदोदरी का भी मंदिर है।

वाल्मीकि की राम से समकालीनता

डॉ. अमरसिंह वधान

इसमें कोई संदेह नहीं कि रामायण के प्रणेता आदिकवि वाल्मीकि हैं और रामायण के उपलब्ध सभी पाठ एवं संस्करण इस सत्य तथ्य की गवाही भी देते हैं। लेकिन वाल्मीकि के बारे में बहुत अधिक प्रामाणिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता। कतिपय संदर्भों और पौराणिक किवदंतियों के आधार पर विद्वानों ने अनुमान अवश्य लगाए हैं। कहीं उन्हें मृगव्याध नामक नीच ब्राह्मण कहा है तो कहीं डाकू, लुटेरा और कहीं प्रचेता का पुत्र कहा है।

उल्लेखनीय है कि भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व, 4.10 में वाल्मीकि के विषय में एक कथा का जिक्र किया गया है। इस कथा के अनुसार मृगव्याध नामक एक नीच ब्राह्मण था, जो धनुषबाण धारण करके नित्य ब्राह्मणों का वध करता था और उनके धन को लूटकर अपना भरण-पोषण करता था। ब्राह्मण के धन को अमृत के समान, क्षत्रिय के द्रव्य को मधुर तथा वैश्य के द्रव्य को अन्न के सदृश समझकर वह मृगव्याध तीनों वर्णों की हत्या करता था। शूद्र की वस्तु को रुधिर के समान अनिष्टकर समझकर, उनका धन नहीं लूटता था। ब्राह्मणों की हत्या से भयभीत देवता ब्रह्मा के पास जाकर बोले कि हे देव! आप इसका निदान कीजिए, अन्यथा यह प्रदेश ब्राह्मणों से शून्य हो जाएगा। ब्रह्मा ने सप्त ऋषियों को बुलाकर कहा कि तुम लोग मृगव्याध के पास जाकर उसे उपदिष्ट करो। ब्रह्मा की बात सुनकर मरीचि ऋषि, वसिष्ठ तथा अन्य महाऋषियों के साथ मृगव्याध के पास गए। मृगव्याध ने इन ऋषियों को देखकर कहा कि मैं अभी तुम लोगों की हत्या करूँगा। ऐसी वाणी सुनकर मरीच तथा साथी ऋषियों ने कहा कि किस लिए हमें मारोगे, अपने परिवार वालों के लिए अथवा अपने लिए हम ऋषियों की हत्या करोगे, शीघ्र हमें बतलाओ। ऐसी बात सुनकर मृगव्याध ने कहा कि अपने परिवार के लिए तथा स्वयं अपने लिए मैं ब्राह्मणों की हत्या करता हूँ। ऐसा सुनकर उन ऋषियों ने कहा कि पाप का भोग कौन करेगा? परिवार वाले अथवा स्वयं तुम? घर जाकर शीघ्र पूछकर आओ।

इस प्रकार उन ऋषियों के कहने पर वह मृगव्याध घर गया और अपने परिवार से पूछा कि मैं पाप करके जो धन लाता हूँ, उसका भोग करने वाले तुम लोग मेरे पाप के भागी होगे। मृगव्याध की ऐसी बात सुनकर परिवारजन बोले कि हम लोग तुम्हारे किए गए पाप का भोग नहीं करेंगे। ऐसा सुनकर वह मृगव्याध स्तब्ध होता हुआ मुनियों के पास आकर बोला कि कोई मेरे पाप को भोगना नहीं चाहता। अतः मेरे किए गए पाप के नाशार्थ आप लोग कोई उपाय बताएँ। ऐसा सुनकर सप्तर्षियों ने 'राम-राम' जप करने का आदेश दिया और कहा कि तुम तप करो, इससे तुम्हारे संपूर्ण पाप नष्ट हो जाएँगे। मृगव्याध को अपनी वृत्ति के अनुकूल 'राम' नाम विस्मृत होकर 'मरा-मरा' ही स्मरण आया। ऐसे विपरीत अक्षरों का सहस्त्र वर्षों तक तपपूर्वक जप किया। जप के प्रभाव से वहाँ कमलों का एक सुन्दर वन उत्पन्न हो गया–

मरामरारेत्येवं सहस्रावदं जजाप ह।

जपप्रकावादभवदन मुत्पलसडकुलम (भविष्य पुराण-प्रतिसर्ग पर्व 4.10.53-54)। मृगव्याध तप में इतने लीन हो गए कि उनके शरीर पर वल्मीक (दीमकों) ने अपना स्थान बना लिया। वल्मीक से निकलने के कारण इनका नाम वाल्मीकि हुआ (भविष्य पुराण-प्रतिसर्ग पर्व 4.10.56)।

इसी प्रकार की कथा किंचित परिवर्तन के साथ अध्यात्म रामायण तथा आनंद रामायण (राज्य काण्ड 14/21-49) में आई है। स्कंदमहापुराण के वैशाख महात्म्य में भी ऐसी कथा आई है, जहाँ इन्हें जन्मान्तर में व्याध कहा गया है। ये व्याध-जन्म से पूर्व स्तंभ नामक वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध-जन्म में शंख ऋषि के यहाँ सत्संग करने तथा राम नाम जप से ये दूसरे जन्म में अग्नि शर्मा हुए। पूर्व संस्कार के कारण कुछ दिन तक ये व्याध कर्म में लिप्त रहकर सप्तर्षियों की संगति से मरा-मरा जपकर मुनि हुए और बाम्बी से निकलने के कारण वाल्मीकि कहलाए। ('कल्याण' का संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक, पृ. 381,709,1024)। ये कथाएँ कहाँ तक सत्यता को स्पर्श करती हैं, कहा नहीं जा सकता। लेकिन इन्हें नितान्त कपोलकल्पित भी नहीं माना जा सकता है। ये किंवदतियाँ वाल्मीकि के निराधार व्यक्तित्व के प्रतिपादन का एक आधार तो हैं ही। कतिपय विद्वान वाल्मीकि को निम्न जाति (चाण्डाल) में उत्पन्न हुआ मानते हैं। लेकिन उपर्युक्त पौराणिक आधार पर यह प्रमाणित नहीं होता। अतः ऐसा स्वीकार करना नितान्त भ्रामक एवं असंगत है।

एक अन्य जानकारी यह भी है कि वाल्मीकि को 'प्राचेतस' नाम से अभिहित किया जाता है। 'प्राचेतस' का अर्थ प्रचेता (वरुण) का पुत्र है। इस प्रसंग में कहा जाता है कि वाल्मीकि के शरीर में लगी दीमक को प्रचेता (वरुण) ने अपने जल से प्रक्षालित कर दिया था, जिससे इनका तपःपूत शरीर दृष्टिगोचर हुआ। (संस्कृत वाड्मय का बृहत इतिहास, तृतीय खंड आर्षकाव्य रामायण तथा महाभारत, पृ.12)। अतः प्रचेता के द्वारा उठाए जाने से इनका एक नाम 'प्राचेतस' भी हुआ। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में 'प्रचेतस' अथवा 'प्राचेतस' शब्द वाल्मीकि मुनि के लिए आया है। भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम्' (पृ.86) में 'प्राचेतस' पद वाल्मीकि के लिए प्रयुक्त हुआ है। अतः यह 'प्राचेतस' शब्द वाल्मीकि का पर्यायवाची है।

रामायण के बालकाण्ड में (सर्ग-2) क्रौंचवध की कथा आई है। इसके अनुसार एक बार वाल्मीकि मुनि गंगा से थोड़ी दूरी पर स्थित तमसा नदी के किनारे मध्याह्न कालीन सवन (हवन) के लिए गए। मुनि के साथ उनके शिष्य भारद्वाज भी थे। तमसा तीर्थ में स्नान करने के लिए शिष्य ने वाल्मीकि मुनि से वल्कल वस्त्र ले लिया और क्षण भर के लिए वन की सुषमा का निरीक्षण करने लगा। उसी समय एक क्रौंच पक्षी का युगल वहाँ विचरण कर रहा था। मुनि के देखते ही एक बहेलिए ने क्रौंच युगल में से नर पक्षी को बाण से आहत कर दिया। वह रुधिर से लथपथ होकर तड़पता हुआ पृथ्वी पर गिरकर मर गया। अपने पति की हत्या देखकर उसकी भार्या क्रौंची करुण क्रन्दन करने लगी। ऐसे करुणार्द्र दृश्य को देखकर मुनि के हृदय में शापस्वरूप यह वाणी निकल पड़ी-

'मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत क्रौंच मिथुनादेक मवधीः काममोहितम।।'

(बालकाण्ड सर्ग-2)।

अर्थात हे निषाद! तू अब अनेक वर्षों तक प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं करेगा। जो तूने क्रौंच के जोड़े में से एक काममोहित नर पक्षी का वध कर दिया है। अर्थात निषाद शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। ये ही वेदों के पश्चात लौकिक अनुष्टुप वृत्त (छंद) की पंक्तियाँ हैं। वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में परिणित हो गया। ऐसी श्लोकबद्ध गेय वाणी से आश्चर्यचकित वाल्मीकि के सामने भगवान ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि हे मुने सरस्वती सिद्ध हो गई है। इस श्लोकबद्ध वाणी से श्रीराम के चरित्र का गान करो। ऐसा कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गए। (बालकाण्ड सर्ग 2.36)। तत्पश्चात वाल्मीकि के शिष्यों ने उक्त अनुष्टुप का गान किया। वे सभी हर्ष से गदगद होकर कहने लगे कि महर्षि ने समान अक्षरों वाले चार चरणों वाले जिस वाक्य का गान किया है, उनके हृदय का शोक वाणी के द्वारा उच्चरित होकर श्लोक रूप हो गया–

समाक्षरैश्चतुर्भियः पादैगीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः।

(बालकाण्ड सर्ग 2.40)।

इसके बाद वाल्मीकि ने, जब रामचन्द्र वन से अयोध्या आए, तो उनके संपूर्ण चरित्र को रामायण के रूप में निबद्ध किया। (बालकाण्ड, 4.1)। उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि श्रीराम के समकालीन थे, क्योंकि राम के द्वारा जब सीता वन में निर्वासित कर दी गई थी, तो वाल्मीकि के आश्रम में सीता ने निवास किया था। सीता के पुत्र लव और कुश भी वाल्मीकि के आश्रम में उत्पन्न हुए थे। इन्हीं लव-कुश राजकुमारों को रामायण को गाने हेतु वाल्मीकि ने रामायण को निर्दिष्ट किया। (रामायण, 4.6.16)। वाल्मीकि के द्वारा ही राम के पुत्र लव-कुश नाम से विभूषित हुए थे। (रामायण, 66.9)। राम के अश्वमेध यज्ञ में वाल्मीकि, लव-कुश के साथ अयोध्या में आए थे। वहीं दोनों बालक रामायण की कथा का गान करते हैं। इससे राम अपने पुत्रों से परिचित होकर वाल्मीकि से सीता को लाने हेतु प्रार्थना करते हैं और दूत भेजते हैं। सीता के साथ वाल्मीकि राम की यज्ञशाला में प्रविष्ट होते हैं और सीता के पवित्र शील की प्रशंसा करते हैं। रामायण की इस कथा से वाल्मीकि का राम का समकालीन होना सिद्ध होता है।

वाल्मीकि के कुल, वंश, विद्याग्रहण आदि के विषय में कहीं भी, कुछ भी उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है। अध्यात्म रामायण तथा कृतिवास कृत 'बंगरामायण' में वाल्मीकि को च्यवन के पुत्र के रूप में कहा गया है। (संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, तृतीय खंड, आर्षकाव्य, रामायण तथा महाभारत, पृ.14)। 'बुद्ध चरित' के रचयिता अश्वघोष भी इस संदर्भ में च्यवन ऋषि का नाम ग्रहण करते हैं। (बुद्ध चरित,143)। वाल्मीकि रामायण में भी च्यवन ऋषि का नाम आया है। वाल्मीकि के आश्रम में रात्रि बिताकर शत्रुघ्न ने च्यवन ऋषि से वातार्लाप किया था और उनसे मान्धाता के वध का वृतान्त सुना था। (रामायण, उत्तरकाण्ड, 6.71.24)। वाल्मीकि के आश्रम के निकट ही च्यवन ऋषि का निवास स्थान था। लेकिन दोनों में क्या संबंध था, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। रामायण में तो वाल्मीकि प्रचेता के दशम पुत्र के रूप में उल्लिखित हैं। (उत्तरकाण्ड, 96.18)। कालीदास के 'रघुवंश' में वाल्मीकि अपना परिचय बताते हुए सीता से कहते हैं कि मैं तुम्हारे श्वसुर दशरथ का मित्र रहा हूँ। कालिदास ने अन्यत्र भी वाल्मीकि को दशरथ तथा जनक का मित्र कहा है। (रघुवंश,15.31)। निसंस्देह, इन सभी तथ्यों से वाल्मीकि का राम का युगीन होना प्रमाणित होता है।

❑❑

निदेशक- उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र
3150, सेक्टर 24-डी चंडीगढ़-160003
मो. 9876301085

[लगता है कि वाल्मीकि वनवासी थे और लूटपाट से आजीविका निर्वाह करते थे। संयोग वश ऋषियों से भेंट होने से उनमें ज्ञान और उनकी जन्मजात काव्य-प्रतिभा का उदय हो गया। लौकिक छंद वर्ण-वृत्त 'अनुष्टुप' का आविष्कार किया और लोक में प्रचलित रामाख्यान को उन्होंने प्रबंध काव्य के रूप में प्रस्तुत कर प्रतिष्ठित हुए। तत्पश्चात पौराणिकों ने उनका ब्रह्मणीकरण कर दिया। गौरतलब है कि उनका महत्व 'रामायण' (राम का जाना) की रचना से है, वे अन्य पौराणिक ऋषियों के बीच प्रतिष्ठित नहीं हैं। राम से उनकी समकालीनता के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि वन में जाते समय राम को जिन वनवासी ऋषियों से भेंट होती है, उनमें वाल्मीकि भी हैं। फिर प्रचलित रामकथा में सीता निर्वासन के समय वाल्मीकि सामने आते हैं। उन्होंने 'रामायण' में लगभग यथातथ्य रामकथा की रचना की है, कहीं भी राम का ब्रह्मत्व या अवतारत्व या उनकी भक्ति का प्रतिपादन नहीं किया है। -सम्पादक]

रामकथा के प्रति सम्राट अकबर की श्रद्धा

उदय शंकर दुबे

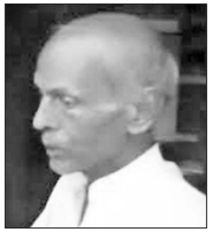

सम्राट अशोक से लगभग एक हजार वर्ष पश्चात सम्राट अकबर ने अपनी धर्म निरपेक्ष नीति से भारत की जनता का मन मोह लिया। यह भारतीय संस्कृति का बहुत बड़ा प्रेमी था। सच पूछिए तो वह हिन्दु संस्कृति का संरक्षक और प्रचारक था। उसने यह भली भांति समझ लिया था कि हिन्दुस्तान पर राज्य करने के लिये हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों की जानकारी मुस्लिम जन को भी होनी चाहिये ताकि दोनों में घनिष्ठ संबंध बढ़ सकें। अकबर के पूर्व किसी भी राजा ने ऐसा प्रयास नहीं किया। वह हिन्दू धर्म की जानकारी के लिये फतेहपुर सीकरी में स्थित इबादत खाने में हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ पंडितों को आमंत्रित कर उनसे वातार्लाप करता था, उनमें से एक प्रख्यात विद्वान देवी मिश्र ब्राह्मण भी थे जिन्होंने अकबर को वाल्मीकि रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि ग्रंथों के बारे में व्यापक जानकारी दी फलस्वरूप अकबर ने इन ग्रंथों का फारसी अनुवाद कराकर चित्रित भी करवाया। अकबर कालीन अनूदित हरिवंश पुराण की हस्तलिखित प्रति लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित रखी है। सचित्र महाभारत (रज्यनामा) तथा वाल्मीकि रामायण अकबर की व्यक्तिगत प्रति (शाही प्रति) जयपुर राजघराने में सुरक्षित है।

अकबर की उपर्युक्त वाल्मीकि रामायण (शाही प्रति) से अब्दुल रहीम खानखाना ने अपने लिये दूसरी प्रति तैयार करायी थी। वह प्रति अब फीयर आर्ट गैलरी वाशिंगटन में सुरक्षित है। रहीम की इस प्रति के विशेष अध्ययन के लिये मेरे सहयोगी और 'भारतीय मनीषा सूत्रम्' दारागंज प्रयाग के संचालक डॉ. शिवशंकर त्रिपाठी ने आज से पचीस वर्ष पूर्व इस प्रति की माइक्रो फिल्म मंगवायी थी, पर अभी तक वे इस प्रति का पूर्ण अध्ययन नहीं कर सके हैं। वाल्मीकि रामायण की इस प्रति के अध्ययन से साहित्य और कला के क्षेत्र में नये तथ्य सामने आयेंगे और राष्ट्रीय एकता में बढ़ोत्तरी होगी। इस प्रति की कुछ विशेषताएं संक्षेप में इस प्रकार है।

1. अकबर के शासन काल में यह प्रथम अवसर था जब वाल्मीकि रामायण का फारसी अनुवाद किया गया और उसमें मुगल दरबार के चित्रकारों ने चित्रकारी की। इसमें सम्राट अकबर द्वारा बताये गये स्थानों पर ही चित्र बनाये गये जिससे बादशाह की रामायण के प्रति अभिरुचि का बोध होता है। इससे पूर्व वाल्मीकि रामायण का समग्र रूप से चित्रांकन नहीं हुआ था।

2. इस वाल्मीकि रामायण के बाद विभिन्न लेखकों द्वारा समय-समय पर फारसी रामायण की कई प्रतियां अपने-अपने ढंग से लिखी गयी। उदाहरण के लिये सादुल्ला मसीहा पानीपती और पंडित सुमेर चंन्द्र आदि की प्रतियां ।

3. वाल्मीकि रामायण की इन फारसी प्रतियों से मुस्लिम समुदाय को हिन्दू धर्म और संस्कृति की विशेष जानकारी हुई जिससे आपसी सम्बन्धों में बढ़ोतरी हुई ।

सम्राट अकबर द्वारा अनूदित करवाई गई सचित्र रामायण।

4. रहीम खानखाना की वाल्मीकि रामायण की व्यक्तिगत प्रति के मुख पृष्ठ (पूरे पृष्ठ) पर खानखाना के हस्तलेख से अकबर की रामकथा के प्रति श्रद्धा का पता चलता है। रहीम के शब्दों में– यह किताब जिसका नाम रामायण है हिन्दुस्तान की मोतबर (विश्वसनीय) किताबें में से है जिसमें रामचन्द्र के हालात जो कि हिन्दुस्तान के महान बादशाहों में से थे, लिखी गयी है। उनके फैसलों की खूबी और कबूलियत जो कि दैवी खूबियों का प्रतीक है। वाल्मीकि के निवेदन पर ब्रह्मा के पुत्र महान ॠषि नारद ने रामचन्द्र का हाल, उनकी खूबियां, शरीफाना तौर-तरीके, आला कदर एखलाक और जबरदस्त फतूहात (जीत) एवं उनके बड़े कारनामें जो उनकी महानता का खुद जीवित प्रतीक हैं उन्हें बताया जिसे वाल्मीकि ने लिख दिया है। शहंशाह अकबर के हुक्म से नकीब खां ने जो कि आला खानदान के सैयदजादे हैं, देवी मिश्र ब्राहम्मन की मदद से तरजुमा किया है। देवी मिश्र संस्कृत के श्लोकों का अर्थ बताते जाते थे और नकीब खां उसे फारसी में लिखते जाते थे। अकबर बादशाह ने जहां जहां निशान लगाया वहीं पर तस्वीर बनाई गयी। जब यह प्रति तैयार हो गयी तो बादशाह की मेहरबानियों का परवरिश पाया इस बन्दा अब्दुलर्रहीम पुत्र बैरम खां ने बादशाह से निवेदन किया कि चूंकि इस किताब की तरफ आपकी खास तवज्जो है इसलिये मैं अपने लिये इसकी एक प्रति नकल तैयार कराना चाहता हूं।

बादशाह की मेहरबानी से इसकी इजाजत मिल गयी और उच्च कोटि के लिखने वाले और चित्रकारों ने इस प्रति को लिखा और चित्रकारी कर मेरे लिये पूरा कर दिया जो कि अब अध्ययन हेतु प्रस्तुत है। यह प्रति 1007 हिजरी (सन 1600 ई.) में पूरी हुई। इसकी लिखाई और चित्रकारी का आरम्भ 996 हिजरी (सन् 1589 ई.) में हुआ। इसमें कुल 165 स्थान पर चित्र हैं और पूरी किताब में 394 वर्क (फोलियो) हैं इस कार्य को पूर्ण कराने वाले मौलाना शकेबी इमामी हैं।

वाल्मीकि रामायण के फारसी अनुवाद का जहां तक प्रश्न है इसकी भाषा सरल है। चित्रकारी में हिन्दुस्तानी, ईरानी और मंगोलियन चित्रकारी का सम्मिश्रण है। यहां इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि श्रीराम के प्रति अगाध श्रद्धावश अकबर ने राम-सीय नामक स्वर्ण एवं रजत मुद्रा जारी की थी जिसमें राम के बनवास को अंकित किया गया है। ये दोनों सिक्के लखनऊ संग्रहालय, भारत कला भवन काशी, ब्रिटिशम्यूजियम तथा मास्को म्यूजियम में सुरक्षित हैं। अकबर का यह कार्य ऐतिहासिक और अनुकरणीय है।

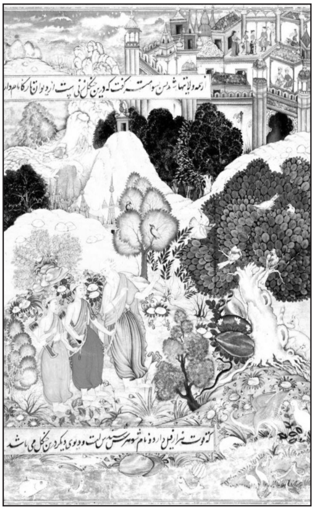

बादशाह अकबर द्वारा सर्व प्रथम वाल्मीकि रामायण जैसे शाश्वत ग्रन्थ का फारसी भाषा में अनुवाद कराकर उसे कुशल चित्रकारों से चित्रांकित कराना, राम-सीय सिक्का का जारी करना उसकी राम के प्रति अगाध श्रद्धा को प्रकट करता है। एक प्रकार से अकबर का शासनकाल ही रामकथा के लेखन उसके प्रचार प्रसार का स्वर्णिम युग था।

❑❑

ग्राम- कठारी बाजार, पोस्ट- खमरिया
जिला– सन्त रविदास नगर,
भदोही (उ.प्र.) 221306
मोवाइल-9889668210

भाव रूप राम

सातवीं शताब्दी में विदेशी आक्रमणकारियों के आधिपत्य के पश्चात् सिन्ध में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक व भाषाई स्तर पर भूचाल आते रहे। वेदों की रचना सिन्धु-सरस्वती नदियों के तटों पर आश्रमों में तपस्यारत् ऋषियों ने की थी। किन्तु मोहम्मद बिन कासिम के हाथों सिन्ध के अन्तिम हिन्दू महाराजा दाहर की पराजय ने जैसे शौर्यचक्र की दिशा बदल दी। भारत-पाक विभाजन के समय 1947 में पूरा सिन्ध पाकिस्तान की गोद में केवल इसलिये गया क्योंकि प्रदेश में निवास करने वाले मुसलमानों की आबादी अधिक थी। सातवीं शताब्दी के बाद विभिन्न कारणों के चलते धार्मिक आस्थायें बदली। हिन्दुओं की संख्या कम होती गई। अपने धर्म का दामन न छोड़ने के लिये सिन्ध के हिन्दुओं को जिन स्थानों से शक्ति मिली उनमें सर्वाधिक प्रमुख महत्व पंजाब का है। राम, कृष्ण के साथ स्थानीय स्तर पर धार्मिक अवलम्बन के क्षीण होते प्रभावों को गुरु नानक के पुत्र श्रीचन्द ने सिन्ध जाकर, वहां गुरुद्वारों की स्थापना करके सम्बल दिया।

विभिन्न मोर्चों पर जूझते रहने के कारण सिन्ध में निवास करने वाले हिन्दुओं के लिये भक्ति मार्ग सहज ग्राह्य था। मुस्लिम प्रभाव के कारण प्रति शुक्रवार एवं अमावस्या के बाद पहले या दूसरे दिन होने वाले चन्द्र दर्शन को विशिष्ट महत्त्व देते हुए भजनों व गायन के नियमित आयोजनों की परम्परा सिन्ध के हिन्दू अत्यन्त श्रद्धापूर्वक निभाते थे। सिख गुरुद्वारों की प्रथानुसार मात्र गुरुग्रंथ साहिब स्थापित न करके सिन्धी गुरुद्वारों में राम, कृष्ण, शिव, पार्वती, गणेश, हनुमान, झूलेलाल आदि अनेक आराध्यों की प्रतिमाएं पूजी जाती थीं। पूजा-अर्चना का मुख्य आधार भजन व नृत्य होते थे। भक्ति पक्ष का वर्चस्व सिन्ध के हिन्दुओं के प्रत्येक आराधना कर्म में आज भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

गुरुद्वारों में गुरुग्रंथ साहिब, सुखमनी, अन्य सिख धर्मग्रन्थों के साथ सर्वाधिक श्रद्धाभाव राम और कृष्ण के प्रति दिखाई देता है। मर्यादा के श्रेष्ठ मानदण्ड स्थापित करने वाले आदर्श पुरुष के नाते राम को भारत में ही नहीं, विश्व में मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में देखा जाता है, सिन्ध में भी राम को, उनके जीवन को, उनके निर्णयों को लोकरंजन की उनकी प्राथमिकता को सर्वस्वीकार्य स्थान प्राप्त था। सिख धर्मग्रन्थों और गीता के बाद यदि किसी धार्मिक ग्रन्थ को सिन्ध में सबसे अधिक पढ़ा जाता था तो वह रामायण था। दादी, नानी अपने बच्चों को राम के जीवन प्रसंग इतनी प्रचुरता से सुनाती थी कि राम की तरह त्यागमय, सत्यपरायण, माता-पिता के आज्ञापालक और अन्याय के विरुद्ध सम्पूर्ण बुद्धि कौशल के साथ खड़े होने की भावना उनमें कूट-कूट कर भर जाती थी। राम के भाव-पक्ष का ज्वलन्त प्रभाव भारत के सिन्धी हिन्दुओं में आज भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संयुक्त परिवारों की टूटन, वृद्ध माता-पिता की तिरस्कारपूर्ण मानहानि और स्वार्थन्धता की चहूंओर व्याप्त चूहा दौड़ के बरक्स, विभाजन के दीर्घकाल के बाद भी एक चूल्हे पर बना भोजन करने वाले, वृद्ध माता-पिता को सम्पूर्ण आदर

देते हुए उनकी अनुमति से निर्णय लेने वाले और परिवारों के हितों की अपने लाभ से अधिक चिंता करने वाले अनेक सिन्धी हिन्दू भारत में देखे जा सकते हैं।

राम के भाव रूप को रेखांकित करता है एक और तथ्य। राम ने कालान्तर में अपने भाइयों और पुत्रों के बीच राज्य के विशाल भूभाग के संचालन का दायित्व बांटा था। सिन्ध का शासन राम ने अपने ज्येष्ठ पुत्र लव को सौंपा था। लव के वंशज लुहाणा कहलाते हैं, जो सिन्धी हिन्दू लुहाणा नहीं हैं वे भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में स्वयं को राम का वंशज मानते हैं। स्वाभाविक है कि आध्यात्मिक दृष्टि से वे उन सब गुणों के सन्दर्भ में प्रतिबद्ध महसूस करते हैं जो राम के व्यवहार में परिलक्षित होते हैं। सातवीं शताब्दी में पराजित होने से पहले और इसके बाद, भारत का सीमावर्ती प्रदेश होने के नाते सिन्धी वीरों के शौर्य ने भारत को जो सुरक्षा कवच प्रदान किया उसके साथ राम की आनुवांशिकी को जोड़कर देखा जाना चाहिये। महाराजा दाहर की पराजय का एक कारण यह था कि मोहम्मद बिन कासिम ने महिला वेश में कुछ सैनिकों को भेजकर रक्षा की गुहार लगवाई। नारी का सम्मान और न्याय के लिये पराकाष्ठा का स्पर्श रामायण में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। सीता को रावण के चंगुल से मुक्त करने के लिये राम ने जो उद्यम किया उसे नारी के सम्मान के अतिरिक्त कोई सटीक संज्ञा नहीं दी जा सकती। विपरीत स्थितियों के बावजूद विभीषण ने राम का साथ दिया। न्याय की अपेक्षा थी कि विभीषण को राम उचित देय प्रदान करें। यद्यपि महाराजा दाहर पराजित हुए, परंतु राम से भावरूप में प्राप्त नारी के सम्मान और न्याय की रक्षा के गुणसूत्र का उन्होंने निर्वाह किया। जय पराजय से अधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक आस्था होती है, जो राम प्रदत्त मूल्यमान है।

सुखी, सम्पन्न, समृद्ध, सुस्थापित एवं प्रतिष्ठा प्राप्त दस लाख से अधिक सिन्धी हिन्दू विभाजन के परिणामस्वरूप पूरी तरह बेसहारा होकर जब 1947 में भारत आये तो भौतिक दृष्टि से वे समग्रतः लुटे-पिटे थे। छत, रोज़गार और भूख के ब्लेक होल से निकलने का साहस भावरूप राम की परंपरा से मिला उन्हें। सिन्धी हिन्दू 1947 में अपने ही देश में शरणार्थी बनकर आया था। शनैः शनैः वह पुरुषार्थी और परमार्थी के रूप में अपनी पहचान बना पाया। सम्भवतः राम की कर्मठता, हार न मानने की ज़िद, आत्मविश्वास, परहित साधन में दृढ आस्था और सबके साथ सामंजस्य बैठाने की व्यावहारिक संगठन क्षमता के भावरूप में प्राप्त सद्गुणों के बूते सिन्धी हिन्दू उस मुकाम तक पहुंच पाया जो किसी को भी विस्मित करता है। राम-पुत्र लव के शासन के दौरान जो कुछ सिन्धी हिन्दू को देखने-सुनने-सीखने को मिला और कालान्तर में लव के वंशज लुहाणा जो सम्प्रेषित कर पाये, उसके बीजाणु कितने भी क्षीण क्यों न हो जायें, शून्य नहीं हो सकते। यही कारण है कि राम का भाव रूप सिन्धी हिन्दू के पुनर्नयन में महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक होने के नाते सिन्ध में हिन्दुओं को अपनी पहचान के लिये ख़ानदान का सहारा लेना पड़ता था। सभी हिन्दुओं की भांति सिन्धी हिन्दुओं के भी गोत्र हैं। उग्गा, चिचिर, चच, माईपोटा, लुला, सचदेव, नागदेव, नागपाल, कुकड़ेजा, बठीजा ऐसे ही कुछ गोत्रों के नाम हैं। सार्वजनिक पहचान की दृष्टि से गोत्रों का गौण स्थान था, मगर विवाह आदि अवसरों पर गोत्र ही महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। सिन्ध में कन्याओं की आबादी लड़कों की तुलना में कम थी। इसके बावजूद कम से कम, पिता के गोत्र में विवाह को दोनों पक्ष अनिवार्यतः टालते थे। पुराने ज़माने से अब तक हरिद्वार आदि स्थानों पर अस्थि विसर्जन अथवा गया में पिंडदान के समय पण्डे-पुरोहितों की बहियों में ख़ानदान के साथ गोत्र का उल्लेख किया जाता रहा है।

एक ही ख़ानदान के हिन्दू सुरक्षा, पहचान और पारिवारिक एकता की दृष्टि से प्रायः ख़ानदान विशेष के नाम से प्रसिद्ध हवेली में रहते थे। इन हवेलियों में एक ही ख़ानदान के सदस्य बड़ी संख्या में संयुक्त परिवार में रहते थे। हैदराबाद में आडवाणियों व मलकाणियों, लाड़काणा में हरियाणियों और सखर में केसवाणियों की हवेलियां विख्यात थीं। ख़ानदान के पूर्व प्रसिद्ध पुरुष के नाम के अन्त में 'णी' जोड़कर उस उपनाम की रचना हुई है जिसे सामान्यतः सिन्धी समुदाय इस्तेमाल करता है। रामनाणी, रामाणी और रामचन्दाणी उपनाम इस तथ्य के प्रमाण हैं कि सुदीर्घकाल से सिन्धी हिन्दू अपने बच्चों के नाम राम या रामचन्द्र रखते थे। अब तो प्रत्येक वर्ग

में नाम-स्वरूप बदलने लगे हैं मगर विभाजन के बाद भी कई वर्षों तक अनेक सिन्धी परिवार बच्चों का नामकरण राम या रामचन्द्र करते थे। इससे सिन्धी हिन्दुओं में राम के भावरूप के गहराई तक समाये प्रभाव को बख़ूबी समझा जा सकता है।

जन्म-जन्मांतर के संस्कार और प्रकृतिगत स्वभाव का संयोग परिवेशगत प्रभाव से उसका रूपाकार व स्वरूप को किस परिणति पर पहुंचाता है, सुनिश्चित घोषणा इसकी नहीं की जा सकती, किन्तु राम का भाव रूप सिन्धी हिन्दू के कर्म (कर्मयोग) और विचार (ज्ञान योग) को गहराई से नियन्त्रित करता रहा है। विभाजन के बाद भारत में सिन्धी हिन्दुओं की निर्मित हैसियत से तो स्पष्टतः इसे समझा ही जा सकता है, कल और परसों भी यह तत्त्व उनके कार्य और व्यवहार को आच्छादित करता रहेगा। इस अर्थ में राम के भाव रूप के सिन्धी हिन्दू के सन्दर्भ में स्थाई महत्त्व को काल की सीमाओं में क़ैद करना संभव नहीं है। भौतिकता की तेज़ आंधी मूल्यों को ध्वस्त करने पर आमादा है। किन्तु जन्मों से पल्लवित संस्कार और प्रकृति से विरासत में मिला स्वभाव राम के भाव रूप की छत्र-छाया में बिना किसी विशिष्ट संज्ञानाम के सिन्धी हिन्दू की राम आवेष्टित पहचान को बनाये रखेगा। काल के मस्तक पर लिखी इस इबारत को पढ़ना किसी सुधि व्यक्ति के लिये कभी कठिन कार्य नहीं होगा।

❑

भगवान अटलानी
डी-183, मालवीय नगर,
जयपुर-302017 मो. 9828400325,
***ई-मेल** bhagwanatlani@rediffmail.com*

भारत को हल्दी का पेटेंट दिलाने वाले डॉ. रघुनाथ माशेलकर

हल्दी पर अपना पूर्ण अधिकार प्रस्थापित करने के लिए पूरे चौदह वर्ष तक उच्चतम न्यायालय के दरवाजे ठकठकाते रहे, अपने अस्तित्व को प्रस्थापित करने के लिए वैद्यकशास्त्र की अनेक पुस्तकों से संदर्भ इकट्ठा करते रहे, प्रमाण प्रस्तुत कर 'हल्दी' की लड़ाई जीती श्रेष्ठ वैज्ञानिक रघुनाथ माशेलकर ने। पद्मश्री, पद्मभूषण और पद्यविभूषण प्रदान कर इस वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ता का योग्य सम्मान किया गया। वर्ष 2014 में 'पद्यविभूषण' से सम्मानित किया गया और इसी वर्ष इंग्लैण्ड की प्रतिष्ठित रायल सोसायटी की फैलोशिप उन्हें प्रदान की गई। विज्ञान के क्षेत्र का सर्वश्रेष्ठ समझा जानेवाला शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार उन्हें प्रदान किया गया। जे.आर.डी. टाटा कॉरपोरेट लीडरशिप अवार्ड विश्व के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में उनके स्थान को निश्चित करता है अर्थात विश्व के बारह श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में से वे एक हैं। विश्व की पैंतीस यूनिवर्सिटी द्वारा उन्हें डॉक्टरेट की पदवी दी गई है। टाटा समूह से लेकर रिलायन्स समूह तक की अनेक कंपनियों के संचालक समूह में वे हैं। उन्होंने 'माशेलकर समिति' की स्थापना की और आज यह समिति वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य में मग्न है जिन्होंने बड़ी संख्या में वैज्ञानिक गढ़े हैं। न्यू टेक्नोलॉजी से जुड़े अनेक प्रश्नों के समाधान के लिए यह समिति कार्य कर रही है। माशेलकर एक विचारवंत लेखक भी हैं। गांधीजी पर आधारित 'टाईमलेस इन्स्पिरेटॉर' के वे लेखक संपादक हैं।

वे 80 वर्ष पार कर चुके हैं, पर निरंतर कार्यमग्न रहते हैं। उनकी प्रत्येक कृति प्रेरणादायी है। उनका दुर्दम्य आशावाद युवाओं का आदर्श है। इसी कारण डॉ. रघुनाथ माशेलकर को 'स्फूर्ति का अखंड स्रोत' कहा गया है। पर इस मुकाम पर पहुंचने के लिए उन्हें अपरिमित कष्ट उठाने पड़े। अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। संकटों के पहाड़ लांघते वे कई बार थककर जीवन खत्म कर देने के लिए बढ़े थे, पर एक ऐसी शक्ति उन्होंने पाई थी जिसके बल पर ही वे आज

81 वर्ष की उम्र में भी खड़े हैं। यह शक्ति, स्फूर्ति, चैतन्य, जीवन संजीवनी उनकी जन्मदात्री माताजी रही हैं जिनके चरणों में वे अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं।

1 जनवरी 1943 को गोवा राज्य के एक छोटे से गांव माशेल में उनका जन्म हुआ था। घर की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी। 6 वर्ष की अवस्था में वे पितृसुख से वंचित हो गए थे। पिता के निधनोपरांत अनेक समस्याओं में आवास की एवं उदरभरण की समस्या मुख्य थी। माताजी बड़ी धीरजवाली और परिश्रमी महिला थी। उन्होंने मुंबई का रास्ता पकड़ा। गिरगांव के इलाके में सिर छुपाने के लिए एक झोपड़ी का आसरा पाया। निकट के प्राईमरी स्कूल में झाड़ू-बुहारू के और तत्सम कार्य करने लगी थी। बेटे रघुनाथ को उन्होंने इसी प्राईमरी स्कूल में बैठा दिया। अक्षरारम्भ भी यहीं हुआ। रघुनाथ कुशाग्र बुद्धि के थे। कक्षा में जो पाठ पढ़ाया जाता ध्यानपूर्वक सुनते और एकबार सुनते ही पाठ उन्हें याद हो जाता, एक-पाठी थे। कक्षा में प्रथम आने का क्रम कभी खंडित नहीं हुआ। गिरगांव नगरपालिका प्राईमरी स्कूल में सिर्फ 6ठी तक ही कक्षायें थी। आगे की पढ़ाई के लिए दूसरे स्कूल की खोज की गई जो कि घर के पास हो जिससे आने-जाने की सुविधा हो, परंतु सबसे बड़ी बात प्रवेश पाने के लिए इक्कीस रुपये की थी। इसे कहां से लाया जाय? मां के पास तो इतने रुपये थे नहीं। इधर-उधर हाथ फैलाए पर सर्वत्र नकार ही सुनने को मिली। रघुनाथ ने स्कूल में प्रवेश पाने की आशा छोड़ दी। वह इधर-उधर कुछ छुटपुट काम की तलाश करने लगा, पर मां ने हार नहीं मानी। वह बड़ी खटपटी थी। प्रयत्न करती रही और उसकी एक सहेली ने उसे इक्कीस रुपये, जो उसने अपने संकटकाल के लिए बचा रखे थे उस आकांक्षी महिला को दे दिए और बोली 'बेटा जब कुछ हुनर सीख जाए और कमाने लगेगा तब वापस कर देना'। बेटे को गिरगांव हाईस्कूल में प्रवेश मिल गया, पढ़ने का रास्ता खुल गया। मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अब कहीं भी नौकरी मिल सकती थी। छोटे-मोटे काम भी करने लगे थे। काम मिल जाने पर रघुनाथ ने सबसे पहले उस महिला के पैसे वापस देने का निश्चय किया पर इस बीच वह महिला गिरगांव छोड़कर डॉकयार्ड में 'भाऊ का धक्कर' में रहने चली गई थी। उस महिला को खोजकर उन्होंने वे पैसे लौटाये जिसके बारे में माशेलकरजी ने 'मेरी शिक्षा यात्रा' लेख में लिखा है। यह एक प्रेरणादायी और बोध ग्रहण करने की वारदात है।

गणित और विज्ञान उनकी रुचि के विषय थे। स्थानीय रात्रिवाचनालय में जाकर नियम से पढ़ते थे। रद्दी में फेंके गए कागज बटोर कर उनमें वे अपने नोट्स लिखते थे। किताबें खरीदना तो उनके बस की बात नहीं थी। पास ही में मैजेस्टिक बुक स्टॉल था, किताब की इस दूकान में साफ-सफाई और कुछ ऊपर का काम कर देते थे बदले में उन्हें किताबें पढ़ने को मिल जाती थी। घर ले आते, रात में पढ़ते और दूसरे दिन वापस कर देते थे। कुशाग्र बुद्धि के रघुनाथ बोर्ड की परीक्षा में मुंबई राज्य में 99वें क्रमांक पर थे। सर्वत्र उन पर अभिनंदन की बरसात हुई पर इससे आगे की शिक्षा की समस्या हल नहीं हुई थी। विकट प्रश्न पैसे का था, उसका जुगाड़ कैसे हो? ऐसी स्थिति में अब पढ़ाई को 'राम राम' कर किसी मिल या फैक्टरी में काम पाने के लिए रघुनाथ चक्कर लगाने लगे थे। इसी बीच सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट की स्कॉलरशिप की जानकारी उन्हें मिली, और वह उन्हें मिल गई तथा मुंबई के जयहिंद कॉलेज में प्रवेश भी मिल गया। यहां का ग्रंथालय संपन्न था। पुस्तकों से भरी आलमारियां थी। रघुनाथ ने इस ग्रंथालय से पूरा-पूरा फायदा उठाया। क्लास में सभी विषयों में पूरे-पूरे अंक पाते। एक शास्त्रज्ञ बनने की राह मिल गई थी। मुंबई के इंस्टीट्युट ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी में उन्होंने केमिकल इंजीनियरिंग में केमिस्ट्री में पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त की। मां के स्वप्न पूर्ण हुए थे। उनकी लगन और परिश्रम वृत्ति से प्रभावित होकर लंदन के सॅलफर्ड यूनिवर्सिटी की एक विशेष स्कॉलरशिप उन्हें मिल गई। वे लंदन पहुंचे। काम में जुट गए। तभी राष्ट्रीय रसायनशाला एन.सी.एल. के डायरेक्टर संचालक डॉ. डी.बी. तिलक की उन्हें एक चिट्ठी मिली कि काउन्सिल ऑफ साईन्टिफिक एण्ड इंडस्ट्रीयल रिसर्च सी.एस.आइ.आर. के महासंचालक डॉ. नायदुम्मा से जाकर मिलें। डॉ. नायदुम्माजी ने बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत किया और बोले 'आपका बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा है भारत का विज्ञान जगत।' बस फिर क्या था? माशेलकरजी

ने लंदन से बोरिया बिस्तर उठाया और भारत लौट आए। यहां सिर्फ दो हजार एक सौ रुपये मासिक पर उन्होंने काम करना शुरू किया। विज्ञान के क्षेत्र में यदि कुछ नवीन करना है तो पैसों की ओर नहीं देखना है, मैं अपने देश के लिए ही करूंगा इस निश्चय के साथ वे काम में जुट गए। सन् 1989 तक वे राष्ट्रीय रसायनशास्त्र प्रयोगशाला के संचालक पद पर बने रहे। पूरे ग्यारह वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने इस संस्था को आकाश की ऊंचाई प्रदान की। सैंकड़ों की संख्या में वैज्ञानिक तैयार किए। सन् 1995 में उन्होंने काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रीयल रिसर्च सेंटर की स्थापना की। इसकी भारत भर में चालीस स्थानों पर अनुसंधान केन्द्रों की एक शृंखला तैयार की। एक नवीन कार्य पद्धति एक नवीन दिशा दी और विश्व में भारत की विज्ञान में अनुसंधान पद्धति मेथोडोलॉजी की शुरूआत की। चीन और जापान ने उनकी इस अनुसंधान-पद्धति को अपनाया। विभिन्न प्रदेशों में भारतीय अनुसंधानकर्ताओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई, यह विशेष उपलब्धि रही।

हजारों साल से हम भारतीय हल्दी का उपयोग अपने भोजन में विविध व्यंजनों को बनाने में उपयोग करते आ रहे हैं। हमारी रसोई में हल्दी महत्वपूर्ण घटक है। भारत के किसी भी राज्य में चले जाइये स्वादिष्ट और सुस्वादु अचार को टिकाये रखने में हल्दी महत्वपूर्ण घटक है। रोग निवारणार्थ रोगों से मुक्त रहने के लिए हल्दी-नमक के पानी का सेवन आयुर्वेदशास्त्र में गुणकारी माना गया है। घावों पर हल्दी का लेप लगाने पर घाव में कीड़े नहीं पड़ते हैं, वैद्यकशास्त्र में विस्तार से वर्णन है। परंतु हल्दी के लिए अमेरिका ने अपना दावा किया और हल्दी के औषधीय गुणों की खोज का पेटेंट अमेरिका ने अपने नाम कर लिया और बिलियन्स डॉलर कमाने लगा। माशेलकरजी ने इसे चुनौती दी तथा अपने वैज्ञानिक अनुसंधाताओं के साथ पूरे चौदह वर्ष तक उन्होंने लड़ाई लड़ी। अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए। प्राचीन वैद्यकशास्त्र की पुस्तकें, संदर्भ, दस्तावेज हजारों कागजात उच्चतम न्यायालय में पेश किए। खून पसीना एक कर दिया और अंततः इस लड़ाई को वे जीत गए। हल्दी का पेटेंट अब भारत के नाम पर है। इतना ही नहीं इस जीत से पेटेंट के अनेक नियमों में परिवर्तन परिवर्धन किए गए जिसका श्रेय डॉ. माशेलकरजी को है। फ्रांस, न्यूजीलैण्ड और मस्कत में इस विषय पर एक हफ्ते की व्याख्यानमाला आयोजित की गई थी जिसमें देश-विदेश के तीस हजार वैज्ञानिक उपस्थित थे। माशेलकरजी आज भारत सरकार के विशेष वैज्ञानिक सलाहकार के पद पर अधिष्ठित हैं। उनका कथन है - मैं अपने देश के लिए कुछ कर सकने में समर्थ हुआ और आप सभी ने मुझे सहयोग किया, इसके लिए मैं समस्त भारतीयों को शत सहस्र वंदन करता हूं।

डॉ. विद्या केशव चिटको
'यमाई' 8 अक्षर सोसायटी,
समर्थनगर, नासिक-422005 मो. 9527313387

अधिक मास

इस वर्ष 2023 ई. अर्थात विक्रम संवत् 2080 में दो श्रावण हैं। दोनों के बीच के दोनों पक्ष अधिक मास है अर्थात् 2023 की 4 जुलाई से 17 जुलाई तक और फिर 17 अगस्त से 31 अगस्त तक शुद्ध श्रावण मास और 18 जुलाई से 16 अगस्त तक अधिक मास है। सूर्य और चंद्र, काल के प्रमुख मापक हैं, इसलिए कालगणना में इन्हीं को प्रमुखता दी गई है। दिन, पक्ष, मास और वर्ष किसी न किसी रूप में इन्हीं की गतियों से बने हैं। पृथ्वी अपनी कीली पर चैबीस घंटे में एक चक्कर लगा लेती है। इसे ही सामान्यतः दिन कहा जाता है। दिन का स्वरूप तो निर्विवाद है, लेकिन उसके प्रारम्भ को लेकर विभिन्न चिन्तन धराओं में मतभेद है। भारतीय ज्योतिषियों ने दिन का प्रारम्भ सूर्योदय से माना है, जबकि पाश्चात्य विचारक इसका प्रारम्भ अर्धरात्रि से मानते हैं। यहूदी और मुस्लिम दिन का प्रारम्भ सूर्यास्त से मानते हैं अर्थात् 'अहोरात्र' (अह्न अर्थात दिन अ रात्र) में रात पहले है और दिन उसके बाद। आज पुरानी परम्परा के

भारतीय ज्योतिषी सूर्योदय से दिन बदलते हैं, जबकि पाश्चात्य परम्परा के व्यक्ति अर्धरात्रि से तारीख के साथ ही दिन भी बदल डालते हैं। हमारी सरकारी व्यवस्थाओं में भी यही परम्परा है। अर्धरात्रि के 1 बजे से अगली अर्धरात्रि के 12 बजे को 24 बजे कह कर दिन बदल दिया जाता है।

मास प्रमुखतः चन्द्रमा की अवस्थिति पर निर्भर करता है। एक अमावस्या (या पूर्णिमा) से दूसरी अमावस्या (या पूर्णिमा) तक की अवधि मास कहलाती है, जिसे चान्द्र मास कहना अधिक उपयुक्त है। इसकी लम्बाई 29:246 दिन से लेकर 29:817 दिन तक की होती है। चूँकि चन्द्र की कक्षा कुछ झुकी हुई है, इसलिए इस अवधि में अन्तर आ जाता है। ऐसे ही बारह मासों का एक चान्द्र वर्ष होता है, जो 354 दिन का होता है। चान्द्रमास दो पक्षों में विभक्त होता है, जो शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष कहलाते हैं। पूर्णिमा पर समाप्त होने वाला पक्ष शुक्लपक्ष और अमावस्या पर समाप्त होने वाला पक्ष कृष्णपक्ष कहलाता है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है और 365.1/4 दिन में अपनी परिक्रमा पूर्ण कर लेती है। इसे ही सौरवर्ष कहा जाता है। इस परिक्रमा पथ पर चक्कर लगाती हुई पृथ्वी क्रमशः मेष, वृष, मिथुन आदि बारह राशियों को पार करती है। एक राशि को पार करने में जितना समय लगता है, वह सौर मास कहलाता है। यदि राशि में प्रवेश रात्रि के समय होता है, तो अगला दिन संक्रान्ति कहलाता है। मेष संक्रान्ति से सौरवर्ष प्रारम्भ होता है। यह सौरमास और सौरवर्ष का संक्षिप्त स्वरूप है। इस प्रकार मास और वर्ष दोनों ही दिनों की ऐसी विषम संख्या प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें साधरणतः प्रयोग में नहीं लाया जा सकता और इन्हें व्यावहारिक बनाने के लिए ही पंचांगों की व्यवस्था अनिवार्य हो जाती है।

भारतवर्ष में विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा शताधिक पंचांगों का प्रयोग व्यवहार में लाया जाता है। इनमें से मुसलमानों द्वारा शुद्ध चान्द्रपंचांग का प्रयोग किया जाता है। चन्द्र वर्ष में 354 दिन होते हैं, फलतः इनके त्योहार प्रतिवर्ष 11 दिन पीछे हटते रहते हैं और लगभग 33 वर्ष के विभिन्न दिनों में घूमकर पुनः अपनी पुरानी स्थिति पर आ जाते हैं। चान्द्रपंचांग की सबसे बड़ी समस्या यह है कि मासों और ऋतुओं का पारस्परिक सम्बन्ध तय नहीं हो पाता। इसके विपरीत सौरपंचांगों में मासों का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता। सूर्य की किरणों ने कब किस राशि में प्रवेश किया, यह ज्योतिषियों के लिए रुचिकर या उपयोगी हो सकता है, जनसाधरण की इसमें कोई रुचि नहीं है, जबकि पूर्णिमा का चन्द्र और अमावस्या का गहन अंधकार उसके लिए महत्वपूर्ण भी है और उसके अनुभव के विषय भी हैं, लेकिन ऋतुओं का सम्बन्ध सौरमंडल से ही है और उसके लिए सौर पंचांग ही उपयोगी हो सकता है। भारतीय ज्योतिषियों ने इस तथ्य को बहुत पहले अनुभव किया। यही कारण है कि उनके पंचांगों में चान्द्र और सौर दोनों व्यवस्थाओं को स्वीकार किया गया है। उनके मासों की गणना चन्द्रमा के आधार पर होती है और पूर्णिमा को मास भी पूर्ण हो जाता है। उत्तर भारत में मास पूर्णिमा पर पूर्ण माने जाते हैं, इसलिए पूर्णिमान्त कहलाते हैं, जबकि दक्षिण भारत में अमावस्या पर पूर्ण मानने से अमान्त कहलाते हैं। (उल्लेखनीय है कि उत्तर भारत में विशेष रूप से प्रचलित विक्रम संवत् पूर्णिमांत न होकर अमांत है अर्थात यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है और चैत्र कृष्ण पक्ष अमावस्या को समाप्त होता है। –सम्पादक) हिंदुओं के समस्त त्योहार- होली, दीपावली, शरत्पूर्णिमा, अक्षय तृतीया, नागपंचमी, बसन्त पंचमी, श्रावणी कार्तिकी- चान्द्रमासों के ही आधार पर होते हैं। यह चान्द्र वर्ष, सौर वर्ष से ग्यारह दिन छोटा है, अतः दोनों का सामंजस्य स्थापित करने के लिए ज्योतिषियों ने अधिक मास की व्यवस्था की है। जिससे न केवल ऋतुओं के साथ मासों का सम्बन्ध तय हो जाता है, बल्कि उनके त्योहार भी 10-15 दिन से अधिक आगे पीछे नहीं खिसकते।

अधिक मास के स्वरूप को कुछ विस्तार से समझना आवश्यक है। सौरवर्ष की अपेक्षा चान्द्रवर्ष में 11 दिन कम होते हैं। इस प्रकार लगभग 32 चान्द्रमासों में एक मास का अन्तर आ जाता है, जिसे अधिक मास के रूप में समायोजित कर दिया जाता है। यह समायोजन ज्योतिष के आधार पर किया जाता है। वह चान्द्रमास जिसमें सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती, अधिक मास कहलाता है और अगले माह जिसमें सूर्य की संक्रान्ति होती है, उसे शुद्ध

मास के नाम से अभिहित किया जाता है। इसे शब्दान्तर से यों कहा जा सकता है कि यदि एक सौर मास में दो अमावस्याएं पड़ें तो अधिक मास होता है। पाँच वर्षों के अंतराल पर दो अधिक मास होते हैं। अधिक मास के समान क्षयमास भी होता है। यदि एक चान्द्रमास में दो संक्रान्तियाँ पड़ जाएं, तो दो मास हो जाते हैं। इनमें प्रथम अधिक मास कहलाता है और द्वितीय क्षयमास।

क्षयमास अधिक मास से पहले या बाद में ही होता है और उस वर्ष ही होता है, जिस वर्ष में दो अधिक मास होते हैं। क्षयमास की स्थिति बहुत विरल होती है और यह 144 वर्ष में एक बार ही होती है। ज्योतिषीय ग्रन्थों में अधिक और क्षय होने वाले मासों की भी विवेचना की गई है। फाल्गुन से लेकर आश्विन तक के सात मासों में से कोई अधिक मास भी हो सकते हैं, कार्तिक और मार्गशीर्ष अधिक और क्षय दोनों हो सकते हैं, लेकिन अधिक मास में आषाढ़ अधिक पड़ता है। अधिक मास की व्यवस्था भारत में कब से प्रचलित है, यह कहना तो कठिन है, लेकिन 'ऋग्वेद' (1/25/8) में इसका उल्लेख देखकर इसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। हाँ, उसके स्वरूप के विषय में कुछ कह पाना अवश्य असम्भव है।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अधिक मास कई नामों से विख्यात रहा है। इन नामों से उसके प्रति दृष्टिकोण भी व्यक्त हुआ है। अतएव इन पर संक्षिप्त दृष्टिपात आवश्यक हो जाता है। नाम इस प्रकार हैं- अधिक मास, मलमास, संसर्प, अहस्पति (अहंसस्पति), मलिम्लुच और पुरुषोत्तम मास। यह मास वर्ष के बारह मासों के अतिरिक्त होने से अधिक मास कहलाता है। इसे काल का मल माना जाता है, अतः मलमास भी कहा जाता है। वेद में 'अहंस्' शब्द पाप के अर्थ में प्रयुक्त होता है और धर्मिक कार्यों के लिए अनुपयोगी होने के कारण यह मास अहंस्पति अर्थात् पापों का स्वामी कहा जाता है। मलिम्लुच शब्द का अर्थ चोर है और संसर्प सरकने या रेंगने को कहते हैं। ये नाम कदाचित् इसलिए दिए गए हैं कि यह शुद्ध मास के साथ छिपकर या चुपके से सरकता है। इसकी निन्द्यता कम करने के लिए ही पुराणों में इसे पुरुषोत्तम मास कह दिया गया है।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही अधिक मास को निन्द्य या धार्मिक कार्यों के लिए अनुपयोगी माना जाता है। धर्म शास्त्रीय ग्रन्थों में इस तथ्य का बार-बार उल्लेख हुआ है कि इस मास में नित्य और नैमित्तिक कर्म तो करते रहना चाहिए तथा वे धर्मिक कार्य भी करते रहना चाहिए जो पहले से होते चले आ रहे हैं, लेकिन जो तिथिपरक धर्मिक कार्य हैं या फल प्राप्ति के लिए जिन नवीन कार्यों की योजना की जानी है, उन्हें अधिक मास में न करके शुद्ध मास में ही करना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि किसी व्यक्ति ने सोलह सोमवार या ग्यारह पूर्णिमा स्नान का व्रत ले रखा है, तो उन्हें यह कार्य इस माह में भी करते रहना चाहिए अथवा जो उपवास आदि पहले से चले आ रहे हैं, उन्हें बीच में नहीं छोड़ना चाहिए, लेकिन मूर्तिप्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, उपनयन, विवाह, वार्षिकी आदि धार्मिक कार्य इस मास में नहीं करने चाहिए। इसके विपरीत कुछ ऐसे धार्मिक कार्य भी हैं, जो केवल इसी मास के लिए बताए गए हैं जैसे विशेष विष्णु पूजा तथा मोक्ष प्राप्ति के साधन के लिए अनुष्ठान आदि। अधिक मास में प्रतिदिन या किसी एक दिन एक या अधिक ब्राह्मणों को पूओं का दान करने का विशेष विधान है।

अधिक मास के साथ इसे अपवित्र मानने की अनावश्यक रूढ़ियाँ भी जुड़ गई हैं, लेकिन भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं और सशक्ताओं को समझना आवश्यक है। अधिक मास हमारी ज्योतिषीय महत्ता का ही परिचायक है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी संवत्सर प्रणाली की महत्ता को समझें और उनके प्रयोग में गर्व का अनुभव करें। ईस्वी नववर्ष को उत्साहपूर्वक मनाने की अपेक्षा अपने विक्रम संवत्सर को जानना और प्रयोग करना, ऋतु को जानना और ऋतुमूलक पर्वोत्सव को मनाना हमें न केवल भारतीयता के साथ जोड़ता है, बल्कि वैज्ञानिक परम्परा की कड़ी भी बनाता है। भारतीय वैज्ञानिकता को रूढ़ि मानकर त्यागने की अपेक्षा उसके वैज्ञानिक स्वरूप को समझना अधिक श्रेयस्कर है।

-डा. रामानन्द शर्मा
'साहित्यपीठ' ई-89 वेवग्रीन कालोनी, काँठ रोड
मुरादाबाद-244105, मोबाइल: 94125-06917

राजा राममोहनराय का सश्रद्ध स्मरण

आज से कई वर्ष पूर्व स्व. जय किशनदासजी सादानी अपनी ग्रंथ Encyclopedic Survey of Indian Culture (8 खण्ड) तैयार करने के प्रसंग में विख्यात वैज्ञानिक डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर के काफी नजदीकी संपर्क में थे और डा. नारलीकर साहब द्वारा लिखी अंग्रेजी पुस्तक 'भारत की विज्ञान-यात्रा' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने बताया कि इस पुस्तक के एक अध्याय 'राजा राममोहन राय की प्रासंगिकता' में गंभीर व शिक्षाप्रद घटनाओं का उल्लेख हुआ है और भारतीय वैज्ञानिक विकास को आधुनिक युग में पहुंचाने के प्रयासों का लेखा-जोखा तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक बंगाल के कुलीन परिवार में जन्मे राजा राममोहन राय का उल्लेख न हो। अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दी में उन्होंने समाज-सुधारों में इस तरह का योगदान किया ताकि भारत और यूरोप के बीच विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का अंतर न्यूनतम हो सके। मैं स्वयं से प्रश्न करता हूं कि अगर राजा राममोहन राय का समय पर नियंत्रण होता और वह आज के युग में जन्म लेते तो आधुनिक भारत के बारे में क्या सोचते? क्या वह अपने सुधार के उन प्रयासों पर प्रसन्न होते, जिन्हें आज लागू कर दिया गया है या उन्हें अब भी यहीं लगता कि आज भी सुधार आंदोलन की उतनी ही जरूरत है जितनी कि दो सौ वर्ष पूर्व थी। राजा राममोहन राय के प्रति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी श्रद्धांजलि इन शब्दों में व्यक्त की थी- 'राममोहन, काश आज तुम जिंदा होते! बंगाल को तुम्हारी बहुत आवश्यकता है। हम बहुत ज्यादा वाचाल हैं, हमें काम करना सिखाओ, हम अभिमानी हैं, हमें बलिदान करना सिखाओ। हम बाहरी चकाचौंध से अंधे हो गये हैं, हमें ज्योति जलाना सिखाओ, ताकि हम चीजों में अंतर करना सीखें। साथ ही हम उन चीजों पर जोर देना सीखें, जो हमारे देश को हमेशा के लिए सही राह पर ले जायें।' यह श्रद्धांजलि गुरुदेव टैगोर ने सन् 1884 में उस समय की परिस्थितियों में अर्पित की थी। आज 139 वर्षों का समय बीत चुका है, पर इस असाधारण व्यक्तित्व के लिए इससे बेहतर शब्द नहीं हैं।

पंच तत्वों का असंतुलन और स्वास्थ्य

प्रयागराज में आयोजित गत अर्द्धकुंभ के अवसर पर श्रीमज्जगद्‌गुरु शंकराचार्य अनन्त श्रीविभूषित स्वामी निश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज श्रीगोवर्द्धनमठ, स्वर्गद्वार, पुरी से वार्तालाप के दौरान मैंने मानसिक योग साधना से संबंधित एक जिज्ञासा की कि हमारे शरीर की रचना पांच तत्वों से मिलकर बनी है, लेकिन एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या इन तत्वों का आपसी असंतुलन भी रोग का कारण हो सकता है? उत्तर मिला, हां, कह सकते हैं कि पांचों तत्वों के असंतुलन के कारण भी रोग हो सकता है। शरीर पांच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। पृथ्वी तत्व अनाजों में, जल तत्व सब्जियों में, अग्नि तत्व फलों में, वायु तत्व पत्तियों में और आकाश तत्व उपवास से प्राप्त होता है। प्रायः मनुष्य सुबह से लेकर शाम तक जो कुछ भी खा रहा है वह अनाज ही खा रहा है, अन्य तत्वों की अनदेखी कर रहा है। यही पांचों तत्वों का असंतुलन है। परिणामस्वरूप अनाज अंदर जाकर चिपक रहा है, अंदर सड़ रहा है और रोग पैदा कर रहा है। योग साधना की आदर्श भोजन पद्धति से पांचों तत्वों का समावेश उनकी आवश्यकता व उपयोगितानुसार किया जाना चाहिए। यदि इस पद्धति की सार्थकता को समझकर प्रयोग करें तो न केवल पांचों तत्वों का संतुलन होगा

वरन् रोगमुक्ति भी होगी। प्रातःकाल प्रकृति ने सफाई कार्य के लिये निर्धारित किया है। अतः इस समय आकाश तत्व की उपयोगिता है। इस समय यदि कुछ भी खाया पिया तो सफाई का कार्य बाधित होगा। दोपहर में वायु तत्व अर्थात् पत्तियां तथा अग्नि तत्व अर्थात् फल लें। पत्तियां शोधन में विशेष सहायक हैं तथा फल पोषक हैं। अग्नि तत्व की प्रधानता के कारण फल तेज प्रदान करने वाले हैं। इस अपक्वाहार से शरीर में मल का संचय नहीं होगा, सड़न पैदा नहीं होगी तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होगी। दोपहर का समय काम का समय होता है इसलिये इस समय भारी भोजन करना उचित नहीं है। भारी भोजन के बाद विश्राम आवश्यक है। इसी कारण पृथ्वी तत्व प्रधान भोजन का विधान रात्रि में है। रात्रि भोज में अधिक मात्रा में जल तत्व अर्थात सब्जियां तथा कम मात्रा में पृथ्वी तत्व अर्थात् अनाज लें। दिन भर के शारीरिक, मानसिक व अन्य कार्यों में हुई कोशिकाओं की टूट-फूट की मरम्मत हेतु यह भोजन उचित होगा। भोजन के बाद विश्राम करें। इस प्रकार हमारे भोजन में यदि पांचों तत्वों का संतुलन बना रहेगा तो शरीर में मल का संचय नहीं होगा और शरीर रोगमुक्त होने लगेगा।

शंकरलाल सोमानी
124/ए, एन.एस.सी. बोस रोड
1 बी, कोलकाता -700092
मो. 9830559364

भोजन के शास्त्रीय नियम

मनुष्य को बल आयु, रूप और गुण प्रदान करने वाला भोजन महज स्वाद के लिए खाई जाने वाली चीज नहीं है। इसलिए प्राचीन ग्रंथों में भोजन के नियम बताये गये हैं, जिनका आधार शरीर, क्रिया विज्ञान, चिकित्सा और मनोविज्ञान है। कुछ महत्वपूर्ण नियम इस प्रकार हैं- 1. वशिष्ठस्मृति स्कंदपुराण के अनुसार भोजन हमेशा एकांत में ही करना चाहिए (कहावत है-भजन, भोजन और भोग एकांत में)। 2. पद्मपुराण, सुश्रुतसंहिता और महाभारत के अनुसार दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख - इन पांच अंगों को धोकर ही भोजन करना चाहिए। ऐसा करने वाला शतायु होता है। 3. स्कंदपुराण के अनुसार भोजन करते समय मौन रहना चाहिए। 4. महाभारत व तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार परोसे हुए भोजन की निंदा नहीं करनी चाहिए, वह स्वाद में जैसा भी हो, उसे प्रेम से ग्रहण करना चाहिए। 5. स्कंदपुराण के अनुसार रात में भरपेट भोजन नहीं करना चाहिए। 6. मनुस्मृति, सुश्रुतसंहिता के अनुसार सोने की जगह बैठकर खानपान न करें, हाथ में लेकर कुछ न खाएं। 7. नीतिवाक्यामृतम् के अनुसार शरीर बहुत थका हुआ हो, तो आराम करने के बाद ही कुछ खाएं-पीएं, अधिक थकावट की स्थिति में, कुछ भी खाने से ज्वर या उल्टी होने की आशंका रहती है। 8. मनुस्मृति के अनुसार जूठा किसी को न दें, और स्वयं भी न खाएं, चाहे वह आपका छोड़ा हुआ खाना क्यों न हो। भोजन के बाद जूठे मुंह कहीं न जाएं। 9. चरकसंहिता के अनुसार जो सेवक स्वयं भूख से पीड़ित हो और उसे आपके लिए भोजन लाना पड़े तो ऐसा भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए। जो आपके प्रति प्रेम-स्नेह नहीं रखता उसका खाना भी कभी नहीं खाना चाहिए। 10. बौधायनस्मृति, कूर्मपुराण के अनुसार खाने की चीजों को गोद में रखकर नहीं खाना चाहिए। 11. कूर्मपुराण के अनुसार अंधेरे में, आकाश के नीचे, देवमंदिर में भोजन नहीं करना चाहिए। सवारी या बिस्तर पर बैठकर, जूते-चप्पल पहने हुए और हँसते या रोते हुए भी कुछ नहीं खाना चाहिए।

—सम्पादक

प्रतिस्वर

वैचारिकी का सितंबर-दिसंबर (संयुक्तांक) 2022 मिला। पूर्ववर्ती अंकों के समान ही इस अंक में भी साहित्य, लोक-साहित्य, धर्म-दर्शन, कला इत्यादि के सुचिंतित आलेख हैं। अध्यक्षीय 'श्री वल्लभाचार्य का सांस्कृतिक अवदान' में श्री वल्लभाचार्य के आविर्भाव एवं उनके जीवन-वृत्त के साथ ही उनका धार्मिक- सांस्कृतिक उपलब्धियों की चर्चा हुई है, जो ज्ञानवर्धन के साथ ही तत्कालीन धार्मिक समाज में व्याप्त विसंगतियों को भी वल्लभाचार्य ने दूर करने का प्रयास किया है, जिसकी चर्चा इस आलेख में है। पुष्टिमार्ग की स्थापना के साथ ही श्री कृष्ण भक्तिकी अविरल धारा के प्रवाह की चर्चा है। श्री चैतन्य महाप्रभु से जुड़े एक प्रसंग की चर्चा से श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्री वल्लभाचार्य की अंतरंगता का पता चलता है। श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग की धारा को आगे बढ़ाने में अष्टछाप के कवियों ने महत्वपूर्ण काम किया। हिंदी दिवस के विषय में संपादकीय की चिंता स्वाभाविक है और यह चिंता सभी हिंदीभाषियों की चिंता होनी चाहिए। 'स्त्री-विमर्श के संदर्भ में प्रभा खेतान की काव्य-चेतना' कुमारी अनुपम का लेख सुचिंतित है। आवरण पर श्री रामेश्वरम् धाम मंदिर के स्तंभों का चित्र भारतीय वास्तुकला का अत्यंत सुंदर प्रस्तुतीकरण है। धन्यवाद।

–डॉ. रामजन्म मिश्र,
संपादक- प्रगति वार्ता,
साहिबगंज, झारखंड-816109, मो. 6201076265

वैचारिकी सितम्बर-दिसम्बर 2022 के अंक में अध्यक्षीय में डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा ने श्रीमदभागवत् का सुन्दर और रोचक सारसंक्षेप प्रस्तुत किया है जो पठनीय है। सम्पादकीय में डॉ. बाबूलाल शर्मा ने हमारे देश के त्यौहारों का प्रांतीय में क्षेत्रीय स्तर मनाये जाने के तर्कपूर्ण कारण प्रस्तुत किये हैं जो महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं एवं त्यौहारों की विशिष्ट परम्परा से अवगत कराते हैं। आत्मसंघर्ष का कवि : मुक्तिबोध में डॉ. राजकुमार खटीक ने मुक्तिबोध के साहित्य का विचारपरक विश्लेषण किया है। अधिकांश आलोचकों ने उन्हें 'मार्क्सवादी' कवि माना है। मुक्तिबोध अपने विचारों से मार्क्सवादी थे और अपने निजी जीवन में और व्यवहार में भी मार्क्सवादी थे। हालांकि वर्तमान समय में अधिकांश साहित्यकार स्वयं को मार्क्सवादी बताते हैं, परन्तु उनमें से कुछ अपने निजी जीवन में सुखवादी है। अतः उनके साहित्य में और निजी जीवन में विरोधाभास है। स्त्री-विमर्श के संदर्भ में प्रभा खेतान की काव्य चेतना में कुमारी अनुपम ने स्त्री-विमर्श के इतिहास का सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है। यह समय और काल के साथ-साथ बदलता रहा है। वर्तमान काल में उच्चपदों पर स्थापित कुछ महिलाओं ने अपराध जगत की ओर कदम बढ़ा लिया है। यह स्थिति देश के लिए, समाज के लिए और नारी जगत के लिए शुभ नहीं है। आये दिनों समाचार पत्रों में समाचार आते रहते हैं युवती, माता-पिता से विद्रोह करके घर से भाग गई, माता-पिता का बुरा हाल। एक युवती ने अपने प्रेमी के साथ मिलकर पति की हत्या की। इसे हम क्या कहेंगे? नारी का सशक्तिकरण या पारिवारिक/सामाजिक

संस्था का विघटन! दहेज के नाम पर ससुराल पक्ष को प्रताड़ित करना, पारिवारिक हिंसा के नाम पर प्रताड़ित करना, क्या यह ठीक है? वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री-विमर्श के अंतर्गत स्त्रियों की स्थिति के संबंध में समाज शास्त्रीय अध्ययन किया जाये। चलते-चलते एक सुझाव– जिन साहित्यकारों/कवियों पर आलेख छापे जाते हैं उनका फोटो भी आलेख के साथ छापा जाये ताकि साहित्कार/कवि के साथ पाठकों की तारत्यमता बनी रहे। सम्पादक मंडल, वैचारिकी के समस्त लेखकों और सुधी पाठकों को साधुवाद।

–विश्वनाथ सिंहानिया
10/829, मालवीय नगर, जयपुर-302017

वैचारिकी के भाग 39, अंक 1 में प्रकाशित 'उत्तर भारत पर महमूद गजनवी का आक्रमण' शीर्षक लेख में डॉ. एम.शेषन का समूचा फोकस यह सिद्ध करने पर रहा है कि महमूद गजनवी केवल लुटेरा था। अढ़ाई पृष्ठों के लेख में उन्होंने चार बार उसकी दस्युवृत्ति (लुटेरेपन) को विविध शब्दावली में, विभिन्न विशेषणों के साथ, दृढ़तापूर्वक रेखांकित किया है। सत्रह धुआंधार हमलों में से सोलह में निश्चित एवं निर्णायक विजय पाकर भी उसने भारत में स्थायी साम्राज्य स्थापित नहीं किया, यह निश्चय ही आश्चर्यजनक है! क्या उसे अपनी प्रशासनिक क्षमता पर विश्वास नहीं था? अथवा उसे यह भय साल रहा था कि विशाल राज्य में यह दोधारी तलवार, समय आने पर, उस पर समान निर्ममता से टूट सकती है! किंतु महमूद ने भारत में भले ही औपचारिक साम्राज्य की स्थापना न की हो, समूचा उत्तर भारत उसके आतंक के तले कराह रहा था और 1030 में उसकी मृत्यु के समय सारा पंजाब और सिंध उसके अधीन था[1]। इस विशाल भूभाग पर अपने प्रभुत्व के उपलक्ष्य में उसने लाहौर को, अपने नाम पर, नया नाम दिया–महमूदपुर और वहां अपने अधिकार एवं वर्चस्व की परिचायक स्वर्ण मुद्राएं जारी की। 397 हिजरी (1007 ई.) में जारी मुद्राओं पर निभ्रान्त शब्दों में घोषित किया गया है कि 'ये मुद्राएं पवित्र जेहाद में कब्जाए गये भारत के नगरों/क्षेत्रों में प्रयोग के लिये (विशेष रूप से) चलाई गयी हैं।' कि 418-419 हिजरी में जारी सुवर्ण मुद्राओं पर कलमें का संस्कृत अनुवाद अव्यक्तमेकं मौहम्मद अवतार (:) - अंकित करवा कर उसने सबको हक्का-बक्का कर दिया[2]। ये स्थितियां साम्राज्य के नितांत अभाव की द्योतक नहीं हैं। फिर भी, उसकी पैशाचिकता को 'लूट' तक सीमित करना उसकी धर्मान्धता, अनर्गल हिंसाचार, विध्वंसवृत्ति और अदम्य हिन्दुद्वेष को कमतर आंकने और प्रकारान्तर से उसके अमानवीय कुकृत्यों को स्वीकृत तथा मंडित करने के समान होगा।

महमूद की मानसिकता से सम्यक् स्वरूप से अवगत होने के लिए उसकी पृष्ठभूमि में झांकना उपयोगी होगा। उसके वालिद सबुक्तगीन, जो एक तुर्की गुलाम था, ने गजनी और कन्धार पर अधिकार कर जेहाद को अपना व्यवसाय बनाया और खुद को अलगाजी (धर्मरक्षक) घोषित कर दिया। महमूद उस गुलाम, जेहादी और गाजी के रक्त का भीषण रसायन था। अलबिरुनी के शब्दों में वह संसार का शेर (जगत्केसरी) और अपने समय का चमत्कार था[3]। दुर्भाग्यवश उसका यह चमत्कारी व्यक्तित्त्व अमानवीय कृत्यों के घालमेल से निर्मित हुआ था। अन्य मुस्लिम आक्रांताओं के समान वह भी धर्मान्ध आततायी और बर्बर हत्यारा था। उसके सत्रह घनघोर हमलों में देशवासी हिन्दू जिस ताण्डव के शिकार हुए होंगे, उसका अनुमान करना कठिन नहीं है। अकेले थानेसर से उसने दो लाख हिन्दुओं को बन्दी बनाकर स्वर्गिक सुख भोगने के लिये जन्नत की हूरों के पास भेज दिया था। शेषन महाशय के अनुसार सोमनाथ मंदिर के सामने पांच हजार से ज्यादा लाशें बिखरी पड़ी थीं (पृ.36)। पंडित नेहरू का आग्रह है कि वहां पचास हजार शव महमूद की करुणा का बखान कर रहे थे 4। अलबिरुनी ने उस 'जगत्केसरी' के भारत में, महिमाशाली कृत्यों का जिस मासूम किंतु मर्मान्तक शब्दावली में निरूपण किया है, वह शताब्दियों से हिन्दू जाति की चेतना को खंजर की भांति चीरती आ रही है और अनंतकाल तक उसे चीरती रहेगी। किंतु उससे उस तथाकथित लुटेरे के वास्तविक मिशन का सम्यक स्वरूप तत्काल उजागर हो जाता है। 'महमूद ने देश की सम्पन्नता को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और वहां ऐसे कारनामे किये जिनके फलस्वरूप हिन्दू

धूल के कणों की भांति चारों दिशाओं में बिखर गये और लोगों की जबान पर अतीत की कहानी बनकर रह गये। उनके बिखरे अवशेष आज तक मुसलमानों के प्रति घोर घृणा का भाव रखते हैं।[5]' इससे अधिक लिखने या कहने-सुनने को क्या रह जाता है!

शेषन महोदय ने सोमनाथ मंदिर पर महमूद के प्रलयंकर आक्रमण और उसके विध्वंस और अत्याचार का कुछ विस्तार तथा बारीकी से वर्णन किया है। उनके कथ्य के दो अंश विशेष रूप से विचारणीय हैं। उनका आग्रह है कि इस 'अत्याचारपूर्ण कुकृत्य' पर अरबी इतिहासकार अलकासिनी ने अपने विवरण में गहन दुःख और वेदना प्रकट की है। न केवल अलकासिनी बल्कि अनेक मुस्लिम इतिहासकारों ने (भी) गजनवी के इस अमानवीय हिंसाचार को मानवता के इतिहास का काला धब्बा बताया है (पृ.37)। पता नहीं, शेषन महाशय ने किस खान से ये हीरे-मोती निकाले हैं। उपजीव्य ग्रंथों का उल्लेख करने से स्थिति कुछ स्पष्ट तथा सहज हो सकती थी। वर्तमान रूप में उनकी यह मान्यता अप्रमाणित तथा परिस्थितिजन्य साक्ष्य के भी विपरीत प्रतीत होती है। जो धर्म गैर मुस्लिम काफिर की हत्या को पवित्र कार्य, स्वर्ग-प्राप्ति का साधन, तथा उस पर दैवी कृपा मानता है, उसका अनुगामी इतिहासकार महमूद जैसे गाजी द्वारा प्राप्त 'शानदार उपलब्धि' की भर्त्सना अथवा निंदा तो दूर, उस पर अंगुली उठाने का भी साहस कर सकता है, यह कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। हां, सत्य-अहिंसा, दया-करुणा की घुट्टी से बेसुध हिन्दू जाति, आंख खुलने पर, यदा-कदा सांस लेती है। पर नक्कार खाने में तूती की क्या औकात?

कथ्य का दूसरा अंश सोमनाथ की परम पावन मुख्य मूर्ति से संबंधित है। डॉ. शेषन ने आततायी के चंगुल में फंसी मूर्ति की दुर्गति का कुछ इस प्रकार वर्णन किया है: गजनवी विकालकाय निराधार मूर्ति की चकाचौंध से चकित एवं भ्रमित हो गया और वह अपने तीखे भालों से शिवलिंग को घुमाने लगा। सैनिकों ने शिवलिंग को चूर-चूर कर बाहर परिसर में फेंक दिया (पृ.37)। यह वर्णन भी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल नहीं है। महमूद के इतिहासकार अलबिरुनी ने बड़े गर्व और उल्लास के साथ मूर्ति भंजन का अतीव सटीक तथा तथ्यपूर्ण वर्णन किया है, भले ही उसे पढ़कर हमारी रुह कांप उठे। 'इस (सोमनाथ) मूर्ति को शाह महमूद-रहमत उल्लाह अलैह (अल्लाह उस पर अपनी रहमत करे) ने 416 हिजरी में नष्ट कर दिया। उसने हुक्म दिया कि मूर्ति का ऊपरी भाग तोड़ दिया जाए और शेष भाग उसके निवास स्थान गजनी को भेज दिया जाए जिसमें उसके सोने के आच्छादनों, भूषणों और गुलकारीयुक्त वस्त्रों को भी शामिल किया जाए। उसके कुछ भाग को कांस्यमूर्ति चक्रस्वामिन समेत जो थानेश्वर से लाई गई थी, नगर की रंगभूमि में फेंक दिया जाए। सोमनाथ की मूर्ति का एक हिस्सा गजनी की मस्जिद के द्वार के सामने पड़ा है, जिस पर लोग मैल पोंछने के लिये पैर रगड़ते हैं।' उपर्युक्त विमर्श के आलोक में निर्णय करना कठिन नहीं है कि महमूद 'केवल लूटेरा' था या अपने सहधर्मी बर्बर आक्रांताओं का अग्रणी, जो धर्मादेश को क्रियान्वित करने के लिये भारत पर टूट पड़ा था। पं. नेहरू ने दो टूक शब्दों में कहा है कि वह इस्लाम का बड़ा नेता था, जो भारत में इस्लाम फैलाने के लिये आया था।[7]

संदर्भ

1. इतिहास के महापुरुष : जवाहरलाल नेहरू, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 49। **2.** Coins : Parmeshwari Lal Gupta, National Book Trust, India, 1969, P. 84। **3.** भारत : अलबिरुनी अनुवाद नूर नबी अब्बासी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दूसरी आवृत्ति, 1997, पृ. 181। **4.** इतिहास के महपुरुष, पूर्वोक्त, पृ. 49। **5.** भारत : अलबिरुनी, पूर्वोक्त, पृ. 4। **6.** वही, पृ. 205। **7.** इतिहास के महापुरुष, पूर्वोक्त, पृ. 46।

डॉ. सत्यव्रत वर्मा
(भूतपूर्व प्राचार्य, मानद प्रोफेसर)
7/34, पुरानी आबादी
नामदेव फ्लोर मिल के पास
श्रीगंगानगर - 335001
मो. 7296825452

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी. आ. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक- डॉ. बाबूलाल शर्मा।

प्राचीन भारतीय उत्कीर्णन-अंकन में श्रीराम

वानर सखाओं के साथ राम-लक्ष्मण (5वीं शती ई.) शृंगवेरपुर, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)

अमेरिकी संग्रहालय द्वारा कम्बोडिया को लौटायी गई राम मूर्ति (10वीं सदी)

श्रीराम सीता की स्वर्ण मुद्रा, मुगलकालीन

श्रीराम परशुराम संवाद चित्रण मेवाड़ शैली, 18वीं सदी
(छत्रपति वास्तु संग्रहालय, मुम्बई)

श्रीराम मुद्रा, 10 राम आमोबा स्टेट

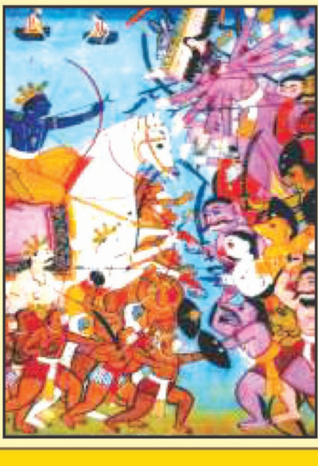

श्रीराम द्वारा दशानन रावण का वध,
चित्र 18वीं सदी, पहाड़ी शैली
(सौजन्य - नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, इन्दौर)

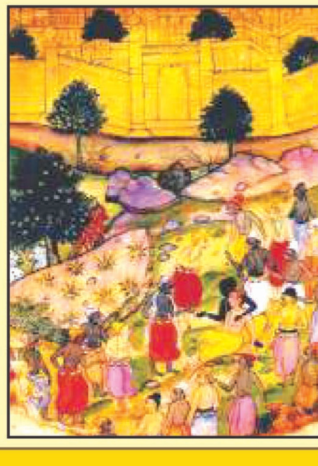

श्रीराम द्वारा हनुमान से प्राप्त बूंटी से
लक्ष्मण का उपचार
चित्रण, 16वीं सदी, मुगलशैली
(साभार-नर्मना प्रसाद उपाध्याय, इंदौर)

From	TO
BHARATIYA VIDYA MANDIR 12/1, Nellie Sengupta Sarani Kolkata - 700087 *(W.B.)*	

G.D.M.
PUBLIC SCHOOL
Near, Govt. DIET Office, Pugal Road, Bikaner

Admission Open for Nursery to 10th

Session - 2023-24

Mob.: 8769204922, 9413074922

Email: gdmpublicschoolbikanr4922@gmail.com